"दिगंबर जैन" वर्ष ६ अंक १२ का काड़पत्र.

दिगंबर जैन ग्रंथमाला नं. २२

॥ श्रीवीतरागाय नमः ॥

दिवालीमें निर्वाण पूजनके समय पढ़ने योग्य

श्री महावीर चरित्र.

(निर्वाणकाण्ड भाषा–गाथा और महावीर जिनपूजा सहित)

प्रकाशक–

मूलचंद किसनदास कापड़िया–सूरत.

प्रथमावृत्ति. वीर सं. २४३९. प्रति २०००.

વલાસણ નિવાસી સ્વર્ગ. શા. બાપુજી ત્રીકમદાસની સૌ.
પુત્રી બ્હેન શીવકોર તરફથી જ્ઞાનાવરણીય કર્મના
ક્ષયાર્થે "દિગંબર જૈન" પત્રના ગ્રાહકોને
છઠ્ઠા વર્ષમાં (દશમી) ભેટ.

પ્રી : ખપાટીઆ ચકલા ઉપર આવેલા શા. ખુ. અ.ના ધી સુરત જૈન
પ્રિન્ટીંગ પ્રેસમાં મદુભાઈ બાઈદાસે છાપ્યું.

मूल्य रु. ०–१–६

प्रस्तावना.

अपने अंतीम तीर्थंकर श्रीमहावीरस्वामीके निर्वाणगमनका उत्तम दिन 'दिवाली' (दीपावली) के नामसे सर्वत्र प्रसिद्ध है और महावीरनिर्वाणस्मृतिके लिये उसीदीन प्रत्येक मंदिरजीमें 'संक्षिप्त महावीर चरित्र' सब भाइओंको सुनाकर निर्वाणकांड भाषा--गाथा पढ़कर महावीर जिनपूजा करना अत्यावश्यक है. परंतु पुस्तक न होनेसे यातो प्रमादके वशसे सब जगह इस पर्व अच्छी तरहसे नहि मनाया जाता. इस लिये एक ऐसी पुस्तक की बड़ी आवश्यकता थी कि जिसमें 'श्रीमहावीर चरित्र' संक्षेपरूपमें हो और उसके साथ २ महावीर जिनपूजा और [illegible] सामिल किया गया हो. इस अभिप्रायसे [illegible] काशी निवासी पं० गजाधरलाल जैन शास्त्रीद्वारा लिखवाके पं० पन्नालाल बाकलीवालने 'महावीरस्वामी और दिवाली' नामकी छोटीसी पुस्तक प्रकट कीथी उसके आधारसे तैयार करके उसमें निर्वाणकांड भाषा--गाथा और महावीर जिन पूजा सामिल करके, 'श्रीमहावीर चरित्र' नामकी इस पुस्तक प्रकट की जाती है और बडौदा [बडोदरा] निवासी शा केशवलाल त्रीभोवनदासकी प्रेरणासे उनकी मासी शीवकोरबाइके खर्चसे 'दिगंबर जैन' के ग्राहकोंको उपहार में दी जाती है, जो सब भाइओंको दिवालीके दिन निर्वाणपूजनके समय पढ़नेके लिये बहूत रुचीकर होगी. इत्यलम्.

वीरनिर्वाण संवत २४३९	जैन जाति सेवक
अश्विन वदी ७	मूलचंद किसनदास कापड़िआ
ता. २२--९--१३	ऑ. संपादक. 'दिगंबर जैन'-सूरत.

॥ श्री परमात्मने नमः ॥

दिवाली में निर्वाण पूजन के समय पढ़ने योग्य

श्री महावीर चरित्र.

जन्मस्थान।

श्रीमहावीरस्वामी जैनियोंके परमपूजनीय परमात्मस्वरूप गै[illegible]म तीर्थंकरोंमेंसे अंतके **चौबीसवें तीर्थंकर** है। इनके वीर, क[illegible]र, अतिवीर, सन्मति, वर्द्धमानभगवान आदि अनेक [illegible] हैं परंतु विशेषकर **महावीरस्वामीके** नामसे ही अधिक प्रसिद्ध हैं।

इन महात्माका जन्म आजसे २५११ वर्ष पहिले (इस्वी सनसे ५९९ वर्ष पहिले) इसी आर्यक्षेत्रमें कुंडलपुर नगरके अधिपति नाथवंशीय काश्यपगोत्री सिद्धार्थ महाराजकी त्रिशलादेवी राणीके गर्भसे हुआ था। कुंडलपुरशहर महावीर भगवान्के समयमें ४८ कोशकी लंबाई चौडाईमें बसता था। आजकल उस शहरका कुछ भी पता नहीं है, परंतु ऐतिहासिक विद्वानोंने विहारसे ७ मीलकी दूरी पर एक कुंडलपुर बस्ती प्रसिद्ध किया है। जैनी लोग भी उस जगहको महावीरस्वामीका जन्मस्थान मानकर उस पवित्रभूमिकी बहुत कालसे यात्रा करते हैं और पूजनादि कर पुण्योपार्जन करते रहते हैं।

गर्भकल्याण ।

सब तीर्थंकर भगवान प्रायः १६ स्वर्ग, ९ ग्रैवेयक, पांच पंचोत्तर [विजय वैजयंत, जयंत, अपराजित और सर्वार्थसिद्धि] आदि स्थानोंसे आकर किसी न किसी उत्तम राजकुलमें जन्मधारण करते हैं। अंतिम तीर्थंकर श्रीमहावीरस्वामी अच्युत नामके सोलहवें स्वर्गमें २२ सागरपर्यंत अपारसुख भोगकर आषाढसुदी ६ के दिन सिद्धार्थ महाराजकी पटरानी त्रिशलादेवीके गर्भमें आये थे। तीर्थंकर भगवान जब मनुष्यभवमें अवतरण करते हैं तब सौधर्मनामक प्रथमस्वर्गके इंद्रको अवधिज्ञानके प्रभावसे ६ महीने पहिले ही मालूम हो जाता है सो इंद्र कुबेरको हुकुम देता है कि अमुक नगरके अमुक राजाकी राणीके गर्भमें तीर्थंकर भगवान् पधारेंगे. सो उस नगरकी १२ योजनमें सुंदर रचना करो और राजाके घर दिनमें तीन वार लगातार ६ महीने पहिलेसे अर्थात् १५ महीने तक रत्नवृष्टि करते रहो। कुबेर इंद्रकी आज्ञानुसार ऐसा ही किया करता है। महावीरस्वामीके पिता सिद्धार्थराजाके घर पर भी १५ महीने तक कुबेरने रत्नवृष्टि की और नगर भी १२ योजनमें सुंदर रचनासे सुशोभित कर दिया।

जिस रात्रिको महावीरस्वामी अच्युतस्वर्गसे चयकर माताके गर्भमें आये थे उस रात्रिमें माताको १६ शुभस्वप्न आये और माता प्रातःकाल ही उठकर महाराजके समीप सब स्वप्न

निवेदन करके महाराजसे उनका फल सुननेकी इच्छा प्रगट की। महाराजने उत्तर दिया कि इन सब स्वप्नों का फल यह है कि तुमारे उदरसे तीन लोकके नाथ तीर्थंकरपुत्रका जन्म होगा.। उस दिन सौधर्म इंद्रने प्रथम ही श्री, ह्री, धृति, कीर्ति, बुद्धि, लक्ष्मी इन ६ देवियोंको माताके निकट भेजा। उन्होंने माता-के उदरकी संशोधना कियी, जिससे माताका उदर फटिकसमान निर्मल हो गया। उसी दिन **अषाढ सुदी ६** उत्तरा नक्षत्रमें भगवानका जीव अच्युत स्वर्गसे चय कर माताके **गर्भमें** आ-गया। जिस समय भगवान् माताके गर्भमें पधारे, उस समय कल्पवासी देवोंके घरमें अपने आप घंटानाद होने लगा, ज्यो-तिषी देवोंके यहां सिंहनाद हुआ, भवनवासी देवोंके घर शंखनाद हुवा, व्यंतरदेवोंके घर भेरी बजने लगी और स्वर्गपति सौधर्म इंद्रका आसन कंपायमान हुआ, जिससे समस्त देवोंने अपने अवधिज्ञानसे जानलिया कि आज अंतिम तीर्थंकर भगवान अपनी माताके गर्भमें पधारे हैं। उसी वक्त समस्त देवोंसहित इंद्रदेव सिद्धार्थमहाराजके घर जाकर बड़े ठाठसे भगवानके मातापिताका अभिषेक किया और गर्भस्थ प्रभुकी नानाप्रकारसे स्तुति की। तत्पश्चात् रुचिकद्वीपमें रहनेवाली ५६ कुमारिकावों-को (देवियोंको) बुलाकर माताकी सेवामें तैनात कर दी। इसप्रकार गर्भोत्सवपूर्वक नमस्कार करके सब देव अपने २ स्थान चले गये। जिसप्रकार कमल जलसे आलिप्त रहता है उसीप्रकार भगवान नव मासपर्यंत माताके गर्भमें रहे। माताके

उदरकी त्रिवलीका कभी भंग नहिं हुवा । **छप्पन कुमारिकायें** माताकी हरतरहसे सेवा करती रही । कभी २ मातासे अनेक प्रकारके गूढ़ प्रश्न भी किया करती थीं सो माता भी सबका यथोचित उत्तर प्रदानकर सबको प्रसन्न कर देती थी ।

जन्मकल्याण ।

तत्पश्चात् माताके ९ मास पूर्ण हुये. तब **चैत्रशुक्ला १३** उत्तरा नक्षत्रके दिन महावीरस्वामीका **जन्म** हुआ । सर्वत्र जयजयकार होने लगा, स्वर्गमें घंटानाद हुआ, ज्योतिषीदेवोंमें सिंहनाद सुनाई पड़ा, भुवनवासी देवोंमें शंखनाद और व्यंतर देवोंमें भेरी बजने लगी । जिससे समस्तदेवोंको भगवानके जन्म होनेकी सूचना होगई, तब **सौधर्म इंद्र** चारोंप्रकारके देवों सहित जन्मकल्याणक महोत्सव करनेकेलिये एक मायामयी ऐरावत हस्ती लेकर कुंडलपुर आया । इंद्राणी माताके प्रसूति-घरमें गई और माताको सुखनिद्रामें शयन कराके एक देवको मायासे छोटासा बच्चा बनाकर माताके पास सुला दिया और भगवानको उठाकर इंद्रके समीप **ऐरावतहस्ती** पर लाकर सौंप दिया । इंद्रने भगवानका सुंदररूप देखनेकेलिये हजार नेत्र बनाये तौ भी. उसकी रूपतृष्णा नहीं मिटी । तत्पश्चात् सब देव अपने २ विमान वा वाहनोंपर चढ़कर गाजेवाजे सहित आकाशमार्गसे **सुमेरुपर्वतपर पांडुकबनमें** लेगये और अर्द्धचंद्राकार **पांडुकशिलाके** मध्यभागमें रत्नसिंहासनपर भग-

वानको विराजमान किया और पांचवे **क्षीरसमुद्रसे १००८ कलश** मंगाकर इंद्रने भगवानका **जन्माभिषेक** उत्सव किया। तत्पश्चात् दिव्य आभूषण पहनाकर दर्शन किया, स्तुति की। फिर ऐरावतहस्तीपर बिठाकर गाजेबाजेसहित कुंडलपुर आये और माताको जगाकर भगवान को समर्पण किया। भगवान-को दिव्य वस्त्राभूषणसहित देखकर माताको अतिशय आनंद व आश्चर्य हुआ। तत्पश्चात् इंद्रने भगवानके मातापिताको देवोपनीत रत्नमय वस्त्रालंकार व पुष्पमाला पहनाकर उनके आगे तांडवनृत्य किया और उत्तमकाव्योंसे स्तुति करके नम-स्कार किया। इसप्रकार जन्मकल्याणका उत्सव पूरा करके इंद्र व समस्तदेव अपने २ स्थानपर चले गये।

भगवान् मति[1], श्रुति[2], अवधि[3] ऐसें तीनज्ञान सहित ही उत्पन्न हुये थे। भगवानके हाथके अंगूठेमें अमृतरस होनेके कारण भग-वान् उसी अमृतरसको चूसते रहते थे। माताके स्तन्यपान करने की आवश्यक्ता नहीं होती थी। भगवानको समस्त वस्त्रालंकार स्वर्गके देव ला ला कर नित्य नये२ पहनाते थे और अनेक देव भगवानके बराबर बालकका शरीर बनाकर खेलते थे।

१। इंद्रिय और मनसे समस्तपदार्थोंके जाननेका नाम मति-ज्ञान है। २। उससे विशेष अर्थात् अर्थसे अर्थांतर जाननेका नाम श्रुतज्ञान है। ३। और कितने ही क्षेत्रकी मर्यादा लिये रूपी पदा-र्थोंका जानना सो अवधिज्ञान है।

उनके अलौकिक खेल देखकर माता वगेरहको अद्भुत आनंद होता था। भगवान् चंद्रमाकी तरह दिनोंदिन बढ़ने लगे। आठवें वर्ष भगवानने श्रावकके अहिंसा, सत्य, अचौर्य, कुशील-त्यागादि बारह व्रत ग्रहण किये।

एक दिन भगवान् उन मायामयी समवयस्क बालक देवोंके साथ बागमें क्रीड़ा करनेको गये, तो देवगण एक मायामयी हस्ती बनाकर प्रभुके सन्मुख लाये। उसको देखकर सब जने भयभीत हुये, इधर उधर भागने लगे, हस्तीके पास कोई भी नहिं जाता था, परंतु भगवान् उसके पास गये और हाथसे पकड़कर उस पर चढ़ बैठे। उसे देखकर कुटुंबके सब लोगोंको बड़ा आनंद व आश्चर्य हुवा। तुमारी बराबरी कोई भी बलवान्, पराक्रमी, धैर्यवान् नहिं होगा इत्यादि प्रशंसा करने लगे। तत्पश्चात् भगवानने युवावस्था व माता पिताका अत्याग्रह होने पर भी विवाह नहिं किया। बालब्रह्मचारी ही बने रहे। जब भगवानको तीसवें वर्ष क्षायिक सम्यक्त्व प्राप्त हुआ, तब मनमें वैराग्य उत्पन्न हुआ और द्वादश अनुप्रेक्षावोंका चिंतवन करने लगे।

तपःकल्याण।

महावीरस्वामीको जब **वैराग्य** उत्पन्न होकर द्वादशभावनावोंका चिंतवन होने लगा, तब पांचवे ब्रह्मस्वर्गके लोकांतिक देव आये और भगवानको तीन प्रदक्षणा देकर नमस्कार किया। भगवानके वैराग्य भावनाकी स्तुति करके प्रार्थना की कि—

" प्रभो ! आपने जो दीक्षा ग्रहण करनेका विचार किया है सो अति प्रशंसनीय है। यह धर्मप्रवृत्तिका कार्य सिवाय आपके और कौन कर सकता है। धन्य है आपकी इस वैराग्यवृत्तिको"! इत्यादि स्तुति व पूजा करके भगवानका वैराग्य दृढ कराकर चले गये। तत्पश्चात् चार प्रकारके देव अपने२ वाहनोंपर चढ़कर **कुंडलपुर** आये भगवानको अभिषेक कराकर एक नयी अपूर्व रचना कियी हुई पालखीमें बिठाकर दीक्षाकेलिये जय जयकार शब्द करते हुये पूर्वदिशाकी ओर नंदन वनमें ले गये। वहां पर चंदनके वृक्ष तलें एक स्फटिकशिलापर इंद्राणीने नानाप्रकारके **रत्नोंके चूर्ण** से साथिया पूर्णकर पुष्पमालादिसे मंडप बना रक्खा था। भगवान् पालकीसे उतरकर उसी मंडपमें जा विराजे। उस समय सर्व प्रकार के देव मनुष्य एकत्र हुये थे। अनेक महाशय भगवानकी विभूति वगैरह देखकर कहने लगे कि यदि ऐसी विभूति अपने पास होती. तो अपन तो कदापि दीक्षा नहिं लेते। इसप्रकार परिग्रहपर तीव्रराग करके कर्मबंध (पापोपार्जन) करने लगे। अनेक सज्जन "वैराग्य ही समस्त विभूतियोंका मूल कारण है." ऐसा समझ कर अनेक प्रकारके व्रत नियम ग्रहण करने लगे। भगवान ऐसे अल्प वयमें ही **दिगंबरी दीक्षा** ग्रहण करते हैं, ऐसा सुनकर घरके सब लोग बड़े दुःखित हुये। माता तो अतिशय उदास होकर रोने लगी कि "हे पुत्र. तेरे शरीरपर आजतक अंगनकी धूपतक नहीं पड़ी।

अब दिगंबर होकर कैसे रह सकेगा ? हे बेटे ! तेरा शरीर अतिशय सुकुमार है, संयम तलवारकी धार है। तू घर रहता है तो इंद्रादिक देव आकर हमारे घरकी शोभा बढ़ाते हैं। अब वे क्यों आवेंगे" इत्यादि मोहमयी विलाप करने लगी। उसे विलपती देखकर **सौधर्म इंद्र** समझाने लगा कि—"माताजी, आपका पुत्र जगतका स्वामी है। इस सिंहको किसका भय है ? ये चरमोत्तम शरीरी हैं। इनके शरीरको कौन दुष्ट कष्ट दे सकता है। इनोंने इस संसारमें अनंतकाल भ्रमण करके नाना प्रकारके दुःख सहन किये हैं अब ये समस्त दुःखों से मुक्त होकर शाश्वत सुखका अनुभव करेंगे और इस दुःखमय संसार समुद्रमें अनेक जीवोंको तारनेवाले हैं इनकी अपनेको चिंता करना भूल है" इस प्रकार सौधर्मेंद्रने माताको सांतवन किया।

तत्पश्चात् भगवानने चौवीस प्रकारके परिग्रहका त्याग करकें सिद्धोंको नमस्कार किया और **पांच मुष्टियोंसे** शिर व दाढ़ीके बालोंका **लुंचन** करके पांच महाव्रत और अठाइस मूलगुण धारण किये। इस प्रकार मगसर बदी १० हस्तनक्षत्रमें भगवाननें तीसवें वर्षमें **दिगंबरी दिक्षा** ग्रहण की। इंद्रने भगवानके केश उठाकर रत्नमयी पिटारेमें बंद करके समस्त देव और गाजे बाजे सहित पांचवें **क्षीर समुद्रमें क्षेपण** करनेको ले गये, परंतु मानुषोत्तर पर्वतपर (जोकि २॥ द्वीपकी

सीमा है) केश पिटारेमेंसे छनकर नीचें गिर पड़े क्योंकि— मानुषोत्तरपर्वतसे आगें (अढाई द्वीपसे आगें) मनुष्य वा मनुष्यशरीरके अंशका गमन नहीं है। तत्पश्चात् वहीं पर भगवानकी स्तुतिकर सब देव अपने २ स्थानको चले गये।

इधर भगवान योगधारण करके पर्वतके समान निश्चल हो गये। छह मास पर्यंत **एकसा ध्यान** किया। उसके प्रभावसे भगवानको चौथा [१]**मनःपर्ययज्ञान** प्राप्त हुआ। तत्पश्चात् भ्रमण करते २ एक दिन **दशपुरनगर**में आये। वहांपर कुल नामका राजा राज्य करता था। उसने भगवानको देखकर यह कोई महात्मा हैं. उत्तमपात्र हैं ऐसा विचारकर उनको नवधाभक्तिपूर्वक पड़गाहना करके भोजनार्थ अपने घरमें ले गया और तीन प्रदक्षणा देकर नमस्कार किया। पादप्रक्षालन पूर्वक पूजन करके दुग्ध और चांवल का आहार प्रदान किया जिससे देवताओंने उसके घरपर पंचाश्चर्य वृष्टि की। भोजनांतर भगवान पुनः वनमें गये और द्वादश प्रकारके तप करने लगे। उनके प्रभावसे भगवानको अष्ट प्रकारकी ऋद्धि और अनेक प्रकारकी सिद्धियां प्राप्त हुईं।

तत्पश्चात् फिरते २ भगवान एक दिन उज्जयनी नगरीके समीप आकार श्मशान भूमिमें **पद्मासनसे ध्यान** धरकर बैठ

१ दूसरेके मनमें तिष्ठते पदार्थोंका ज्ञान लेना सो मनःपर्यय-ज्ञान है।

गये। उस समय सातकीका पुत्र स्थाणु नामका ग्यारहवां रुद्र (अंतिम रुद्र) था, उसने भगवानको देखा। देखते ही उसे पूर्वभव स्मरण हो आये, जन्मांतरमें यह हमारा शत्रु था। ऐसा स्मरण करके भगवान पर **नाना प्रकारके उपसर्ग** किये। उसने विद्याके प्रभावसे विकाराल स्वरुप बनाया। कभी मोटा भयंकर हो जाता था, कभी रोता, कभी हँसता, कभी गाता था व अपने दाँत बड़े २ बढ़ाकर मुहमेंसे अग्निज्वाला बाहर करता हुवा भगवानको भय दिखाने लगा। भगवान रंच मात्र भी चलायमान नहीं हुये। तत्पश्चात् उसने भयंकर सिंह सर्पका स्वरूप बनाकर खानेको दौड़ा तथा मायामयी भयंकर सेना बनाकर हरतरहसे भगवानको उपसर्ग किया परंतु भगवान जरा भी नहीं डिगे. तब लाचार होकर सब उपद्रव बंदकर दिया और समझ लिया कि ये कोई महात्मा हैं. तब स्तुति-पूर्वक नमस्कार करके चल दिया। इसी प्रकार भगवान्‌ने भिन्न २ बनोंमें विहार करते २ बारह वर्ष तक अनेक प्रकारके घोर तपश्चरण किये। तत्पश्चात् ४२ वें वर्ष एक दिन जृंभिला ग्रामके निकट बनमें आये। वहांपर एक शालवृक्षके नीचे शिला थी. उसीपर ध्यान धरकर बैठ गये। वहांपर भगवानके तपःप्रभावसे बन समस्त ऋतुओंके फलफूल युक्त होगया। सिंह गाय एक घाट पानी पीने लगे. सब जीवोंने अपना जातीय बैर छोड़कर शांतभाव धारण करलिया।

केवलज्ञानकी प्राप्ति ।

भगवानने उस शिलापर ध्यानके प्रभावसे चार प्रकारके **घातियाकर्मोंकी ६३ प्रकृतियोंको नाश** करके वैशाख सुदि दशमी उत्तरा और हस्त नक्षत्रके योगमें **केवलज्ञान** [सर्वज्ञत्व] प्राप्त किया । उस समय नवलब्धिकी प्राप्ति हुई। अनंत चतुष्टय अर्थात् अनंतदर्शन, अनंतज्ञान, अनंतवीर्य, अनंतसुख उत्पन्न हुये । स्वर्गमें इंद्रने अपने अवधिज्ञानसे जानकर कि भगवानको केवलज्ञान प्राप्त हुआ है, आसनसे उठकर सात पैंड़ चलकर परोक्ष नमस्कार किया और कुबेरको भगवानके धर्मोपदेश श्रवणार्थ समवसरण नामका सभामंडप रचनेका हुकुम दिया । तथा समस्त देवों सहित भगवानके समवसरणमें जाकर भगवानके तीन प्रदक्षणापूर्वक दर्शन करके नमस्कार किया तथा एक हजार आठ नामोंका स्तोत्र रचकर स्तुति की। तत्पश्चात् भगवानकी **दिव्य ध्वनिमें** धर्मोपदेश पदार्थोंका स्वरूप वर्णन होने लगा, परंतु विना गणधरके उस वाणीको धारणपूर्वक कौन विस्तारसे वर्णन कर सके ? तब इंद्रने अवधिज्ञानसे जाना कि इन लोगोंमें तो कोई गणधर होनेलायक है नहीं, किंतु **इंद्रभूति** नामका एक ब्राह्मण पंडित जो कि **गौतम** नामसे प्रसिद्ध है वह जिनधर्मसे विरुद्ध चार वेद, अठारह पुराणादिक समस्त शास्त्रोंका ज्ञाता है । उसको किसी प्रकारसे बहकाकर यहां लाऊं, तो भगवानका दर्शन करते ही वह जैनधर्म धारण करके भगवानका गणधर

बन जायगा। तब इंद्रने एक कठिन श्लोक बनाकर **वृद्ध ब्राह्मणका स्वरूप** धारण किया और जहां गौतम अपने ५०० शिष्योंको पढ़ा रहा था वहांपर गया और बोला कि—" मैं श्रीवर्द्धमानस्वामीका शिष्य हूं। वे एक श्लोक मुझे बताकर तत्काल ही ध्यानमें बैठ गये, मुझे इस श्लोकका अर्थ तक नहीं बताया, लाचार! आपका नाम सुनकर आया हूं सो आप इसका अर्थ बताइये"।

गौतमने कहा कि—हम तुम्हारे श्लोकका अर्थ तो बता देंगे, परंतु तुमको हमारा शिष्यत्व धारण करना होगा। इंद्रने कहा कि 'तथास्तु' उस समय **गौतमके** पांचसौ शिष्योंमेंसे सबकी तरफसे एक शिष्य बोल उठा कि हम भी एक श्लोक देंगे उसका अर्थ यदि तुम कर दोगे तो हम पांचसौ जने तुम्हारे शिष्य हो जांयगे। इंद्रने कहा कि यदि मेरेमें इतनी बुद्धि होती तो मैं इस श्लोकका अर्थ पूछनेको यहां क्यों आता! तत्पश्चात् गौतमने अपने शिष्यको चुप करके इंद्रसे कहा कि वह श्लोक तो सुनावो कि कैसा है। तब इंद्रने नीचे लिखा श्लोक[१] पढ़कर सुनाया—

त्रैकाल्यं द्रव्यषट्कं सकलगतिगणा सत्पदार्था नवैव
विश्वं पंचास्तिकायव्रतसमितिविदः सप्ततत्त्वानि धर्मः।

१ यह श्लोक इतिहास लिखनेवालेका है. इंद्रने इसी अभिप्रायका और कहा था।

सिद्धेर्मार्गस्वरूपं विधिजनितफलं जीवषट्कायलेश्याः
एतान्यः श्रद्दधाति जिनवचनरतो मुक्तिगामी स भव्यः ॥१॥

इस श्लोकको सुनकर **इंद्रभूति** (गौतम) बड़े विचारमें पड़ गये। तीन काल कौनसे, षट्द्रव्य नवपदार्थ कौनसे है ये सब किस ग्रंथमें हैं इत्यादि कुछ भी निर्णय नहीं कर सके। यदि झूठमूठ ही कोई अर्थ बनाकर कहदूंगा तो महावीरस्वामी सर्वज्ञ है उनके सामने मेरी पोल खुल जायगी। इस ब्राह्मणसे वाद करनेमें भी कोई लाभ नहीं क्योंकि इसके साथ वादमें यदि हार गया तौ बड़ी भारी हंसी होगी—अपमान होगा। इससे तौ महावीरस्वामीके पास जाना ही ठीक है, वह पुरुषोत्तम है। उसके पास जानेमें कोई हानि भी नहीं है उनके पास यदि हारजाऊंगा तो भी कुछ अपमान नहीं होगा। ऐसा विचार करके इंद्रसे बोले कि—"चल, तेरे गुरुके पास ही इसका अर्थ कहूंगा" इंद्र तौ यह चाहता ही था कि यह किसी प्रकार भगवानके **समवसरनमें** चले। तत्पश्चात् गौतम अपने पांचसौ शिष्यों तथा अपने वायुभूत और अग्निभूति नामके दोनों विद्वान भ्रातासहित महावीरस्वामीके समवसरणमें जानेको तैयार होगया। इसके दोनों भ्राता भी बड़े विद्वान् और प्रत्येकके पांचपांचसौ शिष्य थे। समवशरणके पास जाते ही दरवाजेपर **मानस्तंभको** देखा, उसके देखते ही उन सबका मान नष्ट होगया, तब नम्रता धारणपूर्वक समवसरणमें

जाकर समवसरनकी विभूति और भगवानको देखनेसे तौ उनके मिथ्याविचार नष्ट होगये। भक्तिसे गद्गदकंठ होकर भगवानको तीन प्रदक्षणा देकर नमस्कार किया और १००८ नामोंसे स्तुति करके २मनुष्यसभामें जाकर सबके सब बैठ गये। तत्पश्चात् भगवानसे इंद्रभूतिने प्रार्थना की कि, महाराज! अब आपके मुखसे धर्मोपदेश होना चाहिये। जीवतत्त्वका लक्षण क्या हैं. उसके गुणपर्याय कौन २ हैं, संसार क्या है, मोक्षका स्वरूप क्या है ये सब कृपा कर कहिये।

तत्पश्चात् सर्वज्ञ केवलीभगवान् **महावीरस्वामीकी दिव्य-ध्वनिमें** तत्त्वनिरूपण होने लगे। प्रथम ही **सप्तभंगी** न्यायका वर्णन हुआ तत्पश्चात्, जीव, अजीव, आस्रव, बंध, संवर, निर्जरा और मोक्ष इन **सप्ततत्त्व, नवपदार्थ, पंचास्तिकाय**

---

२ भगवानके समवशरणमें १२ सभा होती हैं। बीचमें तीन कट्टनीदार बहुत ऊंची एक बेदी होती है उसपर एक रत्नमयी सिंहासन होता है. उसपर भगवान अधर विराजमान होते हैं। भगवानका मुख पूर्वदिशाको होता हैं परंतु अतिशयके प्रभावसे चारोंओर चार मुखवाले दिसते हैं उस बेदीके चारों ओर १२ सभा होती हैं। चार सभामें चार प्रकारके देव। चारमें चार प्रकारकी देवांगना। एकमें मुनि, एकमें मनुष्य, एकमें आर्जिका और स्त्रियें और एकमें सर्वप्रकारके पशु पक्षी आदि तिर्यंचजीव बैठते हैं।

प्रभृतिका सविस्तर बर्णन हुआ । तत्पश्चात् महावीरस्वामीने गौतमसे कहा कि **मोक्षका प्रधानकारण सम्यक्त्व** है। वह सम्यक्त्व आज्ञा १ मार्ग २ उपदेश ३ सूत्र ४ वीर्य ५ संक्षेप ६ विस्तार ७ अर्थ ८ अवगाढ ९ और परमावगाढ १० ऐसे दशप्रकारका है इन सबका भिन्न २ वर्णन करके गृहस्थधर्म और मुनिधर्मका वर्णन किया। उसको सुनते ही गौतमादिको वैराग्य उत्पन्न हो गया। तत्काल ही दोनों भ्राता और ५०० शिष्योंसहित दिगंबरी दीक्षा धारण कर जैनसाधु हो गये। **गौतमको** (इंद्रभूतिको) उसीदिन **अवधिज्ञान** और **मनःपर्ययज्ञानकी** प्राप्ति हुई और भगवानके प्रथम गणधर होकर द्वादशांगवाणीकी रचना की। तत्पश्चात् इंद्रने भगवानको नमस्कार करके प्रार्थना कियी कि आप अब इस आर्यखंडमें सर्वत्र विहार करके धर्मामृतकी वर्षा करें। तब भगवानने धर्मोपदेश करनेकेलिये विहार किया। कुबेर समवसरणकी रचनाको वहांसे विलय करके भगवानने जहां २ उपदेश किया उसी २ जगह समवसरणसभाकी रचना करता रहा। भगवान् जहां २ जाते थे सौ सौ योजनेमें दुर्भिक्ष नष्ट होजाता था, समस्तजीव वैरभाव रहित होकर शांतिसे कालयापन करते थे।

एक समय विहार करते २ मगधप्रदेशकी (बिहार प्रांतकी) प्रसिद्ध **राजगृही नगरी** के सन्निकट विपुलाचल पर्वतपर भगवान का समवसरण स्थापित हुआ, जिसके प्रभावसे बनमें

समस्त वृक्षलतायें छहों ऋतुओंके फलपुष्प सहित सुंदर हो-गये। बनपालकने समस्त ऋतुओंके अपूर्व २ फलपुष्प संग्रह करके राजगृही नगरीके अधिपति **श्रेणिक महाराजके** सन्मुख भेट किये। राजाने बिना ऋतुके फलपुष्प देखकर आश्चर्यसे मालीको पूछा कि—ये बिना ऋतुके फलफूल कहांसे लाया! मालीने हाथ जोड़कर निवेदन किया कि—महाभाग! आपके पुण्य प्रतापसे विपुलाचल पर्वतपर त्रिभुवनपति **महा-वीर स्वामीका समवसरण** आया है, उसके ही प्रभावसे समस्त बन फलफूलयुक्त हो गया है। व्याघ्र और गौ एकघाट पानी पीकर प्रेमके साथ परस्पर चाट रहे हैं। सिंह और हाथी एक साथ खेलते हैं। हंस और बिलाव एकत्र होकर नाचते कूदते हैं। सर्प और न्योले परस्पर आलिंगन कर रहे हैं। इत्यादि वृत्तांत सुननेसे श्रेणीक महाराजको बड़ा आनंद हुआ. सिंहासनसे उठकर पर्वतकी ओर ७ पैंड चलकर **परोक्ष नम-स्कार** किया और शहर भरमें आनंद भेरी दिलाकर भगवानके दर्शनपूजनार्थ सबको अपना साथी बनाया। हाथीपर चढ़कर बड़े गाजेबाजे सहित पर्वतपर गया। मानस्तंभको देखते ही हाथीसे उतर छत्रचमरादि राजचिह्न छोड़कर पैदल ही सम-वसरनकी ओर बढ़ गया। समवसरनमें जाकर तीन प्रदक्षणा-पूर्वक भगवानको नमस्कार किया और स्तुतिकरके मनुष्यसभामें जा बैठा। भगवानकी दिव्यध्वनिमें धर्मोपदेश सुननेके पश्चात्

श्रेणिकने **गौतम गणधरको** प्रश्न किया कि भगवन्, मैं पूर्वमें कौन२ गतिमें गया, अब कौनसे पुण्यसे राजा हुआ और आपके शासनमें आया; आगेको मेरा क्या हाल होगा इत्यादि सब कहिये। भगवान् गणधरने **श्रेणिकराजाके पूर्वजन्मके** समस्त वृत्तांत वर्णन करके इस जन्मका तथा भविष्यतमें तुम प्रथम नरकमें ८४००० वर्षपर्यंत दुःखभोगकर अगली चौबीसीमें **पद्मनाभि**नामके प्रथम तीर्थंकर होवोगे। ये सब वृत्तांत सुनकर श्रेणिकको बड़ा आनंद हुआ तथा उसके भवांतर सुननेसे अन्य हजारों मनुष्योंको सम्यक्त्वकी प्राप्ति हुई और वैराग्य होनेसे जैनेंद्री दीक्षामें दीक्षित हुये। अनेक गृहस्थोंने गृहस्थके १२ व्रतग्रहण किये। इसप्रकार ३० वर्षतक धर्मोपदेश करते रहे।

महावीरस्वामीके समवसरणमें इंद्रभूति, वायुभूति, अग्निभूति आदि ११ गणधर थे। इसके सिवाय ९९०० मुनि, ३०० अंगपूर्वधारी, १३०० अवधिज्ञानी, ९०० ऋद्धिविक्रियायुक्त, ५०० चारज्ञानके धारी, ७०० कालज्ञानी, ९०० अनुत्तरवादी सब मिलकर १४००० मुनि और ३६००० अर्जिकायें थीं। ये सब भगवान् के साथही बिहार करते थे। इनके सिवाय **एकलाख श्रावक, तीन लाख श्राविकायें** और असंख्य देवदेवांगना आदि धर्मोपदेश श्रवण किया करते थे। जिससे भारतवर्षमें सब जगह प्रायः जैनधर्मका ही प्रचार होगया था तथापि जहां तहां बौद्धादि अनेक मतावलंबी अपने२ विषयरागपोषक

हिंसारूप धर्मका उपदेश भी करते रहते थे। महावीरस्वामीकी देवोपनीत समवसरणादि विभूतिको देखकर वे सब सर्वसाधारणको उपदेश करते थे कि–"यह कोई इंद्रजालिया देव या जादूगर है। ये समवसरणादि सब इंद्रजाल वा जादूके खेल हैं। तुमलोग उसके पास कभी नहीं जाना। अगर जावोगे तो तुम उसके जादूमें फंस जावोगे। तुम्हे जैनी नास्तिक बना लेवेंगे।" इत्यादि नानाप्रकारकी कल्पना कर अपने २ मतकी पोषणा करते रहे। सो ठीक ही है. संसारमें सब जीव प्रायः विषय भोगोंको ही चाहते हैं। बिना किसीकी शिक्षा के ही सब जीवोंकी प्रवृति विषय भोगलालसामें दौड़ती है। मद्यमांसादिक अभक्ष्य पदार्थोंको निरंतर भोजनपान करके विषयलालसाको बढ़ाते रहते हैं। उसपर भी **बौद्धादि मतावलंबियोने** विषयभोगलालसाको चरितार्थ करते तथा मद्यमांसादि अभक्ष्यपदार्थोका नित्यभोगलगातेहुये भी मुक्तिका साधन करसकते हैं इत्यादि सुगममार्ग बता दिया, फिर विषयलंपटी जीवोंकी प्रवृत्ति बौद्धादि हिंसामयधर्मोमें क्यों न हो? जैनधर्ममें समस्त व्रत नियम क्रियाकांडादि सांसारिकभोगोंसे विरक्त करानेवाले हैं, सो ऐसे कष्टसाध्य मतको सिवाय आत्मकल्याणवांछक विवेकियोंके अन्य किसीने भी धारण नहीं किया। वर्तमानसमयमें **दयानंदी, ब्रह्मसमाजी** आदि तो और भी सुगममार्ग निकालकर सानातनी अहिंसाधर्मसे विमुख

कर रहे हैं। सो यह विषय प्रवृत्ति इस कालमें दुर्निवार है। जिसका भवितव्य अच्छा है वही वीर पुरुष इस महावीर-स्वामीके पवित्र अहिंसामय **सनातन जैन धर्मको** धारण कर सकता है। जो लोग अहोरात्र विषयतृष्णाकी तृप्ति करनेमें ही लगे रहते हैं, मत्स्यमांसमदिरा ही जिनका भोजनपान है; वे इस धर्मको धारण करना तो दूर रहा, स्पर्श भी नहीं कर सकते।

भगवानका मोक्षगमन।

भगवान् उपर्युक्त प्रकारसे उपदेश करते २ बहत्तरवें वर्ष जब कि मोक्षहोनेमें एक मास बाकी रह गया था बिहारप्रांतके [1]पावापुर नामक स्थानपर पधारे। **पावापुरके बनमें** एक सरोवर था उसके बीचमें एक ऊंचा टीला था। उसपर एक जगह बैठकर **शुक्लध्यानका** प्रारंभ किया जिसके योगसे शेष रही ८५ कर्म प्रकृतियोंका सर्वथा नाश करके **कार्तिक कृष्ण १४ की रात्रिके** शेष और **अमावस्याके प्रभात** ही स्वाति-

१ इस समय यह स्थान बिहार स्टेशनसे ७ मील है। एक बड़े भारी तलावके बीचमें जहां कि टीला था उसपर महावीरस्वामीका सुंदर मंदिर है, वहींपर निर्वाणभूमिके चिन्ह स्वरूप महावीरस्वामीकी चरणपादुका हैं। प्रति वर्ष हजारों जैनी यात्राके लिये जाते हैं और दिवालीके दिन निर्वाणोत्सव यात्राकामेला भी बड़ी धूमधामके साथ होता है।

नक्षत्रमें भगवान् नश्वरमनुष्यशरीरको छोड़कर ७२ वें वर्षमें **निर्वाणको** (लोकशिखरपर जहां सब मुक्तजीव विराजते हैं) प्राप्त हो गये। **भगवानका शरीर** नख केशको छोड़कर सब कपूर की तरह उड़ गया। इंद्रने समस्त देवों सहित आकर भगवानका एक **मायामयी शरीर** रचा और उसमें नख केश लगाकर चंदनादि दिव्य पदार्थोंमें रख कर अग्नि कुमारके नमस्कार करते समय उनके मुकुटसे उत्पन्न हुई अग्निसे भगवानके शरीरका संस्कार किया। इस प्रकार **निर्वाणोत्सव** करके सब देव अपने २ स्थान चले गये। जिस समय भगवानको निर्वाण प्राप्ति हुई थी, ठीक उसी समय **गौतम-गणधर** महाराजको **केवलज्ञानकी** प्राप्ति हुई थी. उस समय अमावस्याकी कुछ अंधेरी रात्रि बाकी थी सो देवोंने तो रत्न-मय दीपक जलाये थे और मनुष्योंने घृत कपूर तैलादिके दीपक जलाकर अपने २ घरमें केवलज्ञान और मोक्षलक्ष्मीका पूजन किया था, उसी दिनसे प्रति वर्ष **महावीर निर्वाण-स्मृतिके लिये** यह **दीवालीपर्व** सर्वत्र मनाया जाने लगा। इस दिन मुक्तिरूपी लक्ष्मीका अर्थात् महावीरस्वामीका तथा निर्वाणभूमियोंकी ही पूजा होती रही। परंतु कुछकालके पश्चात् अनेक विद्वानोंको यह सर्वव्यापी महावीरनिर्वाणस्मृतिका दीवाली त्योंहार मनाना खटकने लगा सो वेदादि ग्रंथोंमें इसका अन्यथा वि-धान करके लोगोंको एक लक्ष्मीदेवीकी कल्पना बताकर उसकी

पूजामें लगा दिया। परंतु सब जगहसे यह प्रवृत्ति नहीं उठी है। दक्षणप्रांत गुजरातप्रांतमें तो पंचांगोंमें भी इसी दीपावलीसे नया वर्ष प्रारंभ किया जाता है। पंचांगोंमें पहिले वीरनिर्वाणसंवत् लिखा जाता था, परंतु अब उसको छोड़कर विक्रमसंवत् लिखने लगे तथापि नवीनसंवत् कार्तिकसुदी १ से ही प्रारंभ करते हैं। नयी बहियां इसी दिनसे ही प्रारंभ करके नये वर्षका कारबार चलाते हैं। इसलिये सबको चाहिये कि इस दीवालीका सच्चा इतिहास इसीप्रकार निश्चय करके नयी बहियांमें वीरनिर्वाण संवत खास२ लिखना आरंभ करे और इस पवित्र दिनमें दान धर्मादि उत्तम कार्य ही करे. जूआ खेलने आदिसे इस पवित्र त्योंहारको दिवालीया त्योंहार न बनावें। अब हम जूएका एक छप्पय लिखकर इस चरित्रको पूर्ण करते हैं।

छप्पय ।

सकलपापसंकेत, आपदाहेत कुलच्छन ।
कपटखेत दारिद्रदेत, दीसत निजअच्छन ॥
गुनसमेत जससेत, केत रवि रोकत जैसे ।
औगुन-निकर-निकेत, लेत लख बुधजन ऐसे ॥
जूआ समान इह लोकमें, आज अनीत न पेखिये।
इस विसनरायके खेलको, कौतुक हू नहिं देखिये ॥१॥

णिव्वुइकंडं ।

(निर्वाणकाण्ड गाथा ।)

अट्ठावयम्मि उसहो चंपाए वासुपुज्जजिणणाहो ।
उज्जंते णेमिजिणो पावाए णिव्वुदो महावीरो ॥१॥
वीसं तु जिणवरिंदा अमरासुरवंदिदा धुदकिलेसा ।
सम्मेदे गिरिसिहरे णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥२॥
वरदत्तो य वरंगो सायरदत्तो य तारवरणयरे ।
आहुट्ठयकोडीओ णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥४॥
णेमिसामि पज्जण्णो संबुकुमारो तहेव अणिरुद्धो ।
बाहत्तरिकोडीओ उज्जते सत्तसया सिद्धा ॥४॥
रामसुवा वेण्णि जणा लाडणरिंदाण पंचकोडीओ ।
पावागिरिवरसिहरे णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥५॥
पंडुसुआ तिण्णिजणा दविडणरिंदाण अट्ठकोडीओ ।
सेत्तंजयगिरिसिहरे णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥६॥
संते जे बलभद्दा जदुबणरिंदाण अट्ठकोडीओ ।
गजपंथे गिरिसिहरे णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥७॥
रामहणू सुग्गीओ गवयगवाक्खो य णीलमहणीलो ।
णवणवदीकोडीओ तुंगीरिणिव्वुदे वंदे ॥८॥
णंगाणंगकुमारा कोडीपंचद्धमुणिवरा सहिया ।
सुवणागिरिवरसिहरे णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥९॥

दहमुहरायस्स सुवा कोडीपंचद्धमुणिवरा सहिया ।
रेवाउहयतडग्गे णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥१०॥
रेवाणइए तीरे पच्छिमभायम्मि सिद्धवरकूडे ।
दो चक्की दह कप्पे आहुट्ठयकोडिणिव्वुदे वंदे ॥११॥
वडवाणीवरणयरे दक्खिणभायम्मि चूलगिरिसिहरे ।
इंदजीदकुंभयणो णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥१२॥
पावागिरिवरसिहरे सुवण्णभद्दाइमुणिवरा चउरो ।
चलणाणईतडग्गे णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥१३॥
फलहोडीवरगामे पश्चिमभायम्मि दोणगिरिसिहरे ।
गुरुदत्ताइमुणिंदा णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥१४॥
णायकुमारमुणिंदो वालि महावालि चेव अज्झेया ।
अट्ठावयगिरिसिहरे णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥१५॥
अच्चलपुरवरणयरे ईसाणे भाए मेढगिरिसिहरे ।
आहुट्ठयकोडीओ णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥१६॥
वंसत्थलवरणियरे पच्छिमभायम्मि कुंथुगिरिसिहरे ।
कुलदेसभूसणमुणी णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥१७॥
जसरहरायस्स सुआ पंचसयाइं कलिंगदेसम्मि ।
कोडिसिलाकोडिमुणी णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥१८॥
पासस्स समवसरणे सहिया वरदत्तमुणिवरा पंच ।
रिस्सिंदे गिरिसिहरे णिव्वाणगया णमो तेसिं ॥१९॥

अथ अइसयखेत्तकंडं ।

[अतिशयक्षेत्रकाण्डम्]

पासं तह अहिणंदण णायद्दहि मंगलाउरे वंदे ।
अस्सारम्मे पट्टणि मुणिसुव्वओ तहेव वंदामि ॥१॥
बाहूबलि तह वंदमि पोयणपुरहत्थिणापुरं वंदे ।
संती कुंथुव अरिहो वाणारसिए सुपासपासं च ॥२॥
महुराए अहिछित्ते वीरं पासं तहेव वंदामि ।
जंबुमुणिंदो वंदे णिव्वुइपत्तोबि जंबुवणगहणे ॥३॥
पंचकलाणठाणइं जाणवि संजादमच्चालोयम्मि ।
मणवयणकायसुद्धी सव्वे सिरसा णमंस्सामि ॥४॥
अग्गलदेवं वंदमि वरणयरे णिवडकुंडली वंदे ।
पासं सिवपुरि वंदमि होलागिरिसंखदेवम्मि ॥५॥
गोमटदेवं वंदमि पंचसयं धणुहदेहउच्चत्तं ।
देवा कुणंति वुट्टी केसरिकुसुमाण तस्स उवरिम्मि ॥६॥
णिव्वाणठाण जाणिवि अइसयठाणाणि अइसए सहिया ।
संजादमिच्चलोए सव्वे सिरसा णमंस्सामि ॥७॥
जो जण पढइ तियालं णिव्वुइकंडंपि भावसुद्धीए ।
भुंजदि णरसुरसुक्खं पच्छा सो लहइ णिव्वाणं ॥८॥

इति अइसइखित्तकंडं ।

अथ कविवर भैया भगवतीदासजीरचित

निर्वाणकांड भाषा।

दोहा।

वीतराग वंदौं सदा, भावसहित सिरनाय।
कहूं कांड निर्वाणकी, भाषा सुगम बनाय॥१॥

चौपाई १५ मात्रा।

अष्टापदआदीसुरस्वामि। वासुपूज्य चंपापुरि नामि। नेमिनाथस्वामी गिरनार। वंदौं भावभगति उरधार॥२॥ चरम तीर्थंकर चरमशरीर। पावापुरि स्वामी महावीर॥ शिखरसमेद जिनेसुर वीस। भावसहित वंदौं जगदीस॥३॥ वरदतराय रु इंद मुनिंद। सायरदत्त आदि गुणवृंद॥ नगरतारवर मुनि [1]उटकोड़ि। वंदौ भावसहित कर जोड़ी॥४॥ श्रीगिरनारशिखर विख्यात॥ कोड़ि बहत्तर अरु सौ सात॥ संबु प्रदुम्न कुमर द्वै भाय। अनिरुधआदि नमूं तसु पाय॥५॥ रामचंद्रके सुत द्वै वीर। लाडनरिंद आदि गुणधीर॥ पांच कोड़ि मुनि मुक्तिमझार। पावागिरि वंदौं निरधार॥६॥ पांडव तीन द्रविड राजान। आठकोड़ि मुनि मुकति पयान॥ श्रीसत्रुंजयगिरिके सीस। भावसहित वंदौं निश दीस॥७॥ जे बलिभद्र

१ साड़े तीन कोड़।

मुकतिमैं गये । आठकोड़ि मुनि औरहिं भये ॥ श्रीगजपंथशिखर सुविशाल । तीनके चरण नमूं तिहुं काल ॥८॥ राम हनू सुग्रीव सुडील । गवगवाख्य नील महानील ॥ कोड़ि निन्याणवैं मुक्तिपयान । तुंगीगिरि वंदौं धरि ध्यान ॥९॥ नंग अनंग कुमार सुजान । पंचकोडि अरु अर्धपमान ॥ मुक्ति गये सिहुनागिरसीस ते वंदौं त्रिभुवनपति ईस॥१०॥रावणके सुत आदि कुमार । मुक्त गये रेवातट सार॥ कोड़ि पंच अरु लाख पचास। ते वंदौं धरि परम हुलास ॥११॥ रेवानदी सिद्धवरकूट । पश्चिमदिशा देह जहँ छूट ॥ द्वै चक्री दश कामकुमार । ऊठकोड़ि वंदौं भवपार ॥१२॥ बड़वाणी वडनयर सुचंग । दक्षिण दिश गिरिचूल उतंग ॥ इंद्रजीत अरु कुंभ जु कर्ण । ते वंदौं भवसायरतर्ण ॥१३॥ सुवरणभद्रआदि मुनिचार । पावागिरिवर शिखरमझार ॥ चलना नदी तीरके पास । मुक्ति गये वंदौं नित तास ॥१४॥ फलहोड़ी बड़गाम अनूप । पश्चिमदिशा द्रोणगिरिरूप॥ गुरुदत्तादि मुनीसुर जहाँ । मुक्ति गये बंदौं नित तहाँ ॥१५॥ बाल महाबाल मुनि दोय । नागकुमार मिले त्रय होय ॥ श्रीअष्टापद मुक्तिमझार। ते वंदौं नित सुरतसँभार॥१६॥ अचलापुरकी दिश ईशान । तहां मेढ़गिरि नाम प्रधान ॥ साढ़ेतीन कोड़ि मुनिराय । तिनके चरन नमू चित लाय॥१७॥ वंशस्थल वनके ढिग होय । पश्चिमादिशा कुंथुगिरि सोय ॥ कुलभूषण देशभूषण नाम । तिनके चरणनि करूं प्रणाम ॥१८॥

जसरथराजाके सुत कहे। देशकलिंग पांचसौ लहे॥ कोटि शिला मुनि कोटिप्रमान। वंदन करूं जोर जुगपान॥ १९॥ समवसरण श्रीपार्श्वजिनंद। रेसंदीगिरि नयनानंद॥ वरदत्तादि पंच ऋषिराज। ते वंदौं नित धरमजिहाज॥२०॥ तीन लोकके तीरथ जहाँ। नितप्रति वंदन कीजे तहाँ॥ मन वच कायसहित सिरनाय। वंदन करहिं भविक गुणगाय॥२१॥ संवत सतरहसौ इकताल अश्विनसुदि दशमी सुविशाल॥ 'भैया' वंदन करहि तिकाल। जय निर्वाणकांड गुणमाल॥२२॥

इति निर्वाणकांड भाषा।

अथ काशीनिवासी बाबू वृंदावनजीकृत

वर्द्धमान (महावीर) जिनपूजा।

स्थापना ।मत्तगयंद।

श्रीमत वीर हरैं भवपीर, भरैं सुखसीर अनाकुलताई।
केहरि अंक अरीकरदंक, नये हरिपंकतमौलि सुहाई॥
मैं तुमकौं इत थापतु हौं प्रभु, भक्तिसमेत हिये हरखाई।
हे करुणाधनधारक देव, इहां अब तिष्ठहु शीघ्रहि आई॥

ॐ ह्रीं श्रीवर्द्धमानजिनेन्द्र अत्र अवतर अवतर। संवौषट्। अत्र तिष्ठ तिष्ठ। ठः ठः। अत्र मम सन्निहितो भव भव। वषट्॥

अथाष्टक। छंद अष्टपदी।

क्षीरोदधिसम शुचि नीर, कंचनभृंग भरौं। प्रभु वेग हरौ भवपीर, यातैं धार करौं॥ श्रीवीर महा अतिवीर, सनमति-नायक हो। जय वर्द्धमान गुणधीर सनमतिदायक हो।

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय जन्मजरामृत्युविनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा॥ १॥

मलयागिरचंदन सार, केसरसंग घसौं। प्रभु भव आताप निवार, पूजत हिय हुलसौं॥ श्रीवीर०॥ जयवर्द्धमान०॥

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय भवतापविनाशनाय चन्दनं नि०॥

तंदुलसित शशिसम शुद्ध, लीने थारभरी। तसु पुंज धरौं अविरुद्ध, पाऊं शिवनगरी॥ श्रीवीर० जयवर्द्धमान०॥३॥

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अक्षयपदप्राप्तये अक्षतान् नि०॥३॥

सुरतरुके सुमनसमेत, सुमन सुमनप्यारे। सो मनमथ-भंजन हेत, पूजूं पद थारे॥ श्रीवीर०॥ जयवर्द्धमान०॥

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय कामबाणविध्वंसनाय पुष्पं नि०॥४॥

रसरज्जत सज्जत सद्य, मज्जत थार भरी। पद जज्जत रज्जत अद्य, भज्जत भूख अरी॥ श्रीवीर०॥ जयवर्द्धमान०॥

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय क्षुधारोगविनाशनाय नैवेद्यं नि०॥५॥

तमखंडित मंडितनेह, दीपक जोवत हूं। तुम पदतर हे सुखगेह, भ्रमतम खोवत हूं॥ श्रीवीर०॥ जयवर्द्धमान०॥

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय मोहान्धकारविनाशनाय दीपं नि०॥६॥

हरिचंदन अगर कपूर, चूरि सुगन्ध करे। तुम पदतर खेवत भूरि, आठौं कर्म जरे॥ श्रीवीर०॥ जयवर्द्धमान०॥

ॐ ह्रीं श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अष्टकर्मविध्वंसनाय धूपं नि०॥७॥

रितुफल कलवर्जित लाय, कंचनथार भरौं। शिव फलहित हे जिनराय, तुमढिग भेट धरौं॥ श्रीवीर०॥ जयवर्द्धमान०॥

ॐ ह्रीं श्रीवर्द्धमानजिनेन्द्राय मोक्षफलप्राप्तये फलं नि०॥८॥

जलफल वसु सजि हिमथार, तनमन मोद धरौं। गुणगाऊं भवदधितार, पूजत पाप हरौं॥श्रीवीर०॥ जयवर्द्धमान०॥९॥

ॐ ह्रीं श्रीवर्द्धमानजिनेन्द्राय अनर्घ्यपदप्राप्तये अर्घ्यं नि०॥९॥

पंचकल्याणक—राग टप्पा

मोहि राखौ हो सरना, श्रीवर्द्धमान जिनरायजी, मोहि राखौ हो सरना॥ टेक॥ गरभ साढ़सित छट्ट लियौ थिति, त्रिशला उर अघहरना। सुर सुरपति तित सेव करत नित, मैं पूजूं भवतरना॥ मोहि राखौ०॥१॥

ॐ ह्री आषाढशुक्लषष्ठिदिने गर्भमङ्गलमण्डिताय श्रीमहावीर जिनेन्द्राय अर्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥१॥

जनम चैत सित तेरसके दिन, कुंडलपुर कनवरना। सुरगिर सुरगुरु पूज रचायौ, मै पूजूं भवहरना॥ मोहि राखौ०॥

ॐ ह्रीं चैत्रशुक्लत्रयोदशीदिने जन्ममङ्गलप्राप्ताय श्रीमहावीर जिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा॥२॥

मंगशिर असित मनोहर दशमी, ता दिन तप आचरना। नृप कुमारघर पारन कीना, मैं पूजूं तुम चरना । मोहि राखौ हो० ॥३॥

ॐ ह्रीं मार्गशीर्षकृष्णदशम्यां तपोमङ्गलमंडिताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥३॥

शुकलदशैं वैशाखदिवस अरि, घात चतुक छय करना। केवल लहि भवि भवसर तारे, जजूं चरन सुख भरना ॥ मोहि राखौ० ॥४॥

ॐ ह्रीं वैशाखशुक्लदशम्यां ज्ञानकल्याणप्राप्ताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥४॥

कातिक श्याम अमावस शिवतिय, पावापुरतैं वरना। गनफनिवृंद जजै तिन बहु विधि, मैं पूजूं भयहरना ॥ मोहि राखौ० ॥५॥

ॐ ह्रीं कार्तिककृष्णामावास्यायां मोक्षमङ्गलमंडिताय श्रीमहावीरजिनेन्द्राय अर्घं निर्वपामीति स्वाहा ॥५॥

अथ जयमाला ।

छंद हरिगीता (२८ मात्रा) ।

गनधर असनिधर चक्रधर, हरधर गदाधर वरवदा ।
अरु चापधर विद्यासुधर, तिरसूलधर सेवहिं सदा ॥
दुखहरन आनँदभरन तारन, तरन चरन रसाल हैं।
सुकुमाल गुन मणिमाल उन्नत, भालकी जयमाल हैं ॥१॥

छंद घत्तानंद (३१ मात्रा)

जय त्रिशलानंदन हरिकृतवंदन, जगदानंदनचंद वरं।
भवतापनिकंदन तनमनवंदन, रहितसपंदन नयन धरं ॥२॥

छंद तोटक।

जय केवलभानुकलासदनं। भविकोकविकाशन कंजवनं ॥
जगजीत महारिपु मोहहरं। रजज्ञानदृगांबरचूरकरं ॥ १ ॥
गर्भादिक मंगल मंडित हो। दुख दारिदको नित खंडित हो।
जगमाहिं तुमी सत पंडित हो। तुम ही भवभावविहंडित हो॥२॥
हरिवंशसरोजनकौं रवि हो। बलवंत महंत तुमी कवि हो।
लहि केवल धर्मप्रकाश कियौ। अबलौं सोई मारग राजति यौ॥३॥
पुनि आपतने गुणमाहिं सही। सुर मग्न रहैं जितने सब ही।
तिनकी वनिता गुण गावत हैं। लय ताननिसौं मनभावत हैं॥४॥
पुनि नाचत रंग अनेक भरी। तुव भक्तिविषै पग एम धरी।
झननं झननं झननं झननं। सुर लेत तहाँ तननं तननं ॥५॥
घननं घननं घनघंट बजें। दृमदं दृमदं मिरदंग सजैं।
गगनांगणगर्भगता सुगता। तता तता अतता वितता ॥६॥
धृगतां धृगतां गति बाजत है। सुरताल रसाल जु छाजत है।
सननं सननं सननं नभमैं। इकरूप अनेक जु धार भमैं ॥७॥
कइ नारि सु वीन बजावतु हैं। तुमरौ जस उज्जल गावतु हैं।
करतालविषैं करताल धरैं। सुरताल विशाल जु नाद करैं ॥८॥
इन आदि कनक उछाहभरी। सुरभक्ति करैं प्रभुजी तुमरी।

तुमही जगजीवनकेपितु हो । तुमही विनकारनके हितु हो ॥९॥
तुमही सब विघ्न विनाशन हो । तुमही निज आनंदभासन हो ।
तुमही चितचिंतितदायक हो । जगमाहिं तुमी सब लायक हो १०
तुमरे पनमंगलमाहिं सही । जिय उत्तम पुण्य लियौ सब ही ।
हमको तुमरी सरनागत है । तुमरे गुनमैं मन पागत है ॥११॥
प्रभु मो हिय आप सदा बसिये । जबलौं वसुकर्म नहीं नसिये ।
तबलौं तुम ध्यान हिये वरतो । तबलौं श्रुतचिंतन चित्त रतो
तबलौं व्रत चारित चाहत हौं । तबलौं शुभ भाव सुगाहत हौं ।
तबलौं सतसंगति नित्य रहौ । तबलौं मम संजम चित्त गहौ १३
जबलौं नहिं नाश करौं अरिको । शिवनारि वरौं समताधरिको ।
यह द्यो तबलौं हमको जिनजी । हम जाचत हैं इतनी सुन जी

छंद घत्तानंद ।

श्रीवीर जिनेशा नमितसुरेशा, नागनरेशा भगतिभरा ।
'वृंदावन' ध्यावै विघ्न नशावै, वांछित पावै शर्मवरा ॥ १५ ॥

ॐ ह्रीं श्रीवर्द्धमानजिनेन्द्राय पूर्णार्घ्यं निर्वपामीति स्वाहा॥

दोहा ।

श्रीसनमतिके जुगलपद, जो पूजहिं धर प्रीत ।
वृंदावन सो चतुरनर, लहैं मुक्त नवनीत ॥ १६ ॥

इत्याशीर्वादः ।

इति महावीरजिनपूजा समाप्ता ।

જાણવા યોગ્ય વર્તમાન.

—આખા હિંદુસ્થાનનું ક્ષેત્રફળ ૧૭૭૩૧૬૮ ચોરસ માઇલનું છે, જેમા મદ્રાસ પહેલે નંબરે (૧૪૨૪૧૩ ચો. માઇલ), મુંબાઈ બીજે નંબરે ૧૨૩૨૯૨) અને બંગાલ ત્રીજે નંબરે (૧૧૫૮૧૬) આવે છે.

—હિંદુસ્થાનમાં ૨૧ લાખ માણસોનેજ અંગ્રેજી લખતાં વાંચતાં આવડે છે

—હિંદુસ્થાનનુ ઉત્પન્ન રૂ. ૧૨૨ કરોડનુ છે, જે ઇગ્લાંડના ઉત્પન્ન કરતાં ત્રીજા ભાગ જેવડું છે.

—યુરોપમા દર માણસની વાર્ષિક ઉપજ રૂ. ૪૦૦) જેટલી છે ઇગ્લાંડમા રૂ ૬૦૦)થી૭૦૦) અને હિંદુસ્થાનમાં માત્ર રૂ. ૨૦) ના લગભગ છે

—હિંદુસ્થાનના આયાત વેપાર રૂ ૧૫૨. કરોડનો છે જ્યારે નિકાશ વેપાર રૂ. [illegible]૪૮) કરોડનો છે

—હિંદુસ્થાનમાં ભણેલા માણસોનું પ્રમાણ હજારે ૧૦૬ છે જ્યારે સ્ત્રીઓનું પ્રમાણ દર હજારે ૧૪ છે

—હિંદુસ્થાનમા ભણેલા માણસ માત્ર ૧ાા કરોડ છે

—હિંદુસ્થાનમા ૭૪૧૭ વર્તમાનપત્રો છે

—હિંદી પ્રજાના પાસ્ટલ સેવીંગ બેંકમાં રૂ ૧૭ કરોડ રોકાયલા છે, જ્યારે ઇગ્લાંડની પોસ્ટલ સેવીંગ બેંકમાં રૂ. ૨૨૫ કરોડ છે.

—હિંદુસ્થાનમાં રેલ્વે ૩૩૦૦૦ માઇલ લંબાયલી છે

દુનિયામાં સર્વે સમુદ્રોમાં એટલાન્ટીક સમુદ્ર સર્વથી વધુ ખારો છે.

—દિગંબર જૈનો તરફથી હાલમાં માસિક, પાક્ષિક, અઠવાડીક વગેરે ૧૭ પત્રો પ્રકટ થાય છે, જેની ભાષા ગુજરાતી, હિંદી, અંગ્રેજી, મરાઠી, કાનડી, કર્ણાટકી અને ઉર્દૂ એમ સાત જાતની છે.

॥ ॐ ॥

श्री जम्बूस्वामी चरित्र।

प्रकाशक

मूलचन्द किसनदास कापड़िया–सूरत।

परलोकवासी नानी बहिन उर्फी धनगवरीके

स्मरणार्थ "दिगंबर जैन" पत्रके सप्तम

वर्षका छठवां उपहार (छट्ठी भेट.)

दिगंबर जैन ग्रंथमाला (सूरत)

नं. १. कलियुगनी कुलदेवी (गुजराती प्रति २०००) ०)०॥।
,, २. श्रुतपंचमी महात्म्य (श्रुत पूजा सहित १०००) ०)=
,, ३. धर्म परीक्षा (अमितगति आचार्यकृत. गुजराती भाषा बालबोध लिपि. पृष्ठ २५०. प्रति ११००) १)
,, ४. सुदर्शन शेठ (गुजराती भाषा. प्रति १०००). ०।
,, ५. सुकुमाल चरित्र (गुजराती भाषा, बालबोध लीपि. प्रत १०००) ०।≈
,, ६. पंचेंद्रीय संवाद (गुजराती भाषा प्रत १०००) ०)-॥
,, ७. तमाकुनां दुष्परीणामो (गुजराती प्रत १०००) ०)-
,, ८. सामायिक पाठ (संस्कृत-भाषा, विधि, अर्थ, आलोचना पाठ सह. प्रत १५००) ०)-॥
,, ९. शीलसुंदरी रास (गुजराती भाषा प्रत १३००) ०)=
,, १०. सामायिक भाषा पाठ (सार्थ. प्रति ११००) ०)-
,, ११. कलियुगकी कुलदेवी (हिंदी १००००) सद्वर्तन.
,, १२. भट्टारक मीमांसा (गुजराती भाषा. प्रति १२००) ०)=
,, १३. प्राचीन दिगंबर-अर्वाचीन श्वेतांबर (गुजराती भाषा प्रति ११००) ०)=
,, १४. श्रीपंच कल्याणक पाठ (रूपचंदजी कृत. गुजराती अर्थ सहित, प्रति २०००) ०)=
,, १५. मनोरमा (शील महात्म्य. गुजराती १३००) ०।=
,, १६. श्री हनुमान चरित्र (हिंदी भाषा. प्रति २०००) ०।=

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

श्री जम्बूस्वामी चरित्र ।

हिंदी भाषानुवादक—

मास्टर दीपचंदजी उपदेशक (नरसिंहपुर.)

प्रकाशक—

मूलचंद किसनदास कापड़िया,

ऑ० संपादक, "दिगंबर जैन"—सूरत ।

प्रथमावृत्ति । वीर सं. २४४० प्रति २०००

परलोकवासी **नानी बहिन** उर्फ़ा **धनगवरी** (सूरत निवासी शा. किसनदास पूनमचंद कापड़ियाकी पुत्री और भावनगर निवासी शा. हीरालाल वालचंद वागड़ियाकी सौ. पत्नि) के स्मरणार्थ "**दिगंबर जैन**" पत्रके ग्राहकोंको सप्तम वर्षमें छठवां उपहार (भेट)।

मूल्य रु. ०—४—०.

प्रस्तावना।

प्राचीन संस्कृत ग्रंथके आधारसे **श्री जिनदास कविने श्री जम्बूस्वामी चरित्र** छंदबद्ध लिखा था और सन् १९०२ में **मुन्शी नाथूराम लमेचू** (कटनी मुड़वारा) ने प्रकट किया था, परंतु उसका सम्बन्ध ठीक नहीं मिलता और साधारण मनुष्य व हिन्दी जाननेवालोंके सिवाय अन्य कोई भी समझ नहीं सक्ते थे, इस लिये उसकी अति सरल भाषा हमारे परम मित्र **मास्टर दीपचंदजी उपदेशक** (नरसिंहपुर सी. पी.) द्वारा तैयार कराके यह पुस्तक हमारी **भगिनी नानी बहिन उर्फा धनगवरी** जो इसी वर्षमें मात्र १९ वर्षकी अल्प आयूमें परलोकवासी हुई, उनके समरणार्थ उनका चित्र सहित प्रकट की जाती है। यह कथा जितनी रोचक है, उतनीही उपदेश पूर्ण है और बीच-बीचमें उपदेशपूर्ण शिक्षाएं दोहा चौपाई वगैरः भी कहीं गई है, जिसके पढ़नेसे सहज ही अच्छी शिक्षा मिल सक्ती है। आदिमें कुछ भूगोलका संक्षिप्त वर्णन जैन शास्त्रानुसार भी दिया गया है। आशा है यह पुस्तक सर्वप्रिय होगी।

वीर सं. २४४० | जैन जातिका सेवक,
ज्येष्ठ शुक्ल ९ | मूलचंद किसनदास कापड़िया–सूरत.



स्वर्गवासी नानीब्हेन उर्फे धनगवरी.

(सुरतनिवासी शा. कसनदास पुनेमचंद कापडीआनी पुत्री अने भावनगरनिवासी शा. हीरालाल वालचंद वागडीयानी स्व. पत्नि)

जन्म विक्र. सं. १९५१. मृत्यु विक्र. सं. १९७०

जैन प्रेस सुरत,

॥ ॐ नमः सिद्धम् ॥

श्री जंबूस्वामी चरित्र.

प्रथम प्रणम परमेष्टि गण, प्रणमो सारद पाय।
गुरु निर्ग्रन्थ णमो सदा, भव भवमें सुखदाय ॥
धर्म दया हिरदे धरूं, सब विधि मंगलकार।
जंबूस्वामी चरितकी, करूं बचनिका सार ॥

॥ अथ बचनिका प्रारंभ ॥

मध्य लोक के असंख्यात द्वीप और समुद्रोंके मध्य एक लाख योजन (२००० कोस=४००० माइल) व्यासवाला गोल **जंबू** नाम द्वीप है। जिसके मध्यमें नाभिकी शोभा देनेवाला एक **सुदर्शन मेरु** नामका पर्वत पृथ्वीसे ९०००० योजन ऊंचा है जिसकी जड़ पृथ्वीमें १०००० योजन है। इस पर्वत पर चार बन हैं—**भद्रसाल, नंदन, सौमनस,** और **पांडुक**। इन चारों बनोंमें चहूं ओर चार २ अकृत्रिम (बिना बनाये=अनादि निधन) **जिन चैत्यालय हैं**, जहां पर देव, विद्याधर तथा इन्हींकी सहायता पाकर अन्य पुण्यवान पुरुष नित्य दर्शन, पूजन, ध्यान करके अपना आत्मकल्याण करते हैं।

अंतके पांडुक बनमें चहूं दिश चार अर्द्ध चन्द्राकार शिलाएं हैं, जिन पर जन्म कल्याणकके समय इन्द्र श्री तीर्थंकर देव को बिराजमान कर १००८ क्षीर नीरके कलशोंद्वारा अभिषेक करता है। इस पर्वतकी तलहटीमें चारों ओर चार गजदंत (हाथीके आकारवाले) पर्वत हैं इनपर भी अकृत्रिम चैत्यालय* हैं।

इस पर्वतके उत्तर और दक्षिणमें हिमबन्, महांहिमबन् निषध, निल, रुक्मि और शिखरी, ऐसे छः महा पर्वत दण्डाकार पूर्वसे पश्चिम समुद्र तक आड़े फैले हुवे हैं, जिनके कारण जंबूद्वीपके स्वाभाविक सात भाग हो गये हैं। सुदर्शन मेरुके आसपास के क्षेत्रको जो पूर्वसे पश्चिम समुद्र तक दो महा पर्वतों के मध्यमें पड़ा हुवा है, उसका नाम विदेह क्षेत्र है। अर्थात् जहां पर सदैव बीस तीर्थंकर विद्यमान (उपस्थित) रहते हैं। जिनके नाम अनादि यही होते हैं। सीमंधर, युगमंधर, बाहु, सुबाहु, संजातक, स्वयंप्रभु, ऋषभानन, अनंतवीर्य, सूरप्रभ, विशालकीर्ति, वज्रधर, चन्द्रानन, चन्द्रबाहु, भुजंगम, ईश्वर, नेमिप्रभ, वीरषेण, महाभद्र, देवयश, अजितवीर्य; और जहां सदैव काल चौथे कालके आदि प्रमाण मनुष्योंकी आयु, काय, बल, वीर्यादि होते हैं तथा सदैव इस क्षेत्रसे जीव कर्मको नाश कर मोक्ष प्राप्त कर सक्ता है। अर्थात् जहांपर काल चक्रकी फिरन नहीं है। इसीसे इसका नाम विदेह क्षेत्र हुवा। बाकी उन महापर्वतोंके दोनों ओर भरत, ऐरावत, हैमवत्, हरि,

* अकृत्रिम चैत्यालयोंका वर्णन कथन बढ़नेके भयसे यहां किया नहीं है।

रम्यक, हैरण्यवत, ऐसे षट् क्षेत्र और हैं। इनमें उत्तरकी ओर ऐरावत और दक्षिणकी ओर बिलकुल समुद्र तट पर भरत नामका क्षेत्र हैं। इनके मध्यमें एक एक वैताढ्य पर्वतके पड़जाने से दो दो भाग हो गये हैं, और महापर्वतोंसे दो दो महा नदी निकल कर उत्तर दक्षिण समुद्रमें जाकर मिली हैं, जिससे एक भागके तीन तीन भाग हो गये हैं। इन सबको मीलाकर एक एक क्षेत्रके छः छः भाग हुवे अर्थात् छः ऐरावतके और छः भरतके, इन छः छः खंडोंमेंसे अत्यन्त उत्तर और दक्षिण भागमें समुद्रसे मिला हूवा एक एक आर्य खंड है और इसके तीनों दिशावोंमें पांच पांच * मलेच्छ खंड हैं। इन्हीं आर्य खंडोंमें त्रेशठ शलाकादि उत्तम पूरुषोंकी उत्पत्ति होती है और इन्हीं खंडोंमें अवसर्पिणी, उत्सर्पिणी के छः कालोंके चक्रकी फिरन होती है।

इसही भरत क्षेत्रके आर्य खंडमें एक मगध नाम देश है और उसमें राजगृही नामकी नगरी है। (बिहार स्टेशनसे अनुमान १० कोस पर है)। इस समय यह नगरी बिलकुल उजाड हो रही है, इसीके पासमें उदयागिरि, सोनागिरी, खंडगिरि, रत्नागिरि और विपुलाचल नामकी पंच पहाड़ियां हैं, इन पहाड़ियोंके कारण यह स्थान अत्यन्त मनोग्य मालूम होता है।

---

* मलेच्छ खंड—उसे कहता हैं जहांके लोग स्वेच्छाचारी अधर्मी—धर्म ज्ञान रहित हों। इन खंडोंमें भी काल चक्रकी फिरन नहीं है।

पूर्व समयमें इस नगरीकी शोभा अवर्णनीय थी, मानो स्वर्गपुरी ही है। नाना प्रकारके वन, बागबगीचे, कुवे, वावली, तालाव, नदी आदिसे शोभित था। चारों ओर बड़े बड़े उतंग महल कि जिनको देखनेसे आकाशसे मिले हुवे मालूम होते थे–बने हुवे थे। जहां पर ठौर ठौर जिन मंदिर बन रहे थे, कैसे हैं जिन मंदिर मानो अकृत्रिम चैत्यालयोंका नकशा ही उतार कर रख दिया है। नाना प्रकारके चित्रोंसे चित्रित कहीं स्वर्गकी संपत्ति दृष्टिगत होती है, तो कहीं नरककी वेदना दिख रही है, कहीं तिर्यंच गतिके दुःखोंका दृश्य दिखाई दे रहा है, कहीं रोगी, वियोगी, शोगी नर नारियोंका चित्र खिंच रहा है, कहीं पर भव भोगों से विरक्त परम दिगंबर ऋषी अपनी ध्यान मुद्रामें मग्न हुवे तीन लोककी संपत्तिको त्रणवत् त्यागे हुवे निश्चल ध्यानयुक्त बैठे हुवे मालूम हो रहे हैं। श्री जिनेन्द्रकी वीतरागी मुद्राको देख कर परम कषायी भी शांत हो जाता है अर्थात् जहां संसार दशाका भले प्रकार अनुभव होता है ऐसे जिन मंदिर तोरन पताकादि कर शोभायमान हैं। ऐसी अनेक शोभा कर संयुक्त वह नगरी है जहां पर भिक्षुक व भयवान दरिद्री पुरुष तो दृष्टिगोचर होते ही नहीं हैं। जहांका राजा श्रेणिक महा मंडलेश्वर राजनीति निपुण, न्यायी, यशस्वी और महाबली है। बहुतसे मुकुटबंध राजा जिसकी आज्ञा मानते हैं।

एक समय राजा श्रेणिक अपनी राजसभामें बैठे हुवे थे, कि बनमालीने आकर छहूं ऋतुके फल फूल लाकर राजाको भेंट किये और विनय की–भो स्वामीन्! विपुलाचल पर्वतपर अंतिम तीर्थंकर श्री वीरजीनका समौसरण आया है, जिसके प्रभावसे ये सब ऋतुवोंके फलफूल आ गये हैं। वापी, कुवे, तलाव, आदि सब हरे भरे दृष्टिगोचर हो रहे हैं।

राजा यह समाचार सुनकर अत्यानन्दको प्राप्त हूवा और तुरंत ही सिंहासनसे उतर कर सात पैड़ (पगलां) चलकर प्रभुकी परोक्ष वंदना की, पश्चात् एक मुकुटको छोड़ कर सब वस्त्राभूषण जो शरीरपर थे, वनमालीको उतारकर दे दिये और नगरीमें घोषणा कराई कि प्रभु वीर जिनका समवसरण विपुलाचल पर्वतपर आया है, इस लिये सर्व नर नारी वंदना को चलो। घोषणा (ढूंढ़ी) को सुनकर पुरजन बहुत हर्षित हो शक्ति प्रमाण अष्ट द्रव्य ले लेकर वंदनाको चले और राजा भी प्रजा सहित जाता हुवा ऐसा मालूम होता था मानो इन्द्र ही सेन्या सहित आया हो। जब समौसरणके निकट पहुंचे, तब राजा रथसे उतर पांव पैदल चलने लगा। प्रथम मानस्थंभ (जिसके देखने मात्रसे मानी पुरुषोंका मान जाता रहता है) का दर्शन कर समवसरणमें प्रवेश किया और तीन प्रदक्षिणा देकर नमस्कार किया, पश्चात् श्रीजीकी पूजा करके मनुष्योंके कोठेमें (सभामें) बैठा। बहुत प्रकारसे स्तुति करके विन्ती की–" हे नाथ! मुझे संसारसे पार करनेवाला धर्म कृपा करके

कहिये ! ” तब प्रभुकी दिव्य ध्वनि खिरी और तदनुसार गौतम स्वामी (जो प्रथम गणधर चार ज्ञान के धारी थे)ने कहा;–

“ हे राजा, सुनो! इस अनादि निधन संसारमें यह जीव अनादि कर्मोंके वश हुवा मदिरापानी बावलेकी तरह चतुर्गतिमें भ्रमण करके नाना प्रकार जन्म और मरणके दुखोंको सह रहा है। यह (जीव) मिथ्या भ्रमसे पर वस्तुवोंमें आपा मान कर आपको भूल रहा है और अपनी अलख संपत्ति और अविनाशी सुखका अनुभव न कर इन्द्री विषयोंमें आशक्त होकर आप ही सुखी होना चाहता है, परंतु हे राजा ! जहां तृष्णारूपी अग्नि प्रज्वलित है वहां भोग सामग्रीरूप ईंधनसे तृप्ति ही कहां ? ज्यों ज्यों यह विषयभोगकी सामग्री मिलती जावे त्यों त्यों आशा तृष्णा की इच्छाएं बढ़ती ही चली जाती हैं। प्रत्येक जीवको इतनी तृष्णा है कि तीन लोक की सामग्री भी कदाचित मिल जाय तो इस (जीव)के आशा तृष्णा रूपी खाड़े (गर्त)का असंख्यातमा भाग भी न भरे। और लोकतो एक ही और जीव अनंतानंत है, और प्रत्येक को इस प्रकारकी आशा तृष्णा और इच्छाएं है सो इनमें सुखकी इच्छा करना, मानो पत्थर पर कमलका लगाना है। तात्पर्य यह संसार दुख-मई है। इसमें सुख रंचमात्र भी नहीं है। जिस प्रकार केलका स्तंभ निःसार है, जलको मथने से कुछ भी नहीं निकलता, उसी प्रकार संसार असार है। जो भव्य जीव सुखके अभिलाषी है वे इसे त्यागकर धर्मका सेवन करता है। धर्म दो प्रकारका है–सागार

(गृहस्थों)का जिसे अणुव्रत या देशव्रत कहते हैं। दूसरा अनागार (साधुवों)का जिसे महाव्रत या सकल व्रत भी कहते हैं। पहिला परम्परा सच्चे सुख (मोक्ष)का साधन है। दूसरा साक्षात (तद्भव) मोक्षका साधन है।"

इस प्रकार स्वामीने संक्षिप्तसे संसार दशाका स्वरूप वर्णन करके दो प्रकार धर्मका स्वरूप वर्णन किया, इतनेमें एक देव वहां आया और नमस्कार कर अपनी सभामें जाकर बैठा। उसकी अपूर्व कांति देखकर राजा श्रेणिक बड़े आश्चर्यमें होकर स्वामीसे पूछने लगे—'हे स्वामीन्! यह देव कौन है?' तब स्वामीने कहा—"यह विद्युन्माली नाम देव है और अब इसकी आयु तीन दिन शेष रह गई है"। तब पुनः राजाने पूछा—"हे प्रभो! पूर्वे आपने कहा था कि देवोंकी आयुके छः महिना बाकी रह जाते हैं, तब माला मुरझा जाती है और जब इस देवकी आयु केवल तीन ही दिनकी रह गई है तब भी इसकी कांति कहनेमें नहीं आती है। इस प्रकार अनुपम है, सो हे प्रभो! इसका सम्पूर्ण वृत्तांत कृपा कर कहो।"

तब गौतमस्वामीजीने इस प्रकार कहना प्रारंभ किया—"ऐ राजा, सुनो! इस ही देशमें वर्धमानपुर नामका एक सुन्दर नगर है, जहांका राजा महीपाल अत्यन्त धर्मधुरंधर और न्यायनीतिनिपुण था और जहां अनेक श्रीमान श्रेष्टि (सेठ) वास करते थे। ऐसे उत्तम नगरमें एक ब्राह्मण रहता था, जो

कि महा मिथ्यात्वी था और लोगोंको निरंतर मिथ्या उपदेश देकर व्याह, श्राद्धादि नाना कर्मोंद्वारा अपनी आजीवका करता था। उसके भवदेव और भावदेव नामके दो पुत्र हुवे, जो कि विद्यामें बहुत ही निपुण हुवे। परंतु पिताके अनुसार वे भी मिथ्यात्वसे खाली न रह सके। कुछ समय पीछे वह ब्राह्मण कालवश होकर अपने किये हुवे मिथ्यात्व कर्मोंका प्रेरा हुवा दुर्गतिको चला गया और ये दोनों द्विजपुत्र उसी प्रकार अपना कालक्षेप करने लगे।

भाग्योदयसे एक दिन महा तपस्वी दिगंबर मुनि नगरके उद्यान (बन)में विहार करते हुवे आये। तब सब नगर लोक मुनिकी बंदनाको गये और वह द्वीजपुत्र भी गये। बंदना कर समीप बैठ कर श्री गुरुके मुखसे धर्मोपदेश सुना। सब लोगोंने यथाशक्ति व्रतादिक लिये और वह द्वीज पुत्र भावदेव जो बड़ा था, संसारका स्वरूप देखकर विषय भोगोंसे अत्यन्त विरक्त हो कर और यह समय फिर नहीं हाथ आवेगा, काल अचानक आकर ग्रस लेवेगा और फिर सब विचार यहां के यहां ही पड़े रह जावेंगे, संसारमें सब स्वार्थके सगे हैं, यदि हित् कोई संसारमें है तो यही श्री गुरु हैं। जो निष्प्रयोजन हम लोगोंको भव सागरमें डूबते हुवे हस्तावलंबन देकर पार लगाते है। सब वस्तुएं क्षणभंगुर है। जब हमारा शरीर ही नाशवान है तो इसके सम्बन्धी पदार्थ अवश्य ही नाशवान है। इस लिये अवसर पाकर हाथसे जाने नहीं देना चाहिये—

ऐसा विचार श्री गुरुके निकट जिन दिक्षा धारण की। सो ठीक है–'शठ सुधरहिं सत्संगति पाई, लोह कनक है पारस पाई'॥ जैसे लोहा पारसके प्रसंगसे सोना हो जाता है, त्योंही शठ जो महा मूढ़ मिथ्यात्वी भी सत्संगके प्रभावसे चतुर विद्वान हो जाता है। देखो! वह भावदेव ब्राह्मणका पुत्र जो परम्परा से तीव्र मिथ्यात्वी था, सो भी श्री गुरु के मुखसे सच्चा कल्याणकारी उपदेश सुनकर वैराग्य प्राप्त कर जिन दिक्षा लेता हुवा। सो वह भावदेव मुनि अपने गुरु तथा संघके लार अनेक देशोंमें विहार करते करते बारह वर्ष पश्चात् पुनः इसी वर्धमानपुरके उद्यानमें आये।

तब भावदेव मुनि मनमें विचारने लगे कि मेरा सहोदर (छोटा भाई) भवदेव तीव्र मिथ्यात्वमें फंस रहा है। उसको किसी प्रकार समझाना चाहिये। ऐसा विचार कर श्री गुरुकी आज्ञा लेकर नगरकी ओर प्रयान किया, और अपने भाईके मकानमें जाकर प्रवेश किया। तब इनका छोटा भाई अपने बड़े भाईका आगमन देख अपना धन्य जन्म मान कर प्रफुल्लित चित्त हो स्तुति करने लगे सो ठीक है–"छोटोंको बड़ोंकी विनय करना ही उचित है"। फिर उच्चासन देकर कुशल समाचार पूछने लगा।

तब मुनि धर्मलाभ देकर कहने लगे, कि जो पुरुष निशदिन जिन भगवानके चरणोंमें आशक्त रहता है, उसके सदैव कुशल रहती है। फिर मुनिवरने सभा मंडफ कंकण

वगैरः सामग्री, केशरिया, वागो और स्त्रियोंको मंगल करते देख कर भवदेवसे पूछा–"यह सब क्या है ?" तब भवदेवने कहा आज रात्रिको मेरा ब्याह (लग्न) हुवा है। इसीका यह सब उत्सव है। तब मुनिराजने कहा कि यह तो सब कर्म-जंजाल है, परंतु तुम्हें कुछ धर्मका ख्याल है ? तब भवदेवने धर्म श्रवण कर श्री मुनिवरसे अणुव्रत लिये और नवधा भक्तिसे पड़गाह कर आहार दान दिया। मुनिने तो आहार लेकर संघकी ओर विहार किया, और भवदेव भक्तिका प्रेरा पहूंचाने को पीछे पीछे चला। सो मुनिवर तो नीची दृष्टिकर ईर्यापथ सोधते हुवे, धर्मध्यान चिंतवन करते हुवे जा रहे हैं और भवदेव केवल लोकरीति अनुसार पीछे पीछे यह विचारता हुवा जा रहा है कि बड़े भाई मुझे कब पीछे फिरनेकी आज्ञा दे तो मैं शीघ्र घर जाकर नव विवाहित स्त्रीसे मिलूं।

इस प्रकार वे दोनों अपने २ ध्यानमग्न नगरसे लगभग १ कोस आ गये, परंतु मुनिराज तो सीधे चले ही जा रहे है। भवदेव मनमें विचारने लगा–एक कोस तो आ गये, अब ना मालूम भाई कितनी दूर जावेंगे, जो मुझे आज्ञा दे देते तो मैं घर जाता, आगे जाकर भी क्या जाने ये मुझे पीछे आने देंगे कि नहीं। इत्यादि संकल्प विकल्प करते हुवे, चला जा रहा था। मुनिराज न तो इसे कहते थे के साथमें आवो और न पीछेही जानेको आज्ञा देते थे। वे तो मौनालंबन किये जा रहे थे। मनमें विचारते थे कि यदि भवदेव गूरुके पास पहूंचकर

इस असार संसारका परित्याग कर दे तो अच्छा हो, क्योंकी इसकी आत्माने जो मिथ्यात्व वश अशूभ कर्मबंध किया है सो जिनेश्वरी तपश्चरणसे छूट, उत्तम सुखोंको प्राप्त हो।

अहा! भ्रातृस्नेह इसीका नाम है कि भव समुद्रमें गोते खाते हुवे भाईको निकाल कर सच्चे मार्गमें लगाना। ऐसे भाई संसारमें विरले ही हैं, जो विषय कषायोंसे छूड़ाव। किन्तु फसानेवाले अनेक हैं। भावदेवने भवदेवके साथ जो सच्चा प्रेम प्रगट किया वह अनुकरणीय है।

इसी प्रकार अपने अपने विचारोंमें मग्न वे दोनों (भावदेव मुनि और भवदेव विप्र) नगरसे तीन कोसके अनुमान बनमें पहूंचे, जहां पर श्री गुरु संघ सहित तिष्ठे थे। दोनोंने यथायोग्य गुरुको विनय संयुक्त नमस्कार किया और निज निज योग्य स्थानमें बैठ गये, तब दूसरे संघके मुनियोंने पूछा-' यह दूसरा आपके साथ कौन है?' भावदेव मुनिने उत्तर दिया," यह हमारा छोटा भाई है। श्री गुरुके दर्शन को आया है, सो गुरुके प्रभावसे यह सच्चे मार्ग लग जावेगा'। तब सब मुनि सराहना कर कहने लगे-'हे मुने! यह तुमने बहुत ही अच्छा किया जो वहते हुवेको पार लगाया। बहुत ही अच्छा हुवा। अब इसे जिनेश्वरी दिक्षा देना चाहिये, ताकि कर्मोंको काटकर अचल सुख प्राप्त करे।"

यह बात सुनकर भवदेव विप्र विचारने लगा-'हे विधाता! यह क्या हूवा? अब मैं क्या करूं? जो दिक्षा ले लूं तो आजकी

ब्याही स्त्री क्या करेगी ? कैसे जीवन व्यतित करेगी ! लोग मुझे क्या कहेंगे और जो घर जाऊं, तो भाईकी बात जाती है। ये साथके मुनि उनकी हास्य करेंगे कि इनका भाई इतना कायर है। ऐसे पुरुषको क्यों लाये, इत्यादि। "

ऐसा विकल्प करते करते यह निश्चय किया कि इस वक्त तो जैसा ये लोग कहें वैसा ही कर लूं और कुछेक दिन मुनि ही बन कर रहूं, फिर जब कोई मौका हाथ लगा कि तुरंत भागकर घर चला जाउंगा। यह सोच जिन दिक्षा ली। श्री गुरुने उसे भव्य जानकर कि चाहे अभी इसके मनमें दुर्ध्यान है परंतु पीछे यह मुनिनायक होवेगा दिक्षा दी, पश्चात् वह मुनिसंघ कई देशोंमे विहार करता अनन्त भव्य जीवोंको संबोधन करता हुवा, बारह वर्ष पीछे फिर उसी बनमें आया। तब भवदेव मनमें बिचार करके कि अब जाकर अपनी स्त्रीको देखना चाहिये, गुरुको नमस्कार कर नगरकी ओर चले। सो मुनि परम दयालु ईर्यापंथ सोधते हूवे जिनालयमें पहुंचे और प्रभुकी बंदना कर बैठे।

इतनेमें वहां एक आर्जिकाको देखा। परस्पर रत्नत्रयकी कुशल पूछकर श्री मुनि उस आर्जिकासे पूछने लगे, कि इस नग्रमें दो ब्राह्मणपुत्र रहते थे, सो वे दोनों तो जिन दिक्षा लेकर विहार कर गये। परंतु छोटा लड़का जो तुरंत ब्याहकर लाई हुई नववधूको छोड़ गया, सो उसका क्या हुवा ?

तब अर्जिका, मुनिका चंचल चित्त देख बोली–'हे स्वामी! हे धीरवीर! आप अपने चित्तको शांत कीजिये। धन्य है आपने ऐसा उत्तम व्रत लिया जो कायर संसारी पुरुषोंसे न बन सके। इस लायक आप ही हो, इत्यादि स्तुतिकर कहने लगी।

'हे नाथ! वह स्त्री मैं ही हूं। आपके चले जाने पीछे मैंने इस स्त्री पर्यायको पराधीन जानकर इससे छूटनेके लिये यहां आर्जिकाके व्रत लिये और घरको तुड़वाकर उसका चैत्यालय करवाया। जो कुछ द्रव्य थी इसी चैत्यालयमें लगा दी गई है। अब हे मुनिनाथ! आप निशंक होकर तपश्चरण करें.।'

यह सुनकर मुनि निसल्य हो बनमें गये और श्री गुरुको नमस्कार कर सब वृत्तांत कहा। तब श्री गुरुने भवदेव मुनिकी दिक्षा छेद फिरसे व्रत दिये। इस प्रकार वे दोई भाई मुनि उग्र तप करते हूवे विपुलाचल पर्वतपर आये और अंत समाधिमरण कर तीजे स्वर्ग सनत्कुमार नामके देव हूवे। वहांपर अतुल संपदा देख अवधिज्ञानसे अपना पूर्व भवका वृतांत चिंतवन करके और यह संपति जिन धर्मके प्रभावसे मिली है, ऐसा जानकर धर्ममें तत्पर हूवे। अनेक सेवकों सहित अढ़ाई द्वीप संबंधी तथा अशेष सर्व अकृत्रिम, कृत्रिम चैत्यालयोंकी वंदना की।

इस प्रकार वे देव वहांपर (स्वर्गमें) सागरों पर्यन्त सुख भोगकर तहांसे चय भावदेवका जीव अपर विदेह पुंडरीकनी नगरीमें वज्रदंत राजाकी पट्टरानीसे सागरचन्द्र नामका पुत्र हुवा, और

करूंगा। तब शिवकुमारने मात तात बचनानुसारही क्षुल्लकके व्रत लिये। घरमेंहीं रहकर चौसठ ६४ हजार वर्ष तक केवल भात और पानीका आहार कर निरंतर धर्म ध्यानमें काल व्यतीत किया, और सागरचन्द्र मुनि यहांसे बिहार करके उग्र उग्र तप करते हूवे समाधिमरणकर ब्रह्मोत्तर छठवें स्वर्गमें देव हूवे, और शिवकुमार क्षुल्लक भी अवसर पाय समाधिमरणकर उसी ब्रह्मोत्तर स्वर्गमें देव हुवे। सो पूर्वतपके प्रभावसे नाना प्रकार सुख भोगने लगे। सो हे राजन्! यह विद्युन्माली देव पूर्व तपस्याके प्रभावसे ऐसा अद्भुत क्रांतिवान हुवा है।'

तब राजा श्रेणिकने विनययुक्त पूछा-' हे प्रभो। इनका विशेष हाल सुना चाहता हूं, सो कृपा कर कहो। तब स्वामी इस प्रकार कहने लगे।

" इसही मगध देशमें चंपापुरी नामकी नगरी है, वहां सूरसेन नामका सेठ रहता था। उसके अति रूपवान चार स्त्रीयों थीं। सो कोइ पूर्व पापके उदयसे सेठको वायुरोग हो गया जिस कारणसे वह बावलेकी तरह बकने और स्त्रियोंको नाना प्रकार कष्ट देने लगा। यहां तक कि चारोंके नाक, कान भी काट डाले। इससे वे स्त्रियां अति दुःखित हो कर वासुपूज्य स्वामीके चैत्यालयमें जाकर अर्जिका हो गई और समाधिमरण करके इसही छठवे स्वर्गमें चारों देवी हूई हैं। सो राजन्! जंबूस्वामी, बिद्युतचर और ये देवियां यहांसे चय साथ ही दिक्षा लेवेंगी।"

अब इसका विशेष बर्णन है सो सुनो—" हस्थिनापुरका राजा दुरदन्द ताके शिवकुमारका जीव जो छठवे स्वर्ग देव हुवा था, तहांसे चयकर विद्युतचर नामका पुत्र हुवा, सो महाबलवान्, प्रतापी और सर्व विद्यावोंमें निपुण, नाना कला सीखा। परंतु अंतमें उसने चोरी भी सीख ली और प्रथम ही अपना राजभंडार चुरानेको प्रवेश किया कि उसे कोटवालने पकड़ लिया और राजाके सन्मुख उपस्थित किया। राजा पुत्रकी यह दशा देख बहुत दुःखी हुवे और कहने लगे—" हो बाल ! तू यह सब राजभंडार ले, परंतु चोरी करना छोड़ दे, क्यों कि ईच्छित वस्तु प्राप्त होने पर कोई चोरी नहीं करता। परंतु विद्युतचरने एक न मानी। सो ठीक है—"मतवाले को हित की बात अच्छी नहीं मालूम होती"।

तब राजा अत्यन्त खेदित होकर कहने लगे—" जो तुम यह दुष्ट कृत्य—चोरी नहीं छोड़ोगे तो किसी न किसी दिन अवश्य ही तुम्हारे प्राण जांयगे और बहुत दुःख उठावोगे।" तब विद्युतचर बोला—"हे पिताजी ! मुझसे यह कृत्य न छूटेगा। मैं तो चोरी करके सब राजको लूट लूट कर खाऊंगा अथवा आपका राज्य छोड़ विदेशमें चला जाऊंगा। तब राजाने लाचार होकर देशसे निकल जानेकी आज्ञा दे दी। सत्य है—" न्यायी पुरुषों का यही धर्म है कि चाहे अपना पुत्र हो व पिता तथा कैसा ही स्नेही क्यों न हो," उसको अपराध करने

पर अवश्य ही योग्य शिक्षा करते हैं (दण्ड देते हैं), पक्षपात कदापि नहीं करते।"

सो विद्युतचर राजपुत्र वहांसे निकलकर कई रोजमें राजगृही नगरीमें आया और कमला वेश्या के यहां रहने लगा। सो वहांपर सब नगरसे चोरी कर२ वेश्याका घर भरने लगा और इस तरह कालक्षेप करने लगा।"

इस कथनको यहीं छोड़कर अब उन चारों देवियोंका कथन सुनिये-" राजगृही नगरीमें अर्हद्दास नामका सेठ था, उसके जिनमती नामकी स्त्री महा शीलवान थी। सो यह विद्युतवेगदेव (जिसकी तीन दिनकी आयु शेष रह गईथी) स्वर्गसे चयकर पुत्र हो तपकरके भवजाल तोड़कर स्वात्मानुभूतिरूप सच्चा सुख जो निर्वाण उसे प्राप्त करेगा।"

गौतम स्वामीके मुखसे यह कथन हो ही रहा था कि एक यक्ष वहां गदगद होय नाचने लगा। तब राजा श्रेणिकने विस्मित होकर पूछा-" हे स्वामी! यह यक्ष क्यों नाचा "? स्वामीने उत्तर दिया कि-"अर्हदासका सहोदर भाई एक रुद्रदास था सो महाकुरूप सप्तव्यसनासक्त था। एक दिन वह (रुद्रदास) सब धन जुवा (द्यूत) में हार गया तब उधार (ऋण लेकर) खेला, परंतु वह भी हार गया, और घरमें भी कुच्छ रहा न था, सो देवे कहांसे? जब जुवाड़ियोंने अपना द्रव्य मांगा और

इसने नहीं दिया तब साथके खिलाड़ी दूसरे जुवाड़ियोंने उसे बांधकर बहुतही मार मारी, यहां तक कि बेसुध कर दिया।

जब यह खबर अर्हदास, उसके भाईको मिली तो तुरंत--ही वहांसे उसने रुद्रदासको खाट (चारपाइ) में रखाकर घर मंगाया और अंतिम वेदना जानकर सन्यास मरण कराया। सो उस रुद्रदासका जीव सन्यासके योगसे यह यक्ष हुवा है और अब अपने वंश मोक्षगामी पुरुषकी उत्पत्ति सुनकर हर्षित होय नाच रहा है।"

यह वृत्तांत गौतमस्वामीके मुखसे सुनकर सभासजोंको अत्यानन्द हुवा और अर्हदास तथा उनकी सेठानीके आनन्दका तो पार ही नहीं रहा, जैसे भिक्षुकको धनपति (कुबेर) की संपत्ति पानेसे होता है, उसी प्रकार सर्व नगरमें आनन्दही आनन्द भर गया। घरोंघर मंगल गान होने लगा। एक दिन सेठानी जिनमती चित्रसारी (शयनगृह) में सुखनींद ले रहींथी कि उसी समय वह विद्युतवेगदेव ब्रह्मोत्तर स्वर्ग से चय-कर सेठानीके गर्भमें आया और सेठानीने शुभ स्वप्न पिछली रात्रिमें देखा और अपने पतिसे उस स्वप्नका फल पूछा। सो ठीक है--" सती स्त्रियां लाभ अलाभ जो कुछ भी हो सच्चा हाल अपने पतिसे ही कहती है।" तब सेठने स्वामीके मुखसे सुने हुवे वृतांतको स्मरणकर तथा निमित्त शास्त्रद्वारा स्वप्नका फल विचारकर कहा--

"हो प्रिये! तुम्हारे गर्भसे त्रैलोक्यतिलक मोक्षगामी पुत्र होवेगा।" यह सुनकर सबको अति हर्ष हुवा, कि समय आते हुवे भी कुछ मालूम न हुवा। पूर्ण दस माह होनेपर अर्हद्दास सेठके घर पुत्ररत्नकी प्राप्ति हुई। घरोंघर मंगल गान होने लगे। याचकों को दान दिया गया और सजन सुहृद इत्यादि पुरुषोंका भी यथायोग्य सन्मान किया गया। अब तो बालक दिन प्रतिदिन बढ़ने लगा, मानो चन्द्रमा अपनी सम्पूर्ण कलावों सहित विस्तारको प्राप्त हो रहा हो। ज्योतिषीयोंने लग्न विचारकर शुभ नाम जंबूस्वामी रखा। सो स्वामीका ऐसा अनुपमरूप हुवा कि जिसे देखकर संपूर्ण नग्रवासी राजा प्रजा सबके चित्त विनोदी हो गये।

जब स्वामी दस वर्षके हुवे, तब वस्त्राभूषण धारणकर अपने संगके बालकोंमें खेलते हुवे ऐसे मालूम होते थे मानो तारागणोंमें चन्द्र ही है। नग्रके लोग धन्य धन्य कर आर्शीवाद देते थे। जहां जिस रास्तासे स्वामी निकल जाते वहींपर लाखों आदमी की भीड़ हो जाती थी, यहां तक कि नरनारी अपने आवश्यक कामोंको भी विस्मरण कर जाती थी।

एक दिन राजा क्रीडा निमित्त वनमें गये थे, और सब पुरजन आनंदमें मग्न थे कि अचानक राजाका पट्टबंध हाथी महावतको गिराकर छूट गया और नग्रमें जहां तहां घोर उपद्रव करने लगा। मानो प्रलय ही आ गया।

नरनारी अत्यंत भयभीत हो पुकारने लगे। रास्ते और बाजार सब बंद हो गये। कोई निकल नहीं सक्ताथा। यह खबर राजा तक पहुंची और वहांसे बड़े२ योद्धा भेजे गये, परंतु कुछ फल न हुवा। इतनेमें स्वामी (जंबूकुमार) अपने मित्रों सहित जा रहे थे, कि हाथी सूंड़ उठाकर इनकी तरफ आया, मानो वह सूंड़ उठाकर स्वामीको नमस्कार ही करता है और साथी तो सब डर कर दूर हट गये, परंतु स्वामी उस हाथीकी चेष्टा देखकर हंसे। नग्र के लोग तो हाय हाय करके पुकारने लगे कि अब क्या जाने यह हाथी इस बालक (जम्बूकुमार) को छोड़ेगा कि नहीं ? दोडियो २ बचाइयो इत्यादि। परंतु स्वामीने किंचित भी भय नहीं किया और हाथीके सन्मुख जाकर कपड़ेको उमेठ कर जोरसे हाथीको मारा कि हाथी चीस मार भागने लगा, तब स्वामीने उसे पूंछ पकड़के रोक लिया और मस्तकपर जा बैठे, और सात बार यहां वहां खूब दौड़ाया। नग्रलोग व राजा यह कौतुक देख हर्ष और आश्चर्य युक्त हो गये। स्वामी हाथीपर बैठे हुवे घर आये, देखकर मातापिता झटसे गोदमें ले मुख चूमने और बलैयां लेने लगे। तथा निछरावल करने लगे और पूछा—"हो पुत्र! ऐसे कोमल पलवसमान हाथोंसे तुमने किस तरह ऐसे मदोन्मत्त हाथीको पकड़ लिया"।

तब स्वामीने विनयपूर्वक उत्तर दिया—"हे पिता! माताजी! आपके प्रभावसे मैंने इसे पकड़ा है। सो ठीक है—

बड़े बड़ाई ना करें, करें अनूठे काम ।
हीरा मुखसे ना कहे, लाख हमारो दाम " ॥

इतनेमें स्वामीको बुलानेके लिये एक राजदूत आया और बड़े मानसहित स्वामीको राज्य दरबारमें ले गया । स्वामीको दर्बारमें आते देख सभाजन उठकर नमस्कार करने लगे और राजाने उठकर अगवानी की तथा अर्ध सिंहासनपर बैठाया, और बहुत प्रीतिसहित बातचीत होने बाद राजाने कहा—

" हे कुमार ! आप नित्यप्रति दरबारमें आया करें । यह बचन मांगता हूं । तब स्वामीने वह स्वीकार किया । पश्चात् राजाने छत्र, चमर, रथ, पालकी आदि देकर विदा किया । एक दिन अर्हदास सेठ अपने घरमें सुखासन बैठे थे, कि चार सेठ बहुत ऋद्धि (द्रव्य) वान आकर विन्ती कर कहने लगे—" हे साहु! हमारे घर चार अतिही रूपवान और गुणवान कन्याएं हैं, सो हम आपके चिरंजीव जंबूकुमारको देते हैं । आशा है कि आप यह तुच्छ भेट स्वीकार कीजियेगा । "

तब अर्हदास सेठ आगन्तुक सेठोंको आदर सहित बैठालकर, अपनी प्रिया जिनमतीके पास जाकर सब वृतांत कहने लगे । सो सुनकर सेठानी अति हर्षित होय कहने लगी—" हे स्वामी ! यह तो व्यवहार उचित ही है, अवश्यही करना चाहिए " । बस, शुभ महूर्तमें सगाई (वाक्दान) हुई और नग्रमेंभी उत्साह मनाया गया । स्वामीभी नियमानुसार नित्य

राजदरबारमें जाया करने लगे। एक दिन अंगकीट नाम पर्वतका रहनेवाला गमनगति नाम विद्याधर सभामें आकर कहने लगा—“हे राजन्! इसी अंगकीट पर्वतपर केरलपुर नाम नगर है, तहां राजा मृगांक (मेरा बहनोइ) सुखसे राज्य करता है। उसके मंजु नामकी एक कन्या है, सो एक दि राजाने मुनिसे पूछा—पुत्री का वर कौन होगा? तब मुनिवरने कहा, कि राजगृहीका राजा श्रेणिक इसे व्याहेगा। यह सुनकर राजाने वह कन्या आपको देनी करी। यह खबर राजा रत्नचूलको पहूंची, तब उनने राजा मृगांकके पास दूत भेजा, कि तुम्हारी कन्या मंजु, जो अपनी कुशल चाहते हो तो मुझे देवो। तब राजा दूतके बचन सुन चिंतातुर हुवा और क्रोध कर दूतसे कहा, कि जाकर अपने स्वामीसे कह दे—कन्या तो राजा श्रेणिकको दे चुका हूं। सो दूसरे को नहीं दी जा सक्ती है। तब दूतने पीछे आकर सब हाल राजा रत्नचूलसे कहा, तब रत्नचूलने आकर केरलपुर घेर लिया है, और आपकी मांग लेनेको दबाब डाल रहा है। नगरमें बहुत ही विघ्न कर रहा है, इसलिये हे राजन्! अपने श्वसुरकी सहायताको चलो।

यह बात सुनकर राजा श्रेणिक विचारने लगे, क्या करना चाहिये? जो जाता हूं तो वह विद्याधर और मैं भूमिगोचरी हूं। मार्ग भी विषम है। किस प्रकार पार पड़ेगा? और नहीं जाता तो मांग, जो कि एक गरीबकी भी कोई नहीं

ले सक्ता है तो मैं मंडलीक राजा हूं, जाती है यह बड़े लज्जा तथा कायरपन की बात हैं। इस प्रकार दुचित्ते हो राजा चिंतातुर थे कि वह विद्याधर फिर कहने लगा-" हे राजन्! वह रत्नचूल बहुत ही पराक्रमी है, बलवान है, सैन्या भी बहुत हैं सिवाय इसके विद्याधर है। रास्ता अति ही विषम है। भूमिगोचरी वहांपर जा नहीं सक्ता है।

यह वचन सुनकर स्वामी (जंबू कुमार) बोले—

"अरे मूर्ख! तू ये क्या वचन बोल रहा है? सभाके मध्य रत्नचूलकी प्रशंसा करके राजा श्रेणिकको छोटा बता रहा है। काम पड़े विना हे अजान! तूने कैसे जान लिया कि राजा श्रेणिककी गम्य नहीं है। चुप रहो। ऐसे वचन फिर सभामें न कहना।"

तब विद्याधर कहने लगा-" हे कुमार! तुम अभी बालक हो। युद्धके विषयमें नहीं समझते,। इस लिये शीघ्रता करना उचित नहीं है। व्यर्थ खेद मत करो।"

यह सुनकर स्वामीने कहा-"बालक (कण) अग्नि, एक क्षणमें काष्ठका समूह भस्म कर देता है। सिंहका बालक क्षणमात्रमें मदोन्मत्त हाथीका कुंभस्थल विदार कर डालता है। देखो, लगाम (बाग) और अंकुश तो छोटे२ ही होते हैं, परंतु घोड़े और हाथीको वश करलेते हैं। रामचंद्र, लक्ष्मण भूमिगो-

चरी ही थे, सो रावण प्रतिहरिको जीतकर सीताको ले आये और लंका वश की । तासे रे विद्याधरं ! छोटी वस्तुको हीन न समझना "। ऐसा विद्याधरसे कह राजा प्रति प्रार्थना की—' हे नाथ ! यह कोई कठिन कार्य नहीं हैं। आज्ञा हो तो कर आऊं।'

राजाने स्वामीकी बात सुन कर प्रसन्न हो कुंवरको बीड़ा (कार्य सुफल करनेका भार) देकर विद्याधरसे कहा-- "कुंवरको कुशलपूर्वक ले जाव"। विद्याधरने सहर्ष स्वीकार किया। स्वामीने वहांसे घर आकर अपने मातापिता की आज्ञा ले कर प्रयान किया। सो थोड़ी देरमें विद्याधरके साथ विमान-द्वारा केरलपुरमें पहूंचे, और वहांका सब वृतांत पूछा तो मालूम हुवा कि मृगांक तो गढ़ (किला) में डरके मारे बैठ रहे हैं और चहूं ओर रत्नचूलका दल फैल रहा है।

यह हाल सुन स्वामी दूतका भेष धर रत्नचूलकी सेन्यामें गये और भली भांति देखकर ड्योढ़ीपर पहूंचे और द्वारपालसे कहा—राजासे खबर करो कि राजा मृगांकका दूत आया है। और आपसे ब्याहके सम्बन्धमें कुछ कहना चाहता है। द्वारपालने राजासे जाकर विनय की और शीघ्र ही स्वामीको अन्दर ले गया। स्वामीने अन्दर जाकर राजाको नमस्कार (जुहारु) नहीं किया और यों ही खड़े हो गये। तब राजाने कहा--" अरे अजान ! तुझे दूत किसने बनाया

है ? तुझे दूतका व्यवहार तो कुछभी मालूम नहीं है। तूने आकर नियमानुसार जुहारु क्यों नहिं किया ? "

तब यह बचन सुनकर स्वामीने रिस (थोड़ा क्रोध) हो कर कहा, कि जो राजा अनीति करता है उसे कोई नमस्कार नहीं करता।

तब राजा बोले—"अरे बालक ! तुझे क्या वाय (रोग जिसमें वावले की तरह बकते हैं) हो गई हैं। भला, कह तो सही मैंने क्या अनीति की है ? बालक जानकर मैंतो तुझे कुछ नहीं कहता हूं, परंतु तू उल्टा हमही को दोष देता है। तब कुमार (स्वामी) ने हंसकर कहा कि आपको अपनी अनीति नहीं दीखती है सो ठीक है—" अपने माथेका तिलक सीधा ढेड़ा विना दर्पण आपहीको दृष्टि नहीं पड़ता।"

लीजिये सुनिये, आपकी यह अनीति है कि—

" जासु मांग सो ही वरै, देश देश यह रीति।
श्रेणिक मांगसु तू चहै, यही सु महा अनीति "॥

इस लिये हो विद्याधर राजन् ! आप इस खोटी हठको छोड़ निज देशमें जावो और सुखसे राज करो। देखो, पहिले रावण, कीचक वगैरः जो अनीतिवान परत्रिय लंपटी राजा हुवे, वे इस भव दुःख और अपकीर्ति सह कर परभव नर्कादि कुगति को प्राप्त हुवे हैं। इस लिये यह हठ अच्छा नहीं है।

तब राजा क्रोध कर बोला-" लड़कपन मत कर। अभी तुझे मेरे पराक्रम की खबर नहीं है। विना विचारे ढीठ हो बातें करता है। आजही मैं मृगांकको बांध कर उसकी पुत्रीसे पाणिग्रहण करूंगा"। तब स्वामीने उत्तर दिया—

"अरे राजा! अबभी तुम चेत जावो। जान कर विष खाना अच्छा नहीं है। देखो! काग भी आकाशमें तेरे समान उड़ता है, परंतु बाणके लगते ही प्राण खो बैठता है। तासे जो तू अपनी कुशल चाहता है, तो इस दुराशाको छोड़कर श्रेणिक राजाके पास जाकर अपनी क्षमा मांग। और प्रकार तेरी भलाई नहीं है।"

ऐसी ढीठपनेकी बातोंसे रत्नचूलसे रहा नहीं गया और क्रोध कर बोले--" इसने मेरी कुछभी विनय नहीं की और सामने निंदा करता है। बांहर ले जाकर इसे मार डालो।"

यह आज्ञा होते ही सुभट लोग कुमार (स्वामी) को लेकर बाहर आये, तो दर्शकगण हाय हाय करने लगे कि क्या आज यह सुंदर बालक मारा जायगा? परंतु क्या करें? राज आज्ञा शिरोधार्य है। करना ही पड़ेगी।" सो ठीक ही है—

" पलित जानवर भार्या, नौकर बंधुवा सोई।
पराधीन इतने रहें, रंच न सुख इन होई॥"

नौकरको मालिक ही की हां में हां करना पड़ती है। चाहे तो स्वामी अन्याय करे, परंतु नौकरको तो उसे न्याय ही

समझना पड़ता। नौकरी और नकारसे तो बैर ही रहता है। यथार्थ है—कोई पूर्व पापके उदयसे ही यह करनी पड़ती है। संसारमें जो कुछ सुख है सो स्वाधीनताका और वह स्वाधीनता संसारियोंको कहां है ? वह तो उन निष्पृही परम पुरुषोंको अवस्सर है कि जो तृणवत् संसार त्यागकर सच्चे स्वाधीन अतेंद्री सुखोंका अनुभव कर रहे हैं। धन्य हैं वे! इस प्रकार पराधीनताकी निंदा करते हुवे ले चले।

जब युद्ध क्षेत्रमें लेजाकर स्वामी के ऊपर उन्होंने शस्त्र प्रहार किया, कि स्वामीने वज्र दण्ड जो इनके करमें था उससे अपना बचाव कर, उसी फिर उन्हें लोटाकर मारा, तो दश वीस सुभट यहां वहां गेंद की तरह लुड़कने लगे। फिर तो क्या ? स्वामीने मानो सिंह रूप धारण कर लिया हो, इस प्रकार लड़ने लगे। और संपूर्ण सेना स्वामी के ऊपर टूट पड़ी, सो कितने ही तो मुष्टी प्रहारसे प्रयाण कर गये, कितने घायल हुवे, कितने ही भागकर पीछे रत्नचूल के पास गये और कहने लगे कि यह रही आपकी नौकरी। जीवते बचेंगे तो बहुत कमा खांयगे। कोई कुछ कहे, कोई कुछ कहे। तात्पर्य कि बात-की बातमें स्वामीने आठ हजार सेना थितर बिथर कर दिया।

तब राजा रत्नचूल, स्वामीका अतुल पराक्रम और अपनी सेन्य की दुर्दशा देखकर स्वयं स्वामीके सन्मुख आया। उधरसे गगनगति विद्याधर जो स्वामीको ले आया था, आ गया और

अपना विमान स्वामीको दे दिया तथा और कितने ही दिव्य शस्त्र लाकर दिये। दोनोंमें घमसान युद्ध होने लगा। एक तरफ तो स्वामी अकेले और दूसरी तरफ सब सेन्या सहित राजा रत्नचूल।

यह कौतुक राजा मृगांकके दूत जो गढ़के ऊपर देख रहे थे, जाकर सब हाल राजा मृगांकसे कहा —

"हे राजन! नहिं मालूम एक कौन अतीव बलधारी पुरुष, जो देवोंसे भी न जीता जाय, महारूपवान तेजश्वी अल्प वयस्क सुभट कहांसे आया है, जो राजा रत्नचूलकी आठ हजार सेना विध्वंस कर साम्हने लड़ रहा है। एक तर्फ तो वह वीर अकेला है। दूसरी तर्फ रत्नचूल सेन्या सहित है। क्या जाने अनीति देख कोई देव ही आ गया है या राजा श्रेणिकने सहायतार्थ भेजा है" इत्यादि।

यह समाचार राजा मृगांकने सुनकर शीघ्र ही अपनी सेन्या सहित युद्ध क्षेत्रको प्रयाण किया देखते ही आश्चर्यवंत होकर स्वामीसे प्रार्थना की–"हे नाथ! आपतो रत्नचूलका साम्हना करें और सेन्याको मैं देखता हूं"–यहां रत्नचूलने मृगांक की सेन्या आते देखी, सो विस्मयवान हो पूछा--"अरे मंत्री! यह किसकी सेन्य आरही है?" मंत्रीने उत्तर दिया-- "महाराज! यह राजा मृगांक सहाय पाकर सेन्या सहित आ रहा है"।

बस, देखते ही देखते दोनों सैन्य परस्पर भिड़ गई और घमसान युद्ध होने लगा। हाथीसे हाथी, घोड़ेसे घोड़े, प्यादेसे प्यादे लड़ने लगे, रथोंसे रथ जुटने लगे, वीरोंको ज़ोश़ (तेज़) बढ़ने लगा और कायरोंके हृदय फाटने लगे। इस प्रकार नीति-पूर्वक युद्ध होने लगा। स्वामी रत्नचूलके सन्मुख युद्ध करने लगे। सो थोड़ी सी वार (समय) में रत्नचूल का रथ तोड़ भूमि पर गिरा दिया। ज्यों ही रत्नचूल उठ कर दूसरे रथपर चढ़ने वाले थे कि स्वामीने आकर जोरसे मुष्टप्रहार किया! जिससे वह अररर कर भूमिपर लौटने लगा। तब कुमार (स्वामी) ने उसकी छातीपर लात दे कर दोनों हाथ बांधकर रत्नचूलको खड़ा किया। बस, फिर क्या था। रत्नचूलको बंधा देख उसकी सब सैन्या इधर उधर भागने लगी। स्वामीने सबको दिलाशा दे कर शांत किया।

वहां राजा मृगांकने यह समाचार सुने, सो तुरंत ही पैदल आकर स्वामीको नमस्कार कर, विन्ती करने लगा--" हे नाथ! आपके प्रसादसे ही आज मेरी विपत्ति गई। आज ही मेरा आपके प्रतापसे उदय हुवा। धन्य है आपका साहस और पराक्रम!" इस प्रकार स्तुति करने लगे। जय जय ध्वनि चारों तरफ होने लगी। दुंदभि बाजे बजने लगे। पुष्पवृष्टि होने लगी। यहां तो यह खुशी हो रहीथी, वहां स्वामी कुछ और ही विचार कर रहे थे, कि हाय! हाय!! एक जीव के मारने-

का ही बहुत पाप है, फिर तो मैंने आज अगिणत जीव मार डाले। सत्य है—

" उदयागत लागो फिरे, जहां चाहे जहां जाव।
भोगे विन नहिं छूट है, कोटि न करो उपाय "॥

वहांपर विद्याधर इनकी प्रशंसा कर रहे थे। इतनेमें गगनगति रत्नचूल (जो बंधा हुवा था) की तर्फ इशारा करके बोले--" देखो, आज मृगांकने तुमको जीत लिया कि नहीं ? " यह सुनकर ही रत्नचूलको क्रोध आया और बोला--

" राव मृगांक स्याल सम, मैं गज सम तस अग्र।
सिंहरूप स्वामी भये, जीते सुभट समग्र॥"

तब मृगांक कोप कर कहने लगा—मनमें कुछ रह गई हो तो अब सही। आ जावो। तब रत्नचूल स्वामीसे प्रार्थना कर कहने लगा—नाथ ! कृपा कर छोड़ दिजिये, सो स्वामीने उसे छोड़ दिया। फिर उन दोनोंमें पुनः परस्पर युद्ध हुवा। दोनों अपने अपने दाव पेंच लड़ाते घात बचाकर आक्रमण करते, इस प्रकार बहुत समय तक युद्ध हुवा। अंतमें रत्नचूलने नाग पांस डाल कर राजा मृगांकको बांध लिया और घरको लेकर जाने लगा।

यह हाल देखकर स्वामी बोले--" अरे दुष्ट ! तू मेरे देखते हुवे, इसे कहां लेकर जाता है ? छोड़, छोड़ और जो अपनी कुशलता चाहे, तो मृगांकको नमस्कार कर। "

यह सुनकर रत्नचूल अपने पूर्व बंधनकी सुध भूल कर पुनः क्रोधित होकर स्वामीके सन्मुख युद्धके लिये आया। सो ठीक है-

" होनहार मिटती नहीं, लाख करो किन कोय।
कर्म उदय आवे जिसो, तैसी बुद्धि होय॥"

तब फिरसे घोर संग्राम होने लगा। सो थोड़ी सी देर-ही में स्वामीने रत्नचूलको फिरसे बांध लिया। तब पुष्पवृष्टि होने लगी, देवदुंदभि बाजे बजने लगे। मृगांककी सेनामें हर्ष और रत्नचूलकी सेनामें शोक फैल गया। स्वामीने राजा मृगांकके बंधन खोले और रत्नचूलकी भागती हुई भयभीति सेन्याको ढाडस (संतोष) दिया। तब राजा मृगांक स्वामीसे विन्ती करने लगे-"हे नाथ! अब नग्रमें पधारिये।"

तब स्वामीने स्वीकार किया और हाथी पर आरूढ होकर सकल सेन्या सहित प्रयान किया। मृगांक राजा स्वामीके ऊपर छत्र किये चमर ढोरते हुवे चले। नगर सब अच्छी तरह सजाया गया और घरोंघर आनंद बधाई होने लगी। इस समयकी शोभाका वर्णन नहीं हो सक्ता है। नारीयोंके समूह जहां तहां मंगल कलश लिये खड़े हैं। यहां तो जीतका हर्ष, यहां स्वामीके अपूर्व दर्शनका लाभ, फिर खुशीका पार ही नहीं रहा। लोग अपने अपने भाग्यकी सराहना करते कहते थे-

"अहो भाग्य! आज हमें ऐसे महान् पुरुषका दर्शन हुवा। धन्य है इनकी माता, जिसने ऐसा तेजस्वी पुत्र पैदा किया और धन्य इनके पिता, जिनने लाड़ प्यारसे पाला। धन्य है गुरु, जिनने अपूर्व विद्या सिखाई। वह भूमि धन्य है जहां ये पग रखते हैं। वे वस्त्राभूषण पवित्र हो गये, जिन्हें स्वामीने पहिर लिये। वे नदी नाले धन्य हैं, जहां स्वामी जल क्रीड़ा करते हैं।"

इस प्रकार पुरजन नरनारी सराहना करते थे और आशीर्वाद देकर स्वामी के ऊपर पुष्प वर्षा करते थे। इस प्रकार स्वामी नगरजनोंको हर्षायमान करते और उनके द्वारा सन्मान पाते तथा सबको यथोचित पुरस्कार देते हुवे चले जा रहे थे।

इनके अनूपम रूपको देखकर नरनारी अत्यन्त विह्वल हो जाते थे। कोई स्त्री बालकको दूध प्यावतीं थी सो स्वामी आनेकी खबर सुन एकदम दौड़ पड़ी, बालक पृथ्वीपर जाय पड़ा, उसकी उनको कुछ भी सुध न रही, कितनी अंजन दे रही थी, सो एक ही आंखमें आंजने पाई थी, सवारीकी आवाज सुनकर अंजनकी डब्बी हाथमें लिये और एक अंगुलीमें श्याम अंजन लगाये योंही दौड़ आई। कोई पतिको परोश रही थी, सो हाथमें करछी लिये दरवाजा बाहिर चली आई। कोई वस्त्र बदल रही थी सो आधावस्त्र पहिरें संभालती हुई आगई। कोई घर बुहार रही थी, सो बुहारी लिये चली आई। कोई पानी भरने जा रही थी, सो रास्तेमें अटक रही। जो पानी भर रही थी, सो कुवेमें घड़ा डाले हुवे योंही रह गई। जो पुरुष

दूकानोंमें बैठे हुवे रोकड़ गिन रहेथे, सो स्वामीको देख इकदम उठकर चले, रोकड़ विखर गई, पर उन्हें कुछ भी ध्यान नहीं। जो तोल रहेथे सो ऐसे विह्वल हो गये कि आटे के बदले बांट ग्राहकोंके पल्लेमें डालने लगे। कुछका कुछ तोल देने लगे। तात्पर्य कि उस समय नरनारियोंका कुछ विचित्र हाल था। कोई कहता था—देव है, कोई कहता कामदेव है, इस हालत हो रही थी।

जब कुमार (स्वामी) राजभवनके निकट पहूंचे, तो रत्नचूलको छोड़ दिया और भले वस्त्राभूषण पहिनाकर स्वामी बोले—"हे राजा! मुझे क्षमा करो, मैंने आकर यहां आप लोगोंको बहुत दुःख दिया"। तब स्वामी की बात सुनकर रत्नचूल विनय सहित कहने लगा—"हे नाथ! आप तो क्षमाधर हैं, कहां तक प्रशंसा करुं? मेरा धन्यभाग्य है, जो यह उपद्रव न किया होता, तो आप जैसे पुरुषोत्तमका दर्शन मुझ भाग्यहीनको कहांसे होते? आपके प्रभावसे मैं दुराचारसे बच गया। बहुत क्या कहूं? आपही मुझे कुगतिमें गिरनेसे रोकनेवाले हैं। इस लिये नाथ! अब मुझे विशेष लज्जित न कीजिये।"

ऐसे दीन बचन रत्नचूलके सुनकर स्वामीने मिष्ट शब्दोंमें संतोष दिया। राजा मृगांककी रानी स्वामीके आगमनके शुभ समाचार सुनकर मंगल कलश ले सन्मुख आई और मंजुल,

राजा मृगांककी पुत्री (और राजा श्रेणिककी मांग) वस्त्राभूषणों सहित आकर कुंवर (स्वामी) के ऊपर से निछरावल करने लगी।

इस तरह जब स्वामी रनवासमें पधारे, तब रानीने दही अंगुरीमें लेकर स्वामीको तिलक किया और गदगद होकर स्तुति करने लगी–"हे नाथ ! यह सुहाग आज तुम्हींने दिया है। आपही के प्रतापसे पतिके दर्शन हुवे । आपके जैसा हितैषी हमारा और कोई भी नहीं हैं। धन्य हैं, आप की परोपकारता को और साहस को कि स्वदेश छोड़कर पधारें" । इस प्रकार बहुत ही उपकार माना। स्वामीने भी यथायोग्य मिष्ट वचनोंसे उत्तर दिया। पश्चात् षटरसयुत विविध प्रकारके भोजन तैयार किये गये । सो स्वामीने जीमकर शयनागारमें शयन किया।

एक दिन इस प्रकार राजा मृगांकके यहां अतिथि (महमान) रूपसे रहे, फिर दूसरे दिन कहने लगे–"अब तो राजगृही को जाऊं, ऐसी मेरी इच्छा है।" स्वामी के ऐसे बचन किसको अच्छे लगे? सब हाथ जोड़कर बोले—"हे नाथ ! आप दश दिन और इस दीन के यहां ठहेर। आप के रहने से हम लोगों को परम शांति मिलती है। पश्चात् आपकी इच्छा प्रमाण जो आज्ञा होगी सो करेंगे। आज तो एक दूत के द्वारा सब कुशल समाचार भेज देना चाहिए, ताकि आपके मातापिता और राजाप्रजा सबको शांति मिले।"

स्वामीने यह बात स्वीकार की। तब राजा मृगांकने **सुबुद्ध** नाम दूत को बुला कर कहा—"हो दूत! तुम **राजगृही** नगर को जावो और वहां के राजा **श्रेणिक** तथा स्वामी के पिता **अर्हद्दास** श्रेष्टी और माता **जिनमती** से यहां के सब कुशल-समाचार कहो, और दश दिन पीछे स्वामी भी पधारेंगे यह भी कहियो, तथा योग्य भेंट वस्त्राभूषण यहां से लेजाकर उनके भेंट में धरो।"

रत्नचूल राजा यह सुनकर बोले—"हे राजन्! जैसी आप की सुता, तैसी ही मेरी भी है। सो मेरे और आप के यहां जो जो सार वस्तु हो सो सब ही उन्हीं की है। ऐसा दोनों राजावों ने विचार कर और बहुत से विद्याधर सेवकोंको बुलवाये और उनके हाथ बहुतसी संपत्ति देकर बिदा किया। सो वे विद्याधर स्वामी की आज्ञा पाकर हवा की तरह आकाश मार्गसे एक क्षण मात्रमें **राजगृही** आ गये, और राजा **श्रेणिक** के सन्मुख नमस्कार कर अल्प भेंट जो लाये थे सो अर्पण करके, केरलपुरकी जीत और स्वामीके आगमनके समाचार कहे। यह सुनकर राजा अति प्रसन्न हुवे और तुरंत ही यह समाचार श्रेष्टी अर्हद्दास के पास भेजे तथा स्वामी का पत्र और वह सामग्री भी सेठ के पास भेजी। सेठ और सेठानी अति ही प्रसन्न होकर उन आगन्तुक विद्याधरोंसे पूछने लगे कि—'आप लोगोंने कैसे हमको पहिचान लिया?' तब—

" नभचर बोले जोर कर, सुनो मात हम बात।
विश्व विभूषण तुम तनय, जगत भये विख्यात॥ "

सो ठीक ही है। चाहे हजार हू बादल क्यों ना आच्छादित करें तथापि दिनकर (सूर्य) को लोप नहीं कर सक्ते हैं। हे माता, हे पिता! आपके पुत्र कुल नहीं, देश नहीं, परंतु विश्व के भूषण हैं, फिर भला, आपको कौन न पहिचानेगा? जिस दिशासे सूर्यका उदय होता है, उसे ऐसा कौन अजान होगा जो न जाने? अर्थात् सब ही जान्ते हैं।

यह वार्ता सुन कर सब पुरजन तथा वे चार सेठ (जिनने अपनी अपनी कन्या देना स्वीकार किया था) सो बहुत आनन्दको प्राप्त हुवे। सब लोग घड़ी घड़ी गिनने लगे, कि कब ये १० दश दिन पूरे होवें और हम लोग स्वामी का दर्शन करें। सो समय तो अरोक चला ही जाता है। केरलपुरमें तो दश दिन दश घड़ी के समान निकल गये। परंतु राजगृही में दश दिन दश वर्ष से भी अधिक हो गये, बड़ी कठिनता से पूरे हुवे। सो ठीक है—

" जात न मालूम होत है, सुख में सागर काल।
एक पलक भी ना कटे, दुःख वियोग में हाल॥
दिवस सरीखा राजगृही, अरु केरलपुर मांहि।
उतके जात न जान हीं, यहां सो बीतत नांहि॥

वस्तु जगत सब एकसी, कही गुरु बतलाय।
राग द्वेष वश लख परे, भली बुरी अधिकाय॥"

इस तरह से दश दिन पूर्ण हुवे और स्वामीके मनमें संसार के चरित्रसे उदासीनता हुई, सो इनको यह सब वस्तु आडंबर रूप दिखाई देने लगी। कभी तो यह विचार कर कि अब दश दिन हो गये सो शीघ्र ही घर पहूंच कर इच्छित कार्य करूंगा (जिन दीक्षा धरूंगा) खुश होते और कभी अनुप्रेक्षा (भावना) का चिंतवन और तत्वस्वरूप विचार कर समभाव धारण कर उदास हो रहते। सो स्वामी की तो यह दशा हो रही थी, वहां विद्याधर यह विचारते थे कि यदि स्वामी कुछ और निवास करें तो अच्छा हो। यह विचार कर अनेक प्रकार राग रंग करते थे। ताकि दिनों की गिन्ती ही याद ना आवे। सो ठीक है—

"अपनी अपनी गरज़ को, इस जग में नर सोय।
कहा कहा करता नहीं, गरज़ बावरी होय॥"

परंतु स्वामी कब भूलनेवाले थे? उनकी तो अवस्था-ही और रूप थी।

"स्वामी चित्त वैराग्य अति, नभचर मन बहू रंग।
अवसर बन्यो विचित्र यह, केर बेर को संग॥"

उनको तो ये सब राग रंग हलाहल विष और तीक्ष्ण शस्त्रसे भी भयंकर दिख रहे थे। सो राजा मृगांक को बुला कर कहा कि अब आपके कथनानुसार अवधि पूर्ण हो गई, सो हमको बिदा दीजिये, और रत्नचूल से कहा कि आप भी अपने नग्र को पधारें और प्रजाके सुख दुःखकी खबर करें तथा मुझ पर क्षमा करें। ये बचन सुन कर दोनों राजा कहने लगे–

"आज्ञा सुनत कुमार की, बोले द्वय खगनाथ।
राजगृही तक हम उभय, चलिए तुम्हरे साथ॥"

हम लोग भी साथ चलेंगे और मातापिता तथा राजा श्रेणिकके दर्शन करेंगे। तब स्वामीने कहा-जो चलना है तो अब विलंब मति करो, शीघ्रही चलना चाहिए, क्योंकि समय अमोल है। "जाते हुवे जाना नहीं जाता और गया हूवा फिर फिर पीछे मिलता नहीं है। इस लिये उत्तम पुरुषोंको चाहिये कि जो कुछ कार्य करना हो, शीघ्रही कर लिया करें।"

स्वामीकी आज्ञा प्रमाण दोनों विद्याधर राजा मृगांक और रत्नचूल अपनी अपनी रनवास सहित और योग्य भेंट लेकर तथा पुत्रीको भी साथ लेकर आकाश मार्गसे क्षणभरमें राजगृही आये। राजा श्रेणिक तथा पुरजन लोग स्वामीका आगमन सुनकर अगवानीको आये और सबने परस्पर भेंट मिलाप किया। परस्पर "जुहारु" करके कुशल समाचार

पूछे और मिलकर सबने नगरकी ओर प्रयान किया, सो नगरके लोग बहुत खुशी हुवे।

" निरखत कुंवर सबहि हर्षाये,
मनहु अंध फिर लोचन पाये "

जब प्रथम राजमहलमें आये, तो राजा श्रेणिकने कुमारको अर्द्ध सिंहासन पर बैठाया और सबको यथायोग्य स्थान दे सन्मानित किया, तथा कुशलक्षेम पूंछने बाद राजा, स्वामीकी मिष्ट बचनोंमें स्तुति करने लगे–

" हे कुमार! आपके प्रभावसे हमको अलभ्य वस्तु प्राप्त हुई। धन्य हैं आपको कि जो कार्य अगम था उसे भी आपने सुगम कर दिया "। तब स्वामीने भी शिष्टाचारपूर्वक यथोचित उत्तर दिया और फिर राजासे सब खगराजा जो आये थे उनका परिचय कराया। सभी परस्पर जुहारु कहके प्रीति-सहित मिले, और स्वामीका उपकार मानने लगे कि आप-हीके प्रभावसे हम सब मिले हैं, इत्यादि प्रशंसा योग्य बचन कहे, फिर राजाका व्याह राजा मृगांककी पुत्रीके साथ बहुत ही आनन्दसे हुवा। स्वामी उदासीन रूपसे घरमें रहने लगे और अवसर विचारने लगे, कब वह समय आवे कि मैं जिन दिक्षा लेकर इस संसारके झगड़ेको मिटाऊं। कुछ दिन तक सब लोग रहे और फिर आज्ञा लेकर अपने २ निवास-

स्थानोंको पधार गये। राजा श्रेणिक भी निशंक होकर सुखसे काल व्यतीत करने लगे।

इस प्रकार कुछ दिन बीते, कि एक दिन राजा सभामें बैठे थे और वनपालने आकर विन्ती की–

"हे नाथ! इस नगरके समीप एक महा मुनिनाथ पधारे हैं, जिससे वनकी शोभा अतिशय हो रही है। सर्प और नौला, मूसा और बिलाव, सिंह और अजा आदि जातिविरोधी जीव परस्पर मैत्री भावसे निकट बैठे हैं।" यह समाचार सुन, राजाने वनपालको बहुत द्रव्य देकर संतोषित किया और सब पुरजन सहित कुमार (स्वामी) को लेकर मुनिकी बंदनाको चले। सो जब निकट पहूंचे, तब वाहनसे उतरकर पांव पयादे सन्मुख जाकर अष्टांग नमस्कार किया। मुनिने धर्म वृद्धि दी और सबको धर्मका स्वरूप समझाया। तब स्वामीने गुरुकी स्तुतिकर नम्रीभूत हो पूछा–" हे नाथ! मेरे भवांतर कहो।"

सो वे मुनि अवधिज्ञानी, स्वामीके भवांतर कहने लगे। स्वामीको भवांतर सुनकर अत्यन्त वैराग्य हुवा। सो ठीक है—

" पहिले हि से विरक्त थे, तापर सुन भवसार।
और धर्म गुरू जब दियो, फिर को रोकनहार॥"

स्वामी तुरंत ही कहने लगे—

"हे नाथ! मैंने इस थोड़ीसी जिन्दगीमें ही घोर कर्मोंका बंध किया है। यथार्थमें यह संसार मरूस्थल समान असार है और आप कल्पवृक्षके समान सुखदाता हैं। अनादि कालसे मोहनींदमें सोये जीवोंको जगानेवाले हैं। सच्चे करुणा-सागर आप ही हैं। मुझे भी अपना सेवक बनाइये और दिक्षा देकर भार उतारिये।"

तब स्वामीके बचन सुनकर मुनिवर बोले-"हे वत्स! अभी तुम घर जावो, पीछे आना तब दिक्षा देवेंगे।" तब गुरुके ये बचन सुनकर राजा हर्षित हुवे और सराहना करने लगे-

धन्य धन्य गुरु राय तुम, सब ही को सुख दैन।
परम विवेकी समय लख, कहे उचित ये बैन॥ (बचन)

और उठकर गुरुको नमस्कार कर विदा हो, स्वामीका हाथ पकड़के साथ ही रथमें बैठालकर नगरको चले। सो यद्यपि स्वामीको नगरमें जाना अच्छा नहीं लगता था, परंतु गुरुजनोंकी आज्ञा भी लोपना उचित नहीं है, ऐसा समझकर नगरकी ओर प्रयान किया। सो ठीक ही है-

"चाहे मन भावे नहीं, तऊ गुरुजनकी सीख।
कबहूं भूल नहिं लोपिये, लोपें मांगे भीख॥"

और स्वामी घरको आये, माता पिता बहुत खुशी हुवे,

और स्नेह कर कहने लगे–" हो पुत्र ! उठो, महलोंमें अन्दर पधारो और ये भोगोपभोगकी सामग्री तैयार है सो भोगो, तथा हम लोगोंके नेत्रोंको तृप्ति देवो। आपको आनंदित देखकर ही हम लोगोंको आनन्द होता है। सो ठीक है–

क्रीड़ा करत बाल लख सोई,
मातु पिता मन अति सुख होई।"

तब संसारसे पराङ्मुख स्वामी अपने माता पिताके इन स्नेहयुक्त बचनोंको सुनकर बोले–" हे पिता ! यह इन्द्री-भोग तो हमने अनादि कालसे भोगा। सो जब इंद्रादिकी विभवको भोगकर भी तृप्ति नहीं हुई, तब इस क्षुद्र आयुवाले मनुष्य भवमें क्या तृप्ति होवेगी ? इसमें तो वह अपूर्व काम करना चाहिये जो कि न तिर्यंच, न नारकी और न देव ही कर सक्ते हैं। इन्द्री विषय तो चारों ही गतिमें प्राप्त हो सक्ते हैं, परंतु अतेन्द्री सुखकी प्राप्तिका साधन सिवाय इस मनुष्य पर्यायकी अन्य किसी भी पर्यायमें नहीं हो सक्ता हैं। इस लिये हे पिता ! अब मुझे शीघ्र ही उस अखंड, अविनाशी, चिर-स्थायी, सच्चा, आत्मिक सुख प्राप्त करनेकी (**जिन दिक्षा** लेनेकी) आज्ञा दिजिये, क्योंकि प्रथम तो इस कालमें आयु-ही बहुत ही थोड़ी है, और उसमेंसे भी बहुतसा भाग पूर्व आयुका चला गया है। शेष भी पल घड़ी दिन पक्ष ऋतु करके निकलता जा रहा है, और गया हुवा समय फिर नहीं आता

है। इस लिये अब विलम्ब करना उचित नहीं है। आज्ञा दीजिये, मैं आज ही दिक्षा लूंगा।"

यद्यपि ये बचन स्वामीके अत्यन्त हितरूप थे और स्वामीको तो क्या संसारी जीवोंको धोखेकी टट्टीको तोड़कर (संसारके बंधनसे) निकालने वाले थे, परंतु मोहवश ये बचन माता पिताके हृदयमें तीरका काम कर गये। सो ठीक है—

" लख न परत हित अनहित कोई।
जाके उदय मोह अति होई॥"

सो स्वामीसे कहने लगे—" हे पुत्र! ऐसे बचन क्यों कह रहे हो? क्योंकि जैसे अंधेको लकड़ीका सहारा होता है, उसीके अनुसार आपका हम लोगोंको सहारा है। यह बाल अवस्था है। अभी आपका शरीर तप करने योग्य नहीं है। कुछ दिन भोग कीजिये पश्चात् योग लिजिये। यद्यपि स्वजन और पुरजन जो लोग इस खबरको सुनकर आये थे, सो सभी नाना प्रकारसे स्वामीको समझाने और विषयोंमें फंसानेकी चेष्टा करते थे। परंतु कुमार (स्वामी) के चित्त पर कुछ भी असर नहीं कर सक्ता था। सो ठीक है—

" अनुभवके अभ्याससे, रच्यो जो आत्म रंग,
कहो ताको त्रैलोकमें, कौन कर सके भंग? "

जब अर्हद्दास सेठने देखा कि स्वामी किसी प्रकार भी नहीं मान्ते, तब उन्होंने उन चारों सेठोंको, जो अपनी कन्याएं स्वामीको व्याहना चाहते थे, यह समाचार भेजे। उन लोगोंने ये समाचार सुनकर और अत्यन्त व्याकुल होकर अपनी २ पुत्रीयोंको बुलाकर कहा—"ऐ पुत्रीयो! जंबूकुमार तो विरक्त हुवे हैं और वे दिक्षा आज ही लेना चाहते हैं। इस लिये अब जो हुवा सो हुवा, हम लोग तुम्हारे लिये और कोई उत्तम रूपवान वर सोध लावेंगे।"

तब वे कन्याएं अपने पितावोंके इस कुत्सित वाक्यको सुनकर बोली—"हे पिता! या भवमें हमरे पति, हैंगे जंबूस्वामी; और सकल नर आप सम, मानो बच अभिराम। इस लिये अब आप पुनः ये बचन मुंहसे न बोले। बड़े पुरुषों द्वारा कुलीन कन्याएं इन शब्दोंको सुन नहीं सक्ती हैं। प्राण जानेसे भी अत्यन्त दुःखदायक, घृणित् लज्जाजनिक अपशब्द, हे पिता जनो! आपको कहना उचित नहीं है। क्या कुलवान कन्याएं कभी स्वप्नमें भी ऐसा कर सक्ती हैं कि एक पुरुष साथ जब उनका सम्बन्ध निश्चित हो गया और जब उन्होंने उसे अपने मनसे व्याहने-का संकल्प कर लिया, तो फिर किसी दूसरे से संबन्ध की वात चीतको भी कानसे सुने? क्या आपने राजमती आदि सतियोंका चरित्र नहीं सुना है? इस लिये और सब कल्पना

को छोड़ दीजिये और इसी समय स्वामी के पास जा कर यह बचन ले आइये, कि आप आज तो हमारी कन्यावोंसे व्याह करें और कल प्रातःकाल दिक्षा लीजिये। इसीमें हम लोग अपने २ कर्मकी परीक्षा करेंगी। जो हमारे उदयमें सुख या दुःख आनेवाला है उसे कौन रोक सक्ता है? बस, अब यही अंतिम उपाय है। आप जावें, देर न करें।"

यद्यपि ये सेठलोग कन्यावों के इस कथन से संतुष्ट नहीं थे, परंतु करे ही क्या? कुछ वश नहीं रहा। निरुत्तर होकर स्वामी के पास आये और आद्योपांत सब वृतांत कह कर विन्ती की—"हे नाथ! अब हम लोगोंको यही भिक्षा मिलना चाहिये कि आज तो हमारी कन्यावोंको व्याहिये और प्रभात दिक्षा लीजिये। स्वामीको यद्यपि क्षण क्षण भारी हो रहा था, परंतु अत्यन्त नम्र और दुःखित देख स्वामीने कबल: किया और उसी समय बरात लेकर व्याहको चले। सो व्याह कर प्रभा-के पहिले ही चारों स्त्रीयोंकी विदा कराकर पीछे लौट आये। गृहव्यव-हार जो थे, सो सब हुवे। एक पहर रात्रि जब बीत गई, तब दासीने सेज्या (बिछौना) तैयार की और स्वामी भी यथा-योग्य स्वजनोंसे विदा लेकर पलंग पर जा पड़े। चारों स्त्रियां भी सलाह कर गईं और अपनी २ चतुराई से स्वामी का मन चंचल करने ओर स्त्री चरित्र फैलाने लगीं।

सो चारोंमेंसे प्रथम ही पद्मश्रीने अपना जाल फैलाना

आरंभ किया, कहने लगी–"ए प्रीतम् ! जो आप मेरे कहनेको न मानोगे, तो मैं अपनी सखियोंमें इस तरह कहूंगी कि मेरा पति महा मूर्ख है । मेरी तरफ देखता ही नहीं है। वह श्रृंगार-रस को बिलकुल नहीं जानता है । न हास्यरसही उसमें है। कला चतुराई तो समझता नही है और कोखशास्त्रका तो नाम-ही उनने नहीं सुना । नायकाभेद तो बिचारे क्या समझे ? अरी बहनों ! उठो, इनके मनहीकी रही । तप करलो जल्दी से, जिसमें स्वर्ग भी मिल जावे। देखो तो इन की बुद्धि कहां गई कि सरोवर (इन्द्री विषय) को छोड़ कर ओसकी बूंद (स्वर्ग) की आश करते हैं ? भला, जो गोदका छोड़ कर गर्भ की आस करे वह मूर्ख कैसा ? "

तब तीनों बोली–"हे बहिन् ! तू कहे जैसा । " तब पुनः पद्मश्री कहने लगी–"किसी ग्राम में एक कृषिक काछी रहता था, सो उस के घर एक कमाऊ पुत्र और स्त्री थी। काल पाकर स्त्री मर गई । सो उस काछी ने और व्याह किया। जब वह नई काछिन आई, तो पति से प्रसन्न न हुई । पतिने कारण पूछा, तो कहा कि–"तुम अपने लड़केको मार डालो तो मैं प्रसन्न होऊंगी, क्योंकि जब मेरे उदरसे बालक होगा तब यह उसे दासके समान समझेगा और बहुत दुःख देगा, इत्यादि । "

तब काछीने कहा–"प्यारी, जो उसे मारूं, तो राजा

दंड दे, स्वजन और जाति के लोग मुझे पंच बाहर कर दे, इस लिये यह अधमकार्य मैं कैसे करूं ? ”

तब स्त्री बोली-“मैं तुमको उपाय बताती हूं, सो करो कि सबेरे आप दो हल लेकर खेतमें जावो और उनमेंसे एक हल पुत्रको दे कर आगे कर देना और मरखाहा बैल अपने हलमें लगा कर आप पीछे पीछे रहो, सो आंख बचा-कर बैल को ढीला कर देना। वह जा कर उसे सींग मार देगा। बस, पीछे से आप उसे मारने लगना और चिल्ला देना, कि दौड़ियो, बैलने मेरे लड़के को मार डाला। इस प्रकार कार्य हो जायगा और कोई भी न जानेगा। ”

तब वह कामांध काछी इस बात पर राजी हुवा और यह सब बात किसी तरह उसके पुत्रने सुन ली। जब सबेरा हुवा तो काछीने लड़के को आज्ञा दी कि हल लेकर खेत जोतने चलो। लड़केने वैसा ही किया। जब हल लेकर खेत में गया, तो धान का फूला और फला हुवा खेत जो था उसी में ही हल फेरने लगा। इतने में काछी आया और क्रोध करने लगा-‘अरे मूर्ख ! तू ने यह क्या किया कि चार महिने की कमाई खोदी। लड़का बोला-‘पिताजी ! इसमें क्या धान पोचा अनाज होगा? अब जोत कर गेहूं चना बोवेंगे, सो वैशाख-में खाना। ”

तब किसान (काछी) बोला–'बेटा! तू अत्यन्त मूर्ख है। हालका पका हुवा खेत तो मट्टीमें मिलाता है और आगेकी आशा करता है। आगे क्या जाने क्या हो?' यह सुन बेटा बोला–"पिताजी! ठीक है, फिर मुझे मार कर आपको पुत्र होगा या नहीं, या कैसा होगा इसका आपने क्या भरोसा कर लिया है?" यह सुन काछी लज्जित हुवा और दोनों मिलकर घर गये।" इसलिये स्वामी! प्रसन्न होवो। क्यों हंसी कराते हो?

इस प्रकार पद्मश्री जब अपनी चतुराई कर चुकी, तब स्वामीने कहा–"ए सुन्दरी! सुनो, एक महा नदी के तट कोई हाथी मरा पड़ा था। उसे बहुत से कौवे नौचकर खा रहे थे। अचानक लहर आनेसे वह कलेवर पानीपर बहने लगा, सो बहुत से कौवे तो उड़ गये। परंतु एक अतिशय लोभी कौवा उसे खाता हुवा बहने लगा। इसी प्रकार वह दश बारह कोश तक निकल गया। इतनेमें एक बड़ा मगर निकला और उस कलेवर को निगल गया। तब वह लोभी कौवा उड़ा और चाहा कि निकल जांय, पर जावे कहां? चारों ओर पानी ही पानी भर रहा था, सो बहुत इधर उधर भटका। निदान लाचार हो उसी नदी के प्रवाहमें गिर कर बह गया। सो ए सुन्दरी! यदि वह कौवा अधिक लोभ न करता और दूसरे कौवोंके समान उड़ गया होता तो क्यों प्राण खोता?

"वायस जो तृष्णा करी, बूड़ो सागर मांह।
मो बूड़तको काढ़ है, सो तुम देहु बताय॥"

यह कथा सुन पद्मश्री निरुत्तर हुई। तब कनकश्री–दूसरी स्त्री कहने लगी–" हे नाथ! सुनो, एक पहाड़ पर कोई बन्दर रहता था, सो एक समय अचानक पांव चूक जानेसे नीचे पत्थर पर गिरकर मर गया और कर्म संयोग विद्याधर हुवा। सो एक दिन मुनिके पास जाकर अपने भवांतर पूछे। सो मुनिने पूर्व वृतांत कह दिया। सुनकर वह विद्याधर घर गया और स्त्रीसे सब हाल सुनाकर कहने लगा कि एक वख्त पहाड़ परसे गिरा था सो बंदरसे मनुष्य हुवा हूं और अब जो गिरूंगा तो देव होऊंगा। स्त्रीने बहुत समझाया पर वह मूर्ख ना समझा। हठ करगया और पर्वतसे गिर पड़ा। सो–

" खग हठ कर गिरिसे गिरो, बन्दर हुवो निदान।
त्यों स्वामी हठ करत हो, आगे दुःख निदान॥"

सो " हे नाथ! हठ भली नहीं हैं, प्रसन्न होवो।"

तब स्वामी बोले–" सुनो! विंध्याचल पर्वत पर एक बंदर रहता था। सो बड़ा कामी, अपने सब साथियोंको मारकर अकेला विषयाशक्त हो वनमें रहने लगा। जो कुछ सन्तान होती थी उसे भी तुरंत ही मार डालता था। सो किसी बंदरीसे एक बन्दर हो गया और उसकी खबर बूढे बन्दरको न होने पाई। जब वह बन्दर जवान हुवा तब यह कामी बन्दर बूढ़ा हुवा, शा[illegible] गई। इंद्रियां शिथिल हो

गई, सो किसी समय वे दोनों आपसमें लड़ गये, सो वृद्ध बन्दर हार कर भागा और प्यास लगनेसे पानी पीनेको दल दलमें घुसा, सो कीचमें फंसकर वहीं मर गया। सो ऐ सुन्दरी!

" कपि तृष्णा कर भोगकी, पायो दुःख अकत्थ।
मैं चहूं गति जत्र डूबि हों, काढ़न को समरत्थ ॥ "

यह कथा सुनकर जब कनकश्री निरुत्तर भई, तो विनयश्री तीसरी स्त्री कहने लगी--" हे स्वामी! सुनिये। किसी ग्राममें काठ बेचनेवाला (लकड़हारा) रहता था, जिसने अतिशय परिश्रम करके दिन दिनभर भूखा मर मरके एक अंगूठी बनवाई और उसे यह सोचकर जमीनमें गाढ़ दी कि विपत्तिमें काम आवेगी। एक दिनकी बात है कि कोई बटोही उसके पास कुछ द्रव्य था, सो परदेश जाते समय ऐसे ही विचारसे अपना द्रव्य उसी जंगलमें गाढ़ कर चला गया। उसे इस लकड़हारेने देखकर खोदा तो बहुत द्रव्य था सो प्रसन्न होकर उसीके साथ अपनी अंगूठी भी रखकर गाढ़ दिया। उसे गाढ़ते हुवे किसी और ही बटोहीने देखकर वह द्रव्य वहांसे उखाड़ ली और ले गया। सो फिर जब वह लकड़हारा वहां आया और भूमि खुदी हुई देखी, पर द्रव्य न पाया सो हाय हाय करने और पछताने लगा कि वह लक्ष्मी गई सो गई और मेरी गांठकी भी साथ ले गई। सो ठीक है—

" जो नर बहु तृष्णा करें, चोरें परकी वित्त।
सो खो बैठें आपनो, साथहिं परकी वित्त ॥ "

इस प्रकार हे स्वामी !

" परिपूरण धन होत भी, भोगो दुःख अपार।
तिस सम नाथ न कीजिये, करूं विनय हितकार॥"

यह वार्ता सुनकर स्वामी बोले--" ऐ सुन्दरी ! सुनो, एक भयानक बनमें एक बटोही चला जा रहा था, सो उसे हाथीने देखा और वह उसके पीछे लगा सो भागते २ एक कुवेके किनारे झाड़ देख उसकी जड़ पकड़ कर कुवेमें लटक रहा। उस कुवेके नीचे तलीमें एक अजगर मूंह खोले बैठा था। बगलमें चारों तर्फ चार सांप फण उठाये हुवे फुसकारते थे। जड़को मूसे सफेद और काले दो रंगके काट रहे थे। झाडपर मधु-मक्खियोंका छाता लग रहा था सो हाथीने आकर झाड़को हलाया और मक्खियां उड़ कर बटोहीके शरीरसे चिपट गई। इतनेमें एक मधु (शहद) की बूंद उस बटोही के मूंहमें पड़ गई सो उसे बड़े प्रेमसे सब दुःख भूलकर चांटने लगा। इतनेमें एक विद्याधर आया और समझाकर कहने लगा-हो बन्धू ! तू कहे तो मैं तुझे इस दुःखकूपसे निकालं। तब बटोही बोला-'मित्र ! बात तो भली है, परंतु एक बूंद और आवे फिर तुम्हारे साथ चलंगा।' ऐसा कह फिर ऊपरको, बूंदकी ओर देखने लगा। यहां विद्याधर भी अपने मार्ग लगे। वहां चूहोंने जड़ कतर डाली सो वह बटोही बातकी बातमें अजगरके मुखमें जा पड़ा। सो ऐ सुन्दरी !

पंथी इन्द्री विषय वश, अजगर मुख गयो सोय।"

मैं जु पड़ू भवकूपमें, तो काढ़ेगा कोय॥"

भव बन, पंथी जीव, गज काल, सर्प गति जान।

कुवा गोत्र, मांखी स्वजन्, आयू जड़ पहिचान॥

निगोद अजगर है महां, घोर दुःखकी खान।

विषय स्वाद मधु बूंद ज्यों, सेवत जीव अज्ञान॥

" सम्यक् रत्नत्रय सहित, संवर करें निदान्।

विनयश्री इम जानियों, सोई पुरुष प्रधान॥"

यह कथा सुन **विनयश्री** निरुत्तर हुई, तब चौथी **रूपश्री** कहने लगी-"स्वामी! आपने हमारी तीनों बहिनोंको ठग लिया। अब मुझे ठगो तब आपकी चतुराई है। इस प्रकार गर्वयुक्त हो कहने लगी-हे नाथ! सुनो, जब दो चार वरस पानी वरसा, तो बिल वगैरः में पानी भर गया, सो एक बिलवासी जीव दुःखी होकर निकल कर भागा। उसे देख कर एक सांप पीछे लगा। जब वह जीव बिलमें घुसा, तो साथ ही वह सांप भी घुसा और जाते ही उस जीवको अपना भक्ष्य बनाया। परंतु इतनेसे उस सांपकी तृष्णा न मिटी, तब वह इधर उधर और जानवरोंकी खोज करने लगा कि अचानक वहां नौला मिल गया और सांपको पकड़ कर टुकड़े टुकड़े कर डाला। सो हे स्वामी—

" नाग लोभ अतिशय कियो, खोये अपने प्राण ।
तातें हठ स्वामी तजो, तुम है दया निधान " ॥

तब स्वामी यह वार्ता सुन कहने लगे-" ऐ सुंदरी ! किसी वनमें एक गीदड़ बहुत भूखा फिरता था, सो नगरके समीप किसी मरे हुवे बैलके सड़े कलेवरको देखकर भक्षण करने लगा । सो खाते २ सवेरा हो गया और नगर लोक सब बाहर निकले, परंतु वह गीदड़ अति लोभी, तृष्णावश वहां बैठा खाता ही रहा । नगरवासियोंने उसे खाते देखा तो उन लोगोंको औषधिकी याद आ गई । सो तुरंत जाकर गीदड़को पकड़ लिया । अब क्या है ? किसीने पूंछ काट ली, किसीने कान काट लिये, किसीने दांत उखाड़ लिये । जैसे वैसे जब इन लोगोंने उसे छोड़ा तो कुत्तोंने पीछा लिया और चींथ २ कर उसे मार डाला। सो ऐ सुंदरी! जो वह गीदड़ भूखके अनुसार खा करके कहीं भाग गया होता और तृष्णा न करता, तो अपने प्राण बचा सक्ता था परंतु--

" जैसे वह गीदड़ मुवो, तृष्णा वश निर्धार ।
तैसे मुझ भव जलधिसे, कौन उतारै पार ॥ "

इस प्रकार स्वामीने उन चारों स्त्रियोंको निरुत्तर किया और यहां सवेरेका वख्त हुवा । सब जीव उठ २ कर अपने काममें लगने लगे, परंतु स्वामीकी माताको निद्रा कहां ? सो चिंतातुर बैठी थी, इतनेमें दरबाजेके निकट

एक चोरको खड़ा देखा सो माताने पूछा–" ऐ भाई ! तू कौन है और किस हेतु यहां आया है ? "

तब चोर बोला–"हे माता ! मैं चोर हूं और आपके घरसे बहुत द्रव्य कई वार चुरा ले गया हूं । मेरा नाम विद्युतचर है । मैं राजपुत्र हूं परंतु बाल्यावस्थासे चोरीकी कुटेव है । इस लिये देश छोड़कर यहां आया हूं ।"

तब माता बोली- " हो भाई ! ये सब धन संपत्ति रत्नराशि है । इनमेंसे जितना चाहो ले जावो । " चोरने कहा--" ऐ माता ! तू क्षणेक घरमें जाति है, और क्षणेक आंगणमें आती है तथा इस तरह बिलकुल निष्प्रेह होकर द्रव्य ले जानेकी आज्ञा दे दी, सो कारण क्या ? "

तब माताने कहा--" भाई ! प्रातःकाल मेरा पुत्र दिक्षा ले जावेगा और ये चारों उसकी स्त्रियां हैं सो समझा रही हैं । कल ही ब्याह हुवा है, आज ही दिक्षा लेगा । फिर इस द्रव्यको कौन खावेगा, सो तू भला आया । अब इसे ले जा, यह भार-रूप दिख रहा है। मैं इसी चिंतामें बाहर जाती हूं, भीतर आती हूं । कहीं भी चैन नहीं पड़ता है । "

चोर बोला--" माता ! मुझे अब धनकी इच्छा नहीं है । आप अपने पुत्रसे मेरी भेंट करा देवो । मैं उन्हें बनमें जानेसे रोकूंगा, और न मानेंगे तो जो उनकी गति सो मेरी भी होगी । "

यह सुन गद गद होकर माता बोली--" बेटा ! जो तुम यह कार्य करो तो आधी द्रव्य तुमको दूंगी । तुम शीघ्र उपाय करो । " ऐसी बात कह कर माता कुमारके महलमें गई और दरवाजा खड़खड़ाया । स्वामीने माताका आगमन जानकर किवाड़ खोले और नम्र होय पूछने लगे--"हे माता ! बिना अवसर परिश्रम करनेका प्रयोजन क्या है ? "

तब बात बनाकर माताने कहा--"बेटा ! तुम्हारा मातुल (मामा) बारह वर्षसे विदेश गया था सो लग्नके समाचार सुनकर आपसे मिलनेको आया है । कहो तो यहां बुलाऊं । " स्वामी बोले--" सहर्ष यहां बुलाईये, मुझमें उनमें पर्दा क्या है ? "

बस, माताने मामा (विद्युतचर चोर) को बुलाया । सो चारों स्त्रियां तो अलग हो गईं और इनसे बातचीत होने लगी । प्रथम ही परस्पर जुहारु करके कुशलक्षेम पूछी, पश्चात् मामा अनेक प्रकारकी बातें बनाबनाकर स्वामीके चित्तको फिराना चाहता था । कभी देशकी, कभी द्रव्यकी, कभी स्त्रियोंकी, कभी युद्धकी, कभी भोजनकी, इस प्रकार चतुराईसे नाना कथाएं और अज़ीब कई देशोंकी बोलियां सुनाया करता । परंतु जैसे चिकने घड़ेपर पानी नहीं ठहरता, स्वामीके चित्तपरभी उसी प्रकार कुछभी असर न होता था । उसने रावण वगैरः अनेक पुरुषोंके दृष्टांत दिये, पर कुछ न हुवा । तब दीन आतुर होकर बोला--" हो बाल ! यों तो संसारमें और बहुतसे लोग हैं, सो

कौन किसे समझाने जाता है ? परंतु तुम हमारे घरके लड़के हो, सो गुरु जनोंका कहना मानना ही उचित है। देखो, जो बहुत तृष्णा करता है वह अवश्य दुःख पाता है।

सुनो, एक कथा कहता हूं कि जंगलमें एक ऊंट चरनेके लिये गया था। सो कुवेके निकट एक बृक्षको देखकर पत्ती तोड़ तोड़ खाने लगा। खाते खाते ज्योंही पत्ती तोड़नेको ऊपरकी ओर मुंह किया कि अचानक झाड़परसे मधुके छातेमेंसे मधुकी बूंद आकर गिरी, सो मीठा मीटा स्वाद अच्छा लगा, सो ऊपरको इच्छुक होयकर देखने लगा। परंतु जब बहुत वख्त तक बूंद न आई, तो मुंह ऊपरको बढ़ाया, परंतु छाता ऊंचा होनेसे मुंह वहां तक न पहूंचा। तब ऊपरको उछाट मारी सो उछलते ही नीचे कुवेमें जा गिरा और वहींपर तड़फ तड़फ कर मर गया, तासे हे बाल !

तृष्णा परभवकी तजो, भोगो सुख भरपूर।
वर्तमान तज आगवत, देखें सो नर क्रूर॥
तन धन योवन सुहृदजन, घर सुन्दरि वर नार।
ऐसा सुख फिर नहिं मिले, करें कोटी उपचार॥"

तब स्वामीने कहा—"मामा सुनो, एक कथा कहता हूं, कि एक सेठ परदेश जा रहा था। राहमें प्यास लगी, सो आतुर होकर एक वृक्षके नीचे जा बैठा। वहां पर चोरोंने घेरा और सब धन लूट लिया, सो प्रथम तो प्यास और फिर धन

लूट गया, दुहरा दुःख । इतनेमें निद्रा आ गई सो सो गया । स्वप्नमें एक निर्मल जलका भरा गंभीर समुद्र देखा, सो तुरंत पानी पीनेके लिये जीभ चलाने लगा। इतनेमें नींद खुली तो वहां कुछ भी न देखा. विह्वल हो इधर उधर भटकने लगा, परंतु पानी न मिलनेसे बहुत ही दुःखी हो गया। सो ऐ मामा ! ये स्वप्नके समान इन्द्री भोग हैं । इनमें सुख कहां है ? इस प्रकार स्वामीने और भी अनेक प्रकार कथा कहकर संसारकी असारता वर्णन की । "

तब मामा कहने लगे-" हे नाथ ! क्यों हम लोगोंको कुढ़ कुढ़ कराते हो ? शांत चित्त होकर घर रहो । ऐसा कहकर अपनी पगड़ी उतारकर कुमार (स्वामी) के सन्मुख रख दी और मस्तक झुकाकर नम्र हो कहने लगा,-तुमको तुमारी माताकी दुवाई (कसम) है । अरे ! मेरे आनेकी लाज तो रख लीजिये । माता पितादि गुरुजनोंके बचनानुसार चलना यही कुलीनोंका कर्तव्य है । परंतु यहां तो वही दशा थी--

" ज्यों चिकने घट ऊपरे, नीरबूंद न रहाय ।
त्यों स्वामीका अचल मन, कोई न सकत चलाय ॥"

सो जब बहुत समय हो गया और सवेरा हुवा, तब स्वामीने कहा-हे स्वजनवर्गो ! पत्थरपर कमल, जलमांहि माखन और बालुमहिं जैसे तेल पानेकी इच्छा करना व्यर्थ है, उसी प्रकार अब वीतरागरंगके रंगे हुवे पुरुषको

(मुझे) रागी बनाना असंभव है। ये तीन लोकोंकी वस्तुएं मुझे तृणके समान तुच्छ दिख रही हैं, और विषयभोग काले नाग समान भयंकर मालूम होते हैं। ये रागरूप बचन विषैले तीरके समान है। घर कारागार (जेल) के सदृश है। स्त्री कठिन बेड़ी है। संसार बड़ा भारी भयानक वन है। उसमें स्वार्थी जीव, सिंह व्याघ्रादिके सदृश विचर रहे हैं। इस लिये जानबूझकर ऐसे भयंकर स्थानमें रहना बुद्धिमानोंको उचित नहीं है। समय पाकर व्यर्थ खो देना उचित नहीं। सच्चे माता पिता व गुरुजन वे ही हैं, जो अपनी सन्तानको ऊच्च स्थानपर देखकर खुशी होते हैं, और जो उन्हें फंसाकर कुगतिमें पहुंचाते है वे हितू नहीं, उन्हें शत्रु कहना चाहिये। इस लिये हे गुरुजनो! आप लोगोंका कर्तव्य है कि अब मुझे और अधिक इस विषयमें लाचार न करें और न मेरा यह अमोल्य समय व्यर्थ गुमावें। सो जब विद्युच्चरने ये बचन सुने और देखा—अब समझाना व्यर्थ है, कुछ सार नहीं निकलेगा, तब अपना परिचय दे कहने लगा---

" हे स्वामी! मैं आपसे बहुत झूठ बोला। मैं हस्थिनापुरके राजा दुरद्वन्दका पुत्र हूं। बाल्यावस्थासे चोरी सीखा, सो पिताने देशसे निकाल दिया, तब बहुत देशोंमें जा जाकर चोरी की और वेश्याके यहां देता रहा। सो हे नाथ! आज चोरी निमित्त यहां आया था, परंतु यह कौतुक देखकर चोरी

करना भूल गया, और अब अतिशय विरक्त हुवा हूं।
बड़े पुरुष जिस मार्ग चले, उसी मार्ग चलना श्रेष्ठ है।
अब हे स्वामी! आपसे एक बचन मांगता हूं सो दीजिये
अर्थात् मुझ दीनको भी चरणसेवक बना लीजिये--अर्थात्
साथ ले चलिये।"

तब स्वामीने यह कबूल किया और तुरंत ही उठकर खड़े हो गये। यह देख सब लोग विलखित बदन हुवे, परंतु चित्राम सरीखे रह गये। कुछ मूंहसे शब्द नहीं निकलता था। सबके मनमें यही लग रही थी कि कुंवर घरहीमें रहें और दिक्षा न लेवें। नगरभरमें क्षोभ हो गया। सब लोग राजा प्रजा दौड़े हुवे आये। नरनारियोंकी अपार भीड़ हो गई। लोग नाना तरहके विचारोंकी कल्पना करने लगे। कोई कहते--अहो! धन्य है यह कुमार जो विषय से मूंह मोड़, संसार से नाता तोड़ चले। कोई कहते--भाई कुमारका शरीर तो केलेके झाड़ सरीख कोमल है और यह जिनेश्वरी दिक्षा खड़गकी धार है। किस प्रकार पार होगी? कोई माताकी दशा देख कहते थे--

"एक पूत जन्मोरी माय।
घर सुनो कर तपको जाय॥"

इत्यादि मनके मुताबिक बोलते थे, परंतु स्वामीका ध्यान तो बनमें मुनिके चरणकमलोंमें लग रहा था। सब लोग क्या

करते हैं और कहते हैं, इस ओर कुछ भी ध्यान नहीं था, सो जब स्वामीके प्रयान करनेका निश्चय ही हो गया तब राजाने रत्नजड़ित पालकी मंगाई और स्वामीको स्नान कराकर केशर चन्दनादि सुगंधित पदार्थोंसे विलेपन किया तथा पाटम्बरादि उत्तमोत्तम वस्त्र और सर्व आभूषण पहिराये। अहा! इस समय स्वामीके शरीरकी क्रांति अपूर्व थी। सूर्य भी शरमा जाता था। सो राजाने स्वामीको पालकीपर चढ़ाकर एक तर्फ आप स्वयं लगे, दूसरी ओर सेठ लग गये।

इस प्रकार पालकी लेकर चले। आगे आगे बाजे बजते हुवे चले जा रहे थे। इस समय माताने जाकर ये समाचार बहुवोंसे कह दिये, सो सुन्ते मूर्छित हुईं। जब सखियोंने शीतोपचार कर मूर्छा दूर की, तब वे चारों अपनी सुध भूलकर गिर पड़तीं दौड़ी, और स्वामीकी पालकीके चारों पायें चारोंने पकड़ लिये, बोलीं—

"सुनो प्रभु गुण खान, कीनो बहुत मुलाहजो।
अब हम तजें सुप्राण, जो आगे को चाल हो॥"

यह सुनकर और उन स्त्रियोंकी यह दशा देखकर स्वामीने पालकी ठहरा दी और दयालु चित्त हो अमृत बचनोंसे प्रिय बोलीमें समझाने लगे—"ऐ सुन्दरियों! विचारो, यह जगत् क्या है और किसके पिता पुत्र है? किसकी माता और किसकी स्त्री? यह तो सब अनादि कर्मकी सन्तति है। अनेक जन्मोंमें

अनेकानेक संबंध हुवे हैं। जिनका कुछभी पारावार नहीं है। सो मैं मोहवश इस संसारमें अनादि कालसे **अनेकबार जन्म मरण** किया, परंतु किसीमें बचानेकी समर्थ नहीं हुई। अब यह **अच्छा समय** है, कि जिसमें इन **चार गतिकी** बेड़ी छूट सक्ती है। सो अब विघ्न मत करो। मोह वश अपना और हमारा बिगाड़ मत करो। चलो, तुम भी गुरुके पास चलकर इस पराधीन पर्यायसे छूटकर स्वाधीन सच्चे सुख पानेका उपाय पूछो"।

यह सुनकर माता और चारों स्त्रियोंका चित्त फिर गया, पालकी छोड़ दी। सो चलते चलते जिस बनमें **सुधर्मस्वामी** तप कर रहे थे पहूंचे. और विनय सहित **अष्टांग नमस्कार** कर बैठे। मुनिनाथने धर्म वृद्धि दी।

तब स्वामीने हाथ जोड़कर प्रार्थना की--" हे नाथ ! इस अगम अथाह अतट संसारसे पार उतारीये।

तब गुरू बोले-" हो कुमार ! अब तुम भेषको छोड़ देवो।

यह सुन स्वामीने मुदित मन होकर तुरंत ही **वस्त्रादि आभूषण** उतार दिये और अपने कोमल करोंसे **केशोंको** घासकी तरह उखाड़ डाले और गुरुके सन्मुख नम्रीभूत हो व्रत **याचना** की। सो गुरुजी परम दयालु कर्म शत्रुवोंसे छुड़ानेवाले कुमार (स्वामी)को **दिक्षा** देकर मुनियोंके आचारका व्यौरा समझाने लगे, सो सुनकर स्वामीकी माता **जिनमती** और चारों स्त्रियां भी भवभोगसे

विरक्त हुई और पांचोंने गुरु समीप अर्जिकाके व्रत लिये। विद्युतचरने भी उसी समय समस्त परिग्रहका त्याग कर मुनिव्रत लिया, और नगरके नरनारियोंने योग्य किसीने मुनिव्रत, किसीने श्रावकव्रत, शक्त्यनुसार लिये । और फिर राजा तथा अन्यान्य गृहस्थ अपने अपने स्थानको गये ।

अब स्वामी तपश्चरण करने लगे। जब उपवास पूर्ण हुवा तब गुरु-की आज्ञा लेकर नगरकी ओर भिक्षाके अर्थ पधारे । सो नगर-के नरनारी देखनेको उठे । कोई कहे अरी सखी, यह वहीं बालक है, जो राजाका पट्टबद्ध हाथी छूटा सो पकड़ लाया था । कोई कहे–यह वही कुमार है, जो रत्नचूलको बांधकर मृगांकको छुड़ाकर, उसकी पुत्री श्रेणिक राजाको परणवाई । कोई कहे-यह वह कुंवर है जिसने व्याहके दूसरेही दिन देवांगना समान चारों स्त्री त्याग कर दी थी ॥ परंतु स्वामी तो नीची दृष्टि किये जूड़ा प्रमाण भूमि शोधते हुवे चले जा रहे थे, सो जिन-दास सेटने पड़गाह कर नवधा भक्ति सहित आहार दिया। तब स्वामीने अक्षय निधि कह दिया, सो देवनने पंचाचार्ज किये ।

इस प्रकार आहार ले कर बनमें गये और दिनोंदिन उग्र उग्र तप करने लगे, सो शुक्ल ध्यानके प्रभावसे केवलज्ञान प्राप्त हुवा ।

अहा! वह दिन (ज्येष्ठ सुदी ७) कैसाही उत्तम था कि जंबुस्वामीको केवलज्ञान हुवा और सुधर्मस्वामीको निर्वाणपद प्राप्त हुवा। धन्य हैं वे जीव जिनको ऐसा अवसर देखनेको मिले ।

फिर स्वामीने कईएक दिन विहारकर अनेक भव्य जीवोंको प्रतिबोध किया और स्वर्ग नरकादि चारों गतियोंके दुःख-सुख तथा मुनि श्रावकके व्रत, तत्वका स्वरूप, हेय ज्ञेय उपादेय आदिका स्वरूप भले प्रकार समझाया। और विहार करते २ मथुरा नगरी आये, सो वहांके उद्यानमें शेष अघाति कर्म नाश कर परमपदको प्राप्त करते हुवे। और अर्हद्दास सेठ सन्यास मरण कर छठवें स्वर्ग देव हुवे। जिनमती सेठानी भी स्त्री लिंग छेदकर उसी स्वर्गमें देव हुवे। चारों पद्मनी आदि स्त्रियोंने भी तपके प्रभावसे स्त्री लिंग छेद उसी ब्रह्मोतर स्वर्गमें देव पर्याय पाई।

विद्युतचर नामके मुनिराय महा तपश्वी विहार करते करते मथुराके वनमें आये, सो एक वनदेवी आकर बोली--"हे स्वामी! इस वनमें एक दानव रहता है सो बड़ा दुष्ट स्वभावी है. और जो कोई यहां रहता है उसे रात्रिको आकर सपरिवार घोर दुःख देता है। इस लिये हे स्वामी! आप कृपाकर यहांसे अन्य क्षेत्रमें ध्यान धरें। तब स्वामी विद्युतचर कहने लगे कि जो डरसे कायर हैं, उन मुनियोंको सिंहवृत्य जो गुण, जिससे तप व्रतकी रक्षा होती है, नष्ट हो जाता है और स्यार वृत्यसे वे तपसे भ्रष्ट हो नीच गतिको पाते हैं। आज तो हमारे पतिज्ञा है सो यहीं ध्यान करेंगे। जो होनहार होगी सो होगी। ऐसा कह योग ध्यान धरा। जब आधी रात बीत गई, तब वह दानव आया और घोर उपसर्ग करने लगा। नाना प्रकार रुप

धरधरकर डरावने लगा। इस समय स्वामीने घोर उपसर्ग जान कर सन्यास धारण किया। सो वह दानव जब थक गया और स्वामीको न चला सका, तब अपनी माया संकोचकर स्वामीके पास क्षमा मांगकर घरको चला गया।

जब सबेरा हुवा तो नगर नरनारी समाचार सुनकर देखने आये मस्तक नवाए, परंतु स्वामी तो मेरुके समान अचल ध्यानमें मौन सहित तिष्ठे रहे।

सो वे विद्युतचर महामुनिरायै बारह वर्ष तक तपश्चरण कर अंतमें समाधिमरण कर सर्वार्थसिद्धिमें अहमिन्द्र हुवे। वहांसे चय मनुष्य जन्म धर शिवपुरको जावेंगे, और२ मुनियोंने जैसा२ तप किया उस प्रकार उत्तम गतिको प्राप्त हुवे। सो इस प्रकार वे ब्राह्मण के पुत्र मिथ्यात्वी जिन धर्मके प्रभावसे मोक्ष और सर्वार्थ सिद्धिको प्राप्त हुवे। सो देखो भाई ! भवदेव जो छोटा भाई था उसने बड़े भाई का मान रखनेके लिये और वे शेठकी चारों स्त्रियां जो पतिके बावले होजानेसे और पतिके द्वारा नाक कान आदि आंगोपांग छिदनेसे दुःखित हो अर्जि-का हो गई थी, सो भी इस जिन धर्मके प्रभावसे भवदेव तो सर्वार्थसिद्धि और वे चारों स्त्रियां छठवें स्वर्गमें स्त्रीलिंग छेदकर देव हुईं। और बड़े भाई भावदेव जंबूस्वामी होकर मोक्ष गये। सो देखो, जो भय, लज्जा व मानवश भी धर्म अंगीकार करते हुवे, वे भी नरसुरके उत्तम सुख भोगकर सद्गतिको प्राप्त हुवे, तो जो भव्यजीव सच्चे मनसे व्रत पाले और भावना भावे उसे क्यों ना उत्तम गति प्राप्त हो ? अर्थात् अवश्य हो।

इस लिये हे भव्य जीवों ! स्वपर पहिचान कर इस धर्मको धारो और स्वपर कल्याण करो । इस प्रकार यह पुण्योत्पादक कथा पूर्ण हुई । जो भव्य मन वचनकाय कर पढ़ें, सुनावें, सुने, उनके अशुभ कर्मोंका क्षय हो । ॐ शांति शांति शांति।

जंबूस्वामी चरित जो, पढ़े सुने मन लाय ।
मन वांछित सुख भोगके, अनुक्रम शिवपुर जाय ॥
संस्कृतसे भाषा करी, धर्मबुद्धि जिनदास ।
लमेचू नाथूराम पुनि, छंदबद्ध की तास ॥
किसनदास सुत मूलचंद, करी प्रेरणा सार ।
जंबूस्वामी चरितकी, करी बचानिका सार ॥
तब तिनके आदेशसे, भाषा सरल विचार ।
लघुमति नाथुराम सुत, दीपचंद परवार ॥
जगत राग अरु द्वेष वश, चहूं गति भ्रमे सदीव ।
पावे सम्यक् रत्न जो, काटे कर्म अतीव ॥
गत संवत निर्वाणको, महावीर जिनराय ।
एकम श्रावण शुक्लको, करी पूर्ण हर्षाय ॥
अंतिम है इक प्रार्थना, सुनो सुधी नरनार ।
जो हित चाहो तो करो, स्वाध्याय परचार ॥

,, १७. श्री जीवंधर स्वामी चरित्र (गुजराती भाषा. बालबोध लीपि. प्रति १६००) ०॥

,, १८. शुं इश्वर जगत्कर्ता छे ? (गुजराती २०००) अमूल्य.

,, १९. श्री जैन सिद्धांत प्रवेशिका (पं. गोपालदासजी बरैय्याकृत. गुजराती भाषा. बालबोध लीपि प्रति १६००)०।

,, २०. रक्षा बंधन कथा (सलूना पूजन सहित. गुजराती भाषा. बालबोध लीपि. प्रति १५००) ०)॥

,, २१. पुत्रीको माताका सीखापन (हिंदी १०००) ०)॥

,, २२. श्री महावीर चरित्र (निर्वाण कांड भाषा-गाथा और निर्वाण पूजन सहित. हिंदी भाषा. प्रति २०००)०)॥

,, २३. श्रीकुंदकुंदाचार्य चरित्र (२४०० वर्ष पूर्वेनो जैन इतिहास. गुजराती भाषा बालबोध लीपि. प्रति १५००)०)≡

,, २४. श्राविका बोध स्तवनावली (गुजराती–हिंदी. प्रति २०००) ०)

,, २५. आपणे आपणी स्थितिमां शुं संतोष राखवो जोइए ? (गुजराती भाषा. प्रति २०००) ०)=

,, २६. श्री श्रीपाल चरित्र (हिंदी भाषा. पृष्ठ २०० कपड़ेकी पक्की जिल्द और सोनेरी नांव सहित प्र.२०००) १)=

,, २७. श्री जम्बूस्वामी चरित्र (हिंदी भाषा. प्रति २०००)०।

मिलनेका पता—

मेनेजर, दिगंबर जैन पुस्तकालय, चंदावाडी—सूरत.

सूरत खपाटीआ चकला रोड पर आवेला शा. मु. अ. ना जैन प्रीन्टींग-
प्रेसमां मटुभाइ मावदासे छाप्युं.

सीताचरित

दयाचन्द्र जैन, बी. ए.

❀ श्री ❀

॥ सीताचरित ॥

अर्थात्

जगतविख्यात राघोवंश तिलक महाराज श्रीरामचंद्रजी
की पतिव्रता भार्या श्रीमती जनकनन्दिनी
जानकीजी का संक्षिप्त चरित

लेखक व प्रकाशक

बाबू दयाचन्द्र जी गोयलीय, बी॰ ए॰

लखनऊ

प्रथमावृत्ति] सन् १९१४ ई०

Printed by B.
Jain Press, Ya'

॥ प्रस्तावना ॥

महाराज रामचन्द्रजी का यशस्वी नाम कौन नहीं जानता। वे किसके पूज्य आराध्य देव नहींहैं। भारत का बच्चा२उन के नाम से परिचित है। प्रत्येक भारतवासी के घर में उनकी नित्यशः पूजा बन्दना कीजाती है उनके अलौकिक गुणों और उपकारों से समस्त भारतभूमि गूंज रही है। यद्यपि उनको हजारों वर्ष होगए, परन्तु आजतक उनकी विमल कीर्ति उसी प्रकार विस्तृत है। उन्हीं की साध्वी स्त्री सति सीताजी (जानकी जी) का यह संक्षिप्त चरित है।

प्रिय बहनो! सीताजी का चरित केवल एक मनोरंजक कथा वा उपन्यासही नहींहै किंतु नीति और शिक्षा का एक ...है। उनके चरितकी एक एक घटना उपदेश से भरपूर ...ने एक तेजस्वी पराक्रमी राजा की पुत्री और एक ...य राजा की पुत्रवधू होकर वे कार्य किए कि ... पात्र उनको अम्बे, माते कहकर पुकारता ...म गुण हैं वे सब मानो विधाता ने ... स्त्रियोंमें सबसे उच्चासन सीता ... जन्म लेकर संसार को आ- ...यों में जिन २ गुणों की आ-

वश्यकता है-उन सबकी परिपूर्णता सीताजी में थी। यद्यपि योरप आदि देशों में अनेक स्त्रियां हुईं, परंतु कोई भी सीता जी की समानता नहीं करसकी। सीताजीने भारतवर्ष में जन्म लेकर भारतवर्षके नाम और गौरव को संसार के इतिहास में सदैव के लिए अंकित करदिया। जबतक इस पृथ्वी पर चन्द्र और सूर्य का प्रकाश रहेगा, सीताजीके अलौकिक गुणों के कारण समस्त विश्वमंडल में भारत भूमि का मस्तक ऊंचा रहेगा।

सीताजी ने अपने उदाहरण से सम्पूर्ण जगत को बता दिया कि पतिव्रत धर्म इसे कहते हैं। जिस सुकुमारी जनकनन्दिनी ने कभी घर से बाहर पैर भी न रक्खा था, जिस ने कभी भूख प्यास की वेदना का नाम भी न सुना था— उसने पति के साथ जंगलों में अनेक कष्टों को सहर्ष सहन किया, कठिन भूमि पर चलना स्वीकार किया। कई कई दिन तक बिना खाए पीए रहना गवारा किया, परंतु पति सेवा से क्षणमात्र के लिए भी मुँह न मोड़ा। पति देव का मुख सरोज देखतेही वह सब कष्टों को भूलजाती थी और एक दम उसके शरीर में आल्हाद हो आता था।

जब दुष्ट रावण सीताजी को हरकर लेगया और उनके शक्ति भर प्रयत्न करने पर भी कुछ फल न हुआ तो इस पतिव्रता देवी ने आहार जल का त्याग कर दिया और दृढ़ प्रतिज्ञा करली कि जब तक श्रीराम की कुशल क्षेम के

समाचार न सुनूंगी आहार जल का स्पर्श भी न करूंगी । रावण ने कितना समझाया, कितना रिझाया और कितना लोभ दिखाया, परंतु धन्य है, उस पतिव्रता साध्वी को कि जिसने आंखभी उठाकर उसकी तरफ नहीं देखा और वे अकट्य उत्तर दिए कि रावण का मुंह बंद होगया और वह अपनासा मुंह लेकर रहगया । फिर जब रामचन्द्रजी ने लोकापवाद के भय से सीताजी को निर्जन बन में निकाल दिया तब उन्हें अनेक घोर कष्टोंको सहन करना पड़ा, परंतु उन्हों ने कभी स्वप्नमें भी रामचन्द्रजी को उलाहना नहीं दिया । वे सदा उन्हीं का स्मरण करती रहीं और यही कहती रहीं कि इसमें रामचन्द्रजी का कोई दोष नहीं है । यह सब मेरे अशुभ कर्मों का फल है । मैंने पूर्व जन्म में अवश्य कुछ बुरे काम किए हैं कि जिनके ये फल भोग रही हूं । पश्चात् जब लव, अंकुश का रामचन्द्रजी से युद्ध हुआ तो श्रीरामने उनके शील की परीक्षा करने के लिए उनको जलते हुए अग्नि कुंड में से निकलने का हुकुम दिया, तो वह शील सुंदरी तत्काल आराध्य देव का स्मरण करके यह कहकर अग्नि-कुंड में कूदपड़ी कि यदि मैंने स्वप्न में भी रामचन्द्रजी को छोड़ कर और किसी का ध्यान किया हो, तो मैं इस अग्नि में भस्म होजाऊं । सीताजी साक्षात् शीलकी मूर्ति थीं । उनके अखंड शीलके प्रभाव से वह महान जाज्वल्यमान अग्निकुंड शीतल जलमय होगया और देवताओं ने आकर उनकी रक्षाकी ।

बहनो ! विचार करो, सीताजी को कितने कष्ट सहने पड़े, कितनी आपत्तियों का सामना करना पड़ा, घर बार छूटा, मित्र सम्बन्धी छूटे, देश ग्राम छूटा, स्वयं पति देव छूटे, दूसरे की कैद में पड़ना पड़ा, तिस पर भी उन्हों ने किस प्रकार पतिव्रत धर्म का पालन किया और शीलकी रक्षाकी। वास्तव में संसार में स्त्री के लिए शील से बढ़कर और कोई उत्तम वस्तु नहीं। शीलही स्त्रीका रूप है, शीलही आभूषणहै, और शीलही शृंगार है। शीलही जीना और शीलही मरना है। चाहे और सर्वस्व चलाजाय, परंतु यदि शील बच जाय तो कुछ भी गया नहीं समझना चाहिए। यही अमूल्य शिक्षा सीताजी के जीवन से मिलती है। जिस तरह सीताजी ने सब सुखों पर धूल डालकर, पति के साथ जंगल पहाड़ों में शेर, बाघ, स्याल प्रभृति का सामना करते हुए कंकर पत्थरों की ठोकर खाकर कांटों पर चलना स्वीकार किया, इसी प्रकार आपका भी धर्म है कि आपत्ति आने पर भी पतिकी सेवा से विमुख न होओ। वह जिस दशा में हो उसीमें अपना सौभाग्य समझो। चाहे कुछ हो, प्राण रहें या जायँ, मरते २ शील की रक्षा करो। तथा पति चाहे कितनाही रुष्ट होजाय, चाहे कितनाही दण्ड वह दे, परंतु कभी उसकी निंदा न करो। सदा इष्टदेव की समान उसकी आराधना करो। अहर्निश उसी का स्मरण करती रहो। विश्वास रक्खो कि जो स्त्रियां पतिव्रत धर्म का पालन करती हैं, देव सदा उनकी रक्षा करते हैं।

एक बात और ग्रहण करने योग्य है । सीताजीका स्वभाव बड़ा कोमल था । सदा उनके मुख मंडल से प्रसन्नता झलकती थी । वे भूलकर भी क्रोध करना नहीं जानती थीं । इसी कारण सब कोई उनसे भगिनी के समान प्रेम करतेथे । बहनो ! आपको भी यह गुण अवश्य ग्रहण करना चाहिए । संसारमें उन्हीं की प्रशंसा होतीहै जिनका स्वभाव नम्र होता है । अपने तो अपने पराये भी उनसे निस्वार्थ प्रेम करने लग जाते हैं ।

बहनो ! यह चरित हमने केवल आप के लाभार्थ लिखा है । इसे पढ़कर यदि आपने कुछ भी लाभ उठाया तो हम अपने परिश्रम को सफल समझेंगे और शीघ्र अन्य पतिव्रता देवियों के चरित भी आपके सन्मुख उपस्थित करेंगे ।

इस पुस्तक के संशोधन में हमें अपने मित्र श्रीयुत पं॰ नाथुरामजी प्रेमी, बम्बई, तथा लाला भगवानदासजी जैन मालिक जैन प्रेस अहियागंज, लखनऊ से बहुत सहायता मिली है । अतएव हम दोनों महानुभावों के अत्यंत आभारी हैं ।

लखनऊ
१०-८-१४

दयाचन्द्र गोयलीय

सीताचरित

पहला परिच्छेद

भारतवर्षमें अनेक देश हैं। उन्हींमें से एक मैथिल देश है। यह प्राचीन कालसे अनेक ऐतिहासिक घटनाओं के कारण जगत् प्रसिद्ध है। आबाल वृद्ध सर्वही इसके नाम से परिचित हैं। इसमेंही मिथिलापुर नाम का एक नगर था जो हर प्रकार की धन धान्यादि सम्पदाओंसे भरपूर और प्रकृति की विलक्षण शोभाओं से विभूषित था। यहां किसी समय विश्वविख्यात राजा जनक राज्य करते थे। उनके ऐश्वर्यकी कोई सीमा न थी। वे बड़े सत्यवादी, प्रतापी और प्रजाहितैषी थे। उनकी पट्टरानी श्रीमती विदेहा देवी भी रूप गुण में सब प्रकार से उनके अनुरूपही थीं। उनके अलौकिक गुणों और शील स्वभाव के कारण प्रजा उन्हें माता पिता तुल्य मानती थी।

पूर्व पुण्य के उदय से रानी बिदेहा ने गर्भ धारण किया। क्रम २ से नौ मास व्यतीत होने पर सर्वांग

सुन्दर पुत्र पुत्री का जन्म हुआ, परन्तु दैव योग से जन्मान्तर के एक वैरी दैत्यने अपना बदला लेने के अभिप्रायसे पुत्र को उसी रात्रि में हरण करलिया । दैत्य को उस पर इतना क्रोध आया कि उसे आकाश से पृथ्वी पर पटक कर अपने स्थान को चला गया। रथनुपुर के राजा चन्द्रगति ने जो अपनी प्राणप्यारी सहित आकाश में विचर रहा था बालक को आकाश से पृथ्वी पर गिरते देख तत्काल नीचे आया और बालक को उठाकर अपने घर लेगया। इस मनोज्ञ बालक को पाकर राजा, रानी दोनों को अपार आनन्द हुआ। उन्हों ने महान् उत्सव मनाया और उस देवोपनीत रत्नों के कुण्डल की किरणों से मण्डित पुत्र का नाम प्रभामंडल (भामंडल) रक्खा ॥

❀ दूसरा परिच्छेद ❀

जब सवेरा हुआ और विदेहा ने अपने प्राण प्यारे पुत्र को अपने पास न पाया तब उसके बदन में सन्नाटा छा गया। ऊपर का दम ऊपर नीचे का नीचे रह गया। थोड़ी देर में होश आने पर वह गला फाड़ २ कर चिल्लाने लगी और हाय ! हाय ! कर गगन मंडलको कंपाने लगी। जनक महाराज ने बहुत कुछ समझाया पर उस अबला का दुःख दूर न हुआ। राजा ने पुत्र की खोज में चारों तरफ तेज घुड़सवारों को दौड़ाया, अपने मित्र सम्बन्धी

राजा महाराजाओं को समाचार भिजवाया, पर कहीं भी पुत्र का पता न पाया। लाचार होकर शोकातुर दम्पति पुत्री परही संतोष करके बैठरहे। उसी को लाड प्यारसे पालने लगे। थोड़ेही दिनों में मनोहारिणी जानकी ने अपनी बाल लीला से पुत्र का शोक भुला दिया। पुत्री क्या थी? मानों रूप लावण्य की खानि थी। स्वर्ग से साक्षात् देव कन्याही भूमंडल पर उतर आई थी। शिरसे लेकर नख तक उसका एक एक अंग अनूपम सौन्दर्य का एक आदर्श चित्र था। यह कमलनयनी मृगलोचनी कोमलाङ्गिनी, लक्ष्मी स्वरूपा कन्या शुक्लपक्ष की शशि कला की समान दिनों दिन बढ़ने लगी। क्रमशः इसने यौवनावस्था में पग रक्खा। अब तो इसके अंग प्रत्यंग की शोभा और भी बढ़गई। यह अपने रूप लावण्य से कामदेव की स्त्री रति और इन्द्रकी इन्द्रानी को भी लजाने लगी।

अब माता, पिता को विवाह की चंता हुई। वे रात दिन यही सोचा करते थे कि इसके योग्य कौनसा राजकुमार है। सोचते सोचते राजा जनक ने विचार किया कि इस समय अयोध्याके राजा दशरथ मेरे सबसे बड़े मित्रहैं। उनके राम, लक्ष्मण पुत्रहैं, जिनमें राम सर्व गुण सम्पन्न, बड़े साहसी शूर वीर हैं। उन्होंने अभी मुझे शत्रुओं के जीतने में बड़ी सहायता दी है। अतएव मैं उन्हीं के साथ अपनी पुत्री का विवाह करूंगा। महाराज ने अपना यह संकल्प अपनी रानी पर भी प्रकट करदिया।

❀ तीसरा परिच्छेद ❀

नारदजी का कौतूहल जगत्प्रसिद्ध है। कौतूहलही उनके जीवन की विशेष वस्तु है। चाहे किसी का घर उजड़े, चाहे बिगड़े, चाहे कोई सुख शय्या पर शयन करे, चाहे कोई बन बन की राख छाने, पर उन्हें अपने कौतूहलसे काम। कौतूहल वश ही उनके मनमें इच्छा हुई कि चलो, ज़रा उस जनक नन्दिनी जानकी को तो देखें जिसे राजा जनक ने रामचन्द्रजी को देनी कीहै। वह किन लक्षणों से मंडित है, कैसी सुन्दरी है।

जिस समय नारदजी सीता के महल में पहूंचे, उस समय वह दर्पण में अपना मुख देख रही थी। उसमें नारदजी की भयंकर जटा का प्रतिबिम्ब देखकर वह भयभीत होकर घर के अन्दर घुसने लगी। नारदजी भी उसके पीछे चले, पर द्वारपाल के रोकने पर पीछे हट गये। इस अनादर को सीता का किया हुआ समझकर वे मनमें खेदखिन्न होतेहुए कैलाश पर्वत की ओर चल दिये।

वहां जाकर उन्हों ने विचार किया कि इस पापिनी जनक सुता ने मेरा घोर अपमान किया। मैं इस से अवश्य बदला लूंगा। यह दुष्टिनी मेरे आगे कहां बचेगी ? यह जहां जहां जायगी वहांही कष्टों में डालकर इसके इस कृत्यका मज़ा

चखाऊंगा। ऐसा विचार कर नारदजी ने सीताका एक चित्र पट बनाया और उसे वे रथनूपुर उसके भाई भामंडलके पास लेगये। भामंडल यह नहीं जानता था कि यह मेरी बहनका चित्र है। चित्र बहुतही सुन्दर बना था। उसे देखकर साक्षात् सजीव सीता का भ्रम होताथा। वह उसे देखतेही काम के बाण से घायल होगया। किसका खाना, किसका पीना सब भूलगया। रात दिन सीताकी चाह में उन्मत्त रहनेलगा।

उसकी यह दशा देखकर चन्द्रगति विद्याधर ने पुत्र को धैर्य्य दिया और कहा. बेटा! क्यों विकल हो रहा है? विषाद को दूर करदे। तू विद्याधरों की अत्यन्त रूपवती कन्याओं को छोड़कर भूमिगोचरियों से सम्बन्ध करता है। यह हमारे कुल और जाति के लिये लज्जा की बात है। अस्तु, यदि तेरे मन में सीताही बसी है तो क्या चिन्ता है, अभी उसके पिता को बुलाकर सब ठीक किये देताहूं।

विद्याधर राजा ने तत्काल अपने दूत को बुलाकर और सब हाल उसे अच्छी तरह समझाकर मिथिलापुरी की ओर रवाना करदिया। दूत वहां गया और अपनी विद्या के बल से महाराज जनक को आकाश मार्ग से रथनुपुर में ले आया। चन्द्रगति ने राजा जनक का बड़े आदर सत्कार से स्वागत किया। दोनों एक दूसरे से मिलकर बड़े आनन्दित हुए।

अवसर पाकर चन्द्रगति ने कहा कि मित्रवर मैंने सुना है

कि आपकी कन्या सीता सर्वगुण सम्पन्न, और सुन्दरी है। अतएव आप उसका मेरे पुत्र भामंडल के साथ सम्बन्ध कर दीजिए। आपको ऐसा वर मिलना कठिन है। जनक ने उत्तर दिया, हे विद्याधरपति! आपका कहना शिर माथे पर है, परन्तु मैंने उसे अयोध्या के राजा दशरथ के पुत्र श्री रामचन्द्रजी को देनी करदी है। इसपर विद्याधर अपनी प्रशंसा और भूमिगोचरियों की निन्दा करनेलगे, कि कहां हम विद्याधर और कहां वे रंक भूमिगोचरी। हे जनक! तुम्हारी बुद्धि कहां चली गई? कुछ तो विवेक से कामलो। यह तुम्हारा बड़ा भाग्य है कि विद्याधरों के साथ तुम्हारा सम्बंध होता है, पर जनक ने एक न मानी। वे राम की ही प्रशंसा करते रहे।

जब चन्द्रगति ने देखा कि जनक किसी तरह नहीं मानता तब उसने अपने विद्याधरों से सलाह करके जनक राज से कहा कि तुम वृथाही राम लक्ष्मण की प्रशंसा करते हो, उन के बल पराक्रम को तुम जानते नहीं। इसलिए हम देवों द्वारा पूज्यनीय वज्रावर्त, और सागरावर्त, दो धनुष देते हैं, यदि राम लक्ष्मण इनको चढ़ा देवें, तो हम उनकी शक्ति जानें। तब आप उन्हें अपनी कन्या खुशी से दे दें, हम कुछ न कहेंगे, अन्यथा हम तुम्हारी कन्या को ज़बर्दस्ती ले आवेंगे, और तुम देखते के देखतेही रह जाओगे। जनक महाराजने यह बात स्वीकार करली। वे धनुष और विद्याधरोंको लेकर

मिथिलापुर चले आये। जब महाराज ने नगर प्रवेश किया तब अनेक मंगलाचार गाये गये। सब कोई भेट लेलेकर सन्मुख उपस्थित हुए।

विद्याधरों ने नगर बाहर आयुधशाला बनाई और वहां उन्होंने दोनों भयंकर धनुषों को रखदिया।

राजा जनक ने बात तो स्वीकार करही ली थी, परन्तु उन्हें अन्तरंग में बड़ी चिन्ता हो रही थी। वे धनुषों को देखकर भय से कम्पित हो रहेथे।

❀ चौथा परिच्छेद ❀

अंत में महाराज जनक ने सभासद और मंत्रियों को बुलाकर स्वयम्बर रचना की आज्ञा दी। बातकी बात में राजकुमारी के स्वयम्बर की बात सारे नगर में फैलगई। सर्व साधारण की उत्सुकता स्वयम्बर देखनेके लिए शनैः शनैः बढ़ने लगी। देश देशान्तरों से आये हुए राजा महाराजाओं से सारा शहर भरगया, नगर के चारों ओर हज़ारों डेरे, तम्बू बात की बात में दिखलाई देने लगे। अयोध्या के महाराजा दशरथ भी अपने चारों राजकुमारों सहित वहाँ पधारे और स्वयम्बर के दिनकी प्रतीक्षा करने लगे।

आज स्वयम्बर का दिन है। जिधर देखो उधरही झुंड

के झुंड लोगोंके दिखाई देते हैं। निमंत्रित राजा महाराजा सज धजकर स्वयम्बर मण्डप की ओर आरहे हैं। नगर की सौभाग्यवती स्त्रियां अपने अपने कोठों पर चढ़ी फूलों की वर्षा करतीं और नाना प्रकार के क्रीड़ा कौतुक कर रही हैं। कोई हँस रही हैं, कोई गारही है कोई अपनी सहेली से बातें कर रही हैं। राजकुमारों के रूप, रंग, अस्त्र, वस्त्र उनके आलोच्य विषय हो रहे हैं।

अब स्वयम्बर का समय आ गया। शंखध्वनि से सारा मण्डल गूंज उठा। स्त्रियां मंगल गीत गाने लगीं, भांति भांति के बाजे बजने लगे। बन्दीजन उच्च स्वरसे यश गान गाने लगे और जय जय शब्द का उच्चारण करने लगे। भारत के सभी निमंत्रित राजे महाराजे एक पंक्ति में कुमारी के महल के सामने विराजमान थे। सभा के चारों ओर दर्शकों की अथाह भीड़ थी। कान पड़ा शब्द सुनाई न देता था। सभी की दृष्टि जानकी पर लगी हुई थी। एक खोजा जो सबसे परिचित था, हाथ में एक बेत लिये हुए इशारा कर करके कुमारी को हर एक राजकुमार का गुण सुनाता जाता था।

हे राजदुलारी, तुम्हारे पिताजी के बुलाये हुए भारत के सभी प्रधान प्रधान राजा इस स्वयम्बर सभा में पधारे हैं। ये अंग, बंग, कलिंग, कौशल, पांचाल, मगध, काशी, गां-

धार आदि देश देशों के अधिपति तुम्हारे अनुपम सौंदर्य को सुनकर तुम्हारे पाणिग्रहणके इच्छुक होकर आयेहैं। इन में से जो कोई आयुधशाला में रक्खे हुए वज्रावर्त, सागरावर्त, धनुषों को चढ़ा देगा, वही तुम्हारा पति होगा।

जनकनंदिनीने सबकी ओर देखते हुए अपने मनमें विचार किया कि यद्यपि राजपुत्र तो सभी सुभग और सुन्दर हैं। परन्तु इन सब में दशरथ सुत रामचन्द्रजीही शिरोमणि हैं। देखिये, भाग्य में क्या बदा है? धनुष चढ़ालें, तभी मनोकामना पूर्ण हो। सीता ज्यों ज्यों राम को देखती थी, उसके सारे शरीर में रोमाञ्च हो आता था। सबकी दृष्टि जानकी पर थी, पर जानकी की दृष्टि केवल राम पर थी। वह उन्हें निर्निमेष दृष्टि से टकटकी लगाये हुए देख रही थी।

जनक महाराज का इशारा पातेही सब राजा महाराजा खड़े होगये और आयुधशाला की ओर जाने लगे। धनुष्यों को देखतेही बड़े बड़े पराक्रमी पीछे हट गये। किसी का साहस नहीं हुआ जो उनको हाथ लगावे। किसी किसी ने उद्योग भी किया, परन्तु उन्हें अपना मुंह लेकर पीछे हट जाना पड़ा। अन्त में श्रीराम ने वीरता से आगे बढ़कर बात की बात में वज्रावर्त को तान दिया। लक्ष्मण भी अपना पराक्रम दिखलाने के लिये आगे बढ़े और उन्हों ने दूसरे धनुष्य सागरावर्त को उठाकर खैंच लिया।

धनुष् चढ़ातेही सीता हाथ में वरमाला लिए शीघ्रता से आगे बढ़ी और उसने उसे प्रफुल्ल मन से अपने प्राण प्यारे श्रीराम के गले में डालदी। बस अब क्या था? सखियां मंगल गीत गाने लगीं, बाजे बजने लगे पुष्पवृष्टि होने लगी, चारों ओर से जय जय शब्द होने लगे और आकाश में देवगण धन्य धन्य कहने लगे।

इस अपूर्व दृश्य को देखकर जनक, दशरथ तथा उनके सम्बन्धी बहुतही आनन्दित हुए। सीता राम का जोड़ा ऐसा मालूम होता था मानो चाँद और सूरज दोनों एक साथ पृथ्वी पर उतर आये हैं।

विधि अनुसार विवाह संस्कार हुआ और दशरथ बड़े आनन्द मंगल के साथ पुत्र वधू सहित अयोध्या को रवाना हुए। जब यह शुभ संवाद अयोध्यावासियों ने सुना, तब वे हर्ष के मारे अंग में फूले न समाये। घर घर आनन्द मंगल होने लगे। बड़ी धूम धाम से नवीन वर वधू का स्वागत किया गया। इस समय प्रत्येक के हृदयमें रामकी वीरताका चित्र घूम रहा था।

❀ पांचवां परिच्छेद ❀

राम जानकी का जोड़ा आदर्श पति पत्नी का जोड़ा था। उनका जीवन सच्चा धार्मिक जीवन

था । जिन सुखों के लिए विवाह किया जाता है वे सब उन्हें प्राप्त थे ।

इन सुखों को भोगते हुए इनका जीवन आनन्द पूर्वक व्यतीत होने लगा, परन्तु जब भामंडल को यह समाचार पहुँचे तब उसका सारा शरीर कांपने लगा । वह ठंडी साँस भरकर कहने लगा—" इस हृदय विदारक घटना ने तो मेरी रही सही आशाओं की एकदम इतिश्री करदी । हा ! अब मैं कहां जाऊं, क्या करूं । वह मेरे मन को हरण करने वाली, मेरे नेत्रों में वास करने वाली जानकी क्या सचमुच राम को मिलगई ? चाहे कुछ हो, प्राण रहें या जाएँ पर मैं सीता को राम के भवन में से निकाल कर लाऊंगा । ऐसा दृढ़ विचार करके भामंडल ने अयोध्या का रास्ता लिया । वह अनेक बन, उपवन, नदी सरोवरों को पार करता हुआ सीता की चाह में जा रहा था, परन्तु दैव ! तू प्रबल है, तेरे आगे पुरुषार्थ सिर झुकाता है । कहां तो भामण्डल सीता को अर्धांगिनी बनाने के लिए जा रहा था और कहां उसे रास्ते मेंही एक शहरके देखतेही जातिस्मरण हो आया और वह तत्काल विचारने लगा । रे आत्मन्, तू क्यों मूढ़ हुआ है, तेरी समझ पर क्या पत्थर पड़े हैं । अरे पापी, जिसकी धुन में तू पागल हुआ बन बन की राख छानता फिरता है, वह तो तेरी मां जाई बहिन है । इस प्रकार भामण्डल अपने को धिक्कारता हुआ लौट आया ।

राजा चन्द्रगति ने यह बात सुनतेही संसार को क्षणभंगुर जानकर त्याग दिया और मुनि महाराज के निकट जाकर दीक्षा लेली। इस सभामें दैव योगसे महाराज दशरथभी पुत्र सहित मौजूद थे। मुनि महराज का उपदेश सुनकर और अपने पूर्वभवों का हाल जानकर सब गले लग लग मिले। सीता भाई को देखतेही प्रेम के आंसू बहाती हुई उसकी छाती से चिपट गई। महाराज जनक और महारानी विदेहा दोनों अपने बिछुरे हुए लाल को पाकर हर्ष के मारे अंग में फूले नहीं समाये।

❀ छठा परिच्छेद ❀

❀ दै ❀ व की महिमा अपरम्पारहै। वह जो कुछ न करे थोड़ा है। सीता जी को अभी सुख चैन से रहते हुए कुछ देर न हुई थी कि एक नवीन घटना उपस्थित हो गई। एक दिन महाराज दशरथ ने संसार से विरक्त होकर जिन दीक्षा लेने का संकल्प किया, उनको देखकर भरत भी जिन दीक्षा के लिए उद्यमी होगया। "हाय पति तो दीक्षा लेतेही हैं, क्या पुत्र भी इस नव यौवन अवस्था में दुर्द्धर तप करेगा? फिर मेरी कौन सुधि लेगा? मैं किस के आश्रय रहूंगी?" ऐसा सोचकर महारानी केकई ने महाराज से प्रार्थना की कि प्राणनाथ! आप को याद होगा, आपने मेरी

युद्धस्थल की चतुराई से प्रसन्न होकर मनचाहा माँगने के लिए वचन दिया था। सो अब कृपा करके उस वचन को पूरा कर दीजियेगा। महाराज दशरथने सहर्ष उत्तर दिया, प्रिये, निश्चय से मैं तुम्हारा ऋणी हूँ, जो चाहो माँगो। केकई ने नीची दृष्टि करके कहा कि राजगद्दी भरत को मिले।

यद्यपि यह वचन न्याय विरुद्ध और लोक विपरीत था कि बड़े पुत्र के होतेहुए राजगद्दी छोटे को मिले, परन्तु राजा दशरथ ने यह विचार करके कि "रघुकुल रीति सदा चलि आई। प्राण जाहिं पर वचन न जाई"। भरतको राज तिलक देना स्वीकार करलिया। रामचन्द्रजी इस समाचार को सुनकर तनिक भी दिलगीर न हुए। उल्टा उन्होंने भरत को समझा बुझाकर राज्यभार संभालने के लिए तैय्यार कर दिया। भरत पहलेसेही भोग विलासों से उदासीन होरहा था। अब तो उसकी उदासीनता की सीमा न रही। वह बार बार अपने को धिक्कारने लगा, परन्तु सबके और विशेषकर रामचन्द्रजी के आग्रह से विवश हो उसे राज्य का कार्य्य लेनाही पड़ा।

श्रीरामचन्द्रजी ने यह ही नहीं किया, किन्तु उन्हों ने यह विचारकर कि यदि मैं यहीं अयोध्या में रहूंगा तो मेरे रहते हुए लोग भरत की आज्ञा का प्रतिपालन न करेंगे, उसका महत्व और ऐश्वर्य जगत् में विस्तरित न होगा।

अयोध्या से बाहर दक्षिण देश को जाने का दृढ़ संकल्प कर-लिया और वे धनुष वाण हाथमें लेकर चलने को उद्यमी हो गए। यह समाचार सुनकर लक्ष्मण दौड़ा हुआ आया और भाई के साथ चलने के लिये तैय्यार होगया। रामचन्द्रजीने हज़ार समझाया पर उसने एक न मानी।

जब पति गमन के हृदय विदारक समाचार जानकी को मिले तब उसकी जो दशा हुई, लेखनी द्वारा उसका प्रगट करना मनुष्य की शक्ति से बाहर है। यह बात आबाल वृद्ध किसी से छिपी नहीं कि संसारमें सच्चरित्रता और पवित्रता में कोई भी स्त्री सीता की समानता नहीं करसकती। उसके शील और पतिव्रत धर्म की देवता तक मुक कंठ से प्रशंसा करते थे। अपने आराध्य देव प्राणनाथ को बन जाते सुन कर वह एकदम अचेत होकर पृथ्वी पर गिरपड़ी। अनेक शीतोपचार करने पर होश में आई और पति के संग चलने के लिए खड़ी होगई।

प्रेम के प्रेरे हुए श्रीरामचन्द्रजी भी वहाँ आ पहुँचे और जानकी को छाती से लगाकर कहने लगे, प्राणप्यारी! पूज्य पिताजी ने भरत को राजगद्दी दी है, अतएव मैं कुछ काल के लिये दक्षिण की ओर जाता हूँ। जब भरत का राज्य यहां निष्कंटक जम जायगा, तब लौट आऊँगा। इतने समय

तक तुम यहाँ सुखपूर्वक माता के पास रहो, कोई चिन्ता न करो, मैं बहुत शीघ्र तुम से आकर मिलूँगा।

सीता–प्राण नाथ आप क्या कहते हैं? मेरी समझ में कुछ नहीं आता। आप जंगल में जायँ और मैं सुखपूर्वक घर पर रहूं। क्या यह सम्भव है? नाथ! सुख शब्द का प्रयोगही पति के संग है। पति के बिना यह रमणीय संसार श्मशान भूमि के समान है। करुणानिधान आपके बिना यह महल मकान मुझे भयंकर वनके समान प्रतीत होते हैं। आपके बिना मेरे लिए सारी पृथ्वी शून्य है। यह कदापि नहीं होसकता कि आप जायँ और मै यहां रहूं। मैं आपके संग चलूंगी। इसमेंही मेरा सौभाग्य है। करुणाकर मुझ पर दया करो।

राम–प्राणवल्लभे! मार्ग बड़ा कठिन है। तुमने कभी घरसे बाहर पैर भी नहीं रक्खा। तुम किस तरह रास्ते के कष्टों को सहन करोगी। ठौर ठौर पर सिंह व्याघ्र मिलेंगे, तुम उन्हें कैसे देख सकोगी? तुमने ग्रीष्म और शीत ऋतु को जाना नहीं, तुम कैसे गर्मी, सर्दी को सहन करोगी। तुम ने कभी रेशमी मखमली फर्श परसे पैर नहीं उतारा, अब तुम किस तरह कठिन कंकर पत्थरों में चलोगी। पग पग पर पैरों में कांटे चुभेंगे, चलते चलते छाले पड़जावेंगे। प्रिये, तुम्हारा यह शरीर इस योग्य नहीं। मेरा कहा मानो

घरपर रहो। दिन जाते देर नहीं लगती। मैं जल्द वापिस आजाऊँगा।

जानकी-प्राण प्यारे, आपके बिना मुझे स्वप्न में भी सुख नहीं। सारे सुख आपके साथ हैं. आप मेरी कोई चिंता न करें। आपके चरणकमल में निवास करते हुए मेरे सारे दुःख सुख में परिणत होजायँगे। मैं रास्ते के कष्टों को सहर्ष सहन कर सकूँगी, पर दयालुनाथ, आपके वियोग के असह्य दुःख को क्षण भर भी सहन नहीं कर सकूंगी। आपके बिना मेरा जीवन व्यर्थ है। नाथ, मुझपर दया करो। मुझे जीवन दान दे अपने साथ ले चलो।

राम-प्रिये, मेरा कहा मानलो, घर पर रहो, इसी में मेरा तुम्हारा दोनों का कल्याण है। अन्यथा मेरी लोक में निन्दा होगी। तुम व्यर्थ कष्ट उठाओगी और तुम्हें कष्ट सहते देखकर मेरा चित सदा व्याकुल रहेगा। यहाँ घर पर सास तुम्हें लाड़ प्यार से रक्खेंगी।

सीता-स्वामिन, मुझे दुःख मत दीजिये। मेरा हृदय फटा आता है। आपके बिना माता, पिता, भगिनी भ्राता, सास, श्वसुर मेरा कोई शरण नहीं। प्राणाधार, मुझे इस संसार में एक आपही शरण हैं। क्या आप मुझे अशरण छोड़कर जायँगे? हृदयेश्वर, क्यों मुझे जीतेजी शोकसागर

में पटकते हो ? मैं सबकुछ सहलूँगी, पर आपका वियोग नहीं सह सकूंगी।

रामचंद्र–प्यारी मैं फिर कहता हूँ। जंगल के कष्ट तुमसे सहे न जाएँगे। पैदल तुमसे चला न जायगा। फल फूल खाने को मिलेंगे। तुम्हारा स्वभाव अति मृदु है। तुम जंगल के निशाचरादिक देखकर भयभीत होजाओगी। हठ को छोड़कर तनिक विचार से काम लो। यहाँ तुमको स्वप्न में भी कष्ट न होगा।

सीता–नाथ! यह सब कुछ सच है। पर मैं इन कष्टों की कुछ भी परवा नहीं करती। जहाँ आप होंगे, वहां मुझे कोई कष्ट न होगा। मैं बार बार हाथ जोड़कर प्रार्थना करती हूं। मुझपर दया करो। दयालु प्रभो आपकी दया जगत् प्रसिद्ध है,। फिर मेरे लिये क्यों कठोर हो रहेहो। क्या मुझ से नेह तोड़ दिया ? क्या आपको मुझसे प्रेम नहीं रहा ?

रामचन्द्रजीने सीताजी को बहुत कुछ समझाया, पर वह पतिव्रता अपने धर्म से एक पग पीछे न हटी। वह जनकनंदिनी जानकी जिसने पिता के घर एक पैर भी खाली भूमि पर न रक्खा था और पतिके घर धूप तक भी नहीं देखी थी, अब पति के साथ बन चलने के लिए खड़ी है। स्वर्ग समान भोग विलासों को जलांजली देने के लिए तैयार है, पर पति का संग नहीं छोड़ती। सुखमें सब कोई साथी हैं,

पर सीता दुख में उपस्थितहै। पतिही उसका रूपहै, पतिही उसका भूषणहै, पतिही उसका धर्म है, पतिही उसका आराध्य देव है, यहां तक कि पतिही उसका सर्वस्व है। पतिके सुख में सुख और दुख में दुख समझना यही सच्चा पतिव्रत धर्म है

अंतमें रामचन्द्रजी ने लाचार होकर संग चलने की आज्ञा देदी। अब तो सीता अंगमें फूली न समाई। दौड़ी हुई अपनी सास के पास आई और उनसे आज्ञा माँगने लगी।

कौशल्या रोने लगी और पुत्रवधू को छाती से लगाकर कहने लगी। हे चन्द्रमुखे! क्या तू भी जाती है ? अब इस अवधपुरी में कौन रहेगा? तुम्हें देखकरही संतोष करती, पर हाय! अब तो जीतेजी मरचुकी। राजदुलारी! तुम्हारा यह सुंदर शरीर जंगल के घोर दुख सहने के योग्य नहीं है। प्राण प्यारी तुम तो यहां रहो। हा दैव! मेरी मृत्यु क्यों नहीं आजाती। मैं इनके वियोग में किस तरह तड़फ तड़फ कर दिन काटूंगी।

सीता—माता इसमें किसी का दोष नहीं, यह हमारे पूर्व अशुभ कर्मों का फल है। आप विषाद न करें। कर्म बलवान् हैं। किसी का टाला टलता नहीं। अब मुझे आशीर्वाद दीजिये, यदि जीवित रही, तो फिर आन मिलूंगी।

यह कहकर सीता रोने लगी।

कौशल्या-लाड़ली क्यों रोती है ? आज का दिन मुझे देखना था। मेरे भाग्य में यही बदा था। तुम सदा पति की सेवा करती रहना। पातिव्रत धर्म को अपना धर्म समझना। संसार में वेही स्त्रियां यश पाती हैं, उन्हीं की जगत् प्रशंसा करता है जो पातिव्रत धर्म का पालन करती हैं। तुम शीघ्र वनसे वापिस आना। मैं एक एक समय कष्ट से बिताऊंगी। हा! अब मेरा घर शून्य होगया।

लक्ष्मण भी चलने को तैयार होगया। सारी अयोध्या में शोक छागया। घर घर में रोना रुहाट मचगया। हाट बाज़ार बंद होगये। राम लक्ष्मण सीता तीनों ने माता पिता तथा कुटुम्बी जनों से आज्ञा लेकर नगर से बाहर प्रस्थान किया। सारे नगर निवासी गला फाड़ फाड़ कर रोने लगे। हज़ारों नरनारी उनके संग चलने लगे। राम मना करते थे, पर लोग न मानते थे। बड़ी कठनाई से बहुत दूर जाकर उन्हें समझा बुझाकर विदा किया।

❀ सातवां परिच्छेद ❀

कड़ी धूप पड़ रही है, ज़ोर से लूयें चल रही हैं, भूमि अग्नि समान तप रही है। मुसाफिरों के पैरों में छाले पड़गये हैं। घड़ियों पानी पीने पर भी प्यास के मारे व्याकुल हो रहे हैं। ऐसी दशा में हमारी पतिव्रता

देवी जानकी असह्य कष्टों को सहती हुई कँकरीले रास्तों में जारही है, परन्तु पति के प्रेमवश उसके मुख कमल पर तनिक भी खेद नहीं। जब कभी शरीर सम्बन्धी अधिक कष्ट होता था, प्राणनाथ की ओर दृष्टि पसारतेही वह सब दुःख भूल जाती थी और उसके चेहरे से पूर्ववत् प्रसन्नता झलकने लगती थी। इसी तरह तीनों धीरे धीरे चलते, रमणीक वनों में विश्राम लेते, जंगल के कन्दमूल फलों को खाते रसभरी बातें करते, मार्ग में असहाय पुरुषों की सहायता करते और अपने बल पराक्रम से उनके कष्ट निवारण करते हुए बहुत दूर निकल गये और नासिक के समीप दण्डक बन में जा पहुँचे।

यहां का जल वायु अति उत्तम है। प्रकृति की छटा अद्भुत है। स्थान स्थान पर पानी के झरने बहरहे हैं। पक्षी गण मीठे स्वर से कल नाद कर रहे हैं। ज्योंही यहां ठहर कर जानकी ने तरह तरहके फलों का मिष्ट स्वादिष्ट भोजन तैयार किया। उसी समय भाग्यवश दो चारण ऋद्धि के धारी मुनि महाराज भी आगये। जानकीने बड़ी भक्तिसे उनको भोजन कराया।

इसही समय एक पक्षी वृक्ष पर से मुनियों के चरणो में आपड़ा। मुनि महाराजों ने उसके पूर्व भवका हाल सुनाकर उसको श्रावक के व्रत धारण कराये और उसे रामचन्द्रजी के पास छोड़कर आप आकाशमार्ग से बिहार करगए।

राम, जानकी इस पक्षी को जटायु कहकर पुकारने लगे। जानकी इसे बहुतही प्यार करने लगी और हर समय इसे अपने पास रखने लगी।

❀ आठवां परिच्छेद ❀

एक दिन लक्ष्मण वन में इधर उधर सैर करता फिर रहाथा। अकस्मात् उसकी दृष्टि 'सूर्य-हास्य' नामक प्रकाशमान खड्गपर पड़ी। उसे लंकाधिपति रावण का भानेज शम्बूक एक बांस के बीड़े में १२ वर्ष से सिद्ध कररहा था। इसे देखतेही लक्ष्मण ने उछलकर खड्ग को लेलिया और परीक्षार्थ उसी बीड़े पर चलादिया जिससे सारा बीड़ा एकही हाथ में साफ होगया और उसके साथही खड्ग के अभिलाषी शम्बूक का शिर भी धड़ से जुदा होकर पृथ्वी पर गिर पड़ा। लक्ष्मण खड्ग को लेकर अपने डेरे पर चला आया। इधर शम्बूक की माता चन्द्र-नखा (सूर्पनखा) जो शम्बूक के लिए भोजन लेकर आई थी, अपने पुत्र का शिर कटा देखकर बेहोश होगई। बहुत देर में सचेत होकर हाहाकार करतीहुई घातक की खोज में इधर उधर जंगल में भटकने लगी। हाय पापी काल! तुझे मेरा ही पुत्र भक्षण करना था। मैंने तेरा क्या बिगाड़ा था? हा मेरे प्यारे लाल! तू अपनी माता को छोड़कर कहां चलागया? कौन दुष्ट तेरे खूनका प्यासा था?

इस प्रकार चन्द्रनखा विलाप करती फिर रही थी कि उसकी दृष्टि राम लच्मण पर पड़गई। इन्हें देखतेही वह तमाम शोक भूलगई और काम के वाण से घायल होगई। अवसर पाकर उसने इन दोनों भाइयों से अपनी मनोकामना पूर्ण करने की प्रार्थना की, परन्तु इन्होंने मौन धारण कर लिया और कोई भी उत्तर न दिया। यह देखकर और अपनी दाल गलती न देखकर चन्द्रनखा बुरा हाल बनाकर रोती पीटती अपने पति खरदूषण के पास गई और कहने लगी कि नाथ, आप के राज्य में एक दुष्ट ने मेरे पुत्र को मारकर खड्ग रत्न ले लिया और उसी पापी ने मुझे बलात्कार पकड़कर मेरे शील को भंग करना चाहा, परन्तु पूर्व पुण्य के उदय से और कुल देवी के प्रसाद से मैं शील बचाकर यहां बचआई।

यह बात सुनतेही अलंकाधिपति खरदूषण क्रोध के मारे लाल ताता होगया। उसने तत्कालही रावण को पत्र लिखा और बहुत बड़ी सेना लेकर राम लच्मण पर चढ़गया।

चारों तरफ से सेना को आती देखकर सीता रामचन्द्रजीसे कहनेलगी—नाथ! देखो यह सेना हमारी ओर आरही है, लच्मण किसी को मारकर खड्ग लेआये हैं, उसके कारण अथवा उस दुष्टा व्यभिचारिणी स्त्री की कृपासे यह उपद्रव हुआ जान पड़ता है।

राम-(धनुष चढ़ाकर) प्यारी डरो मत, कोई चिंता नहीं। सेना आती है, तो आने दो।

लक्ष्मण-(तीर कमान हाथ में लेकर) पूज्य भ्राताजी आप सुखपूर्वक यहां रहें, मैं इन गीदड़ों को अभी भगाआता हूँ। आप सीताजी की रक्षा करें। यदि आवश्यकता हुई, तो मैं आप को सिंहनाद करके बुलालूँगा।

रामचन्द्रजी सीताजी के पास बैठ गए। लक्ष्मण रणभूमि में जाकर बड़ी शूरवीरता से शत्रुका सामना करनेलगा और ऐसी चतुराई से लड़ा कि थोड़ीही देर में शत्रुकी सारी सेना के पैर उखाड़ दिये। अपनी सेना को पीछे हटते देखकर खरदूषण ने रावण को सहायता के लिए बुला भेजा।

❀ नवां परिच्छेद ❀

❀ रा ❀ वण समाचार पातेही खरदूषण की मदद के लिए पुष्पक विमान में बैठकर चल पड़ा। परन्तु अभी रणभूमि में आया भी न था कि रास्ते में सीता के रूप लावण्य को देखकर मुग्ध होगया। यह कोई देवकन्या है, या कामदेव की स्त्री रति है, या शिवकी अर्धांगिनी पार्वती है। ऐसी सुन्दर नवयौवनवती स्त्री तो न कभी हुई, न कभी

होगी। इसके विना मेरा जीवतव्य निरर्थक है। इस तरह वह तरह तरह के ऐसे विचार करने लगा। अब रावण को लोक परलोक की कोई चिन्ता नहीं, पुण्य पाप का विचार नहीं, "युद्ध में जाना है" इसका भी ख्याल नहीं। अब तो एक मात्र सीता उसके मन में बसी है, उसी के प्रेम में वह अंधा होरहा है और उसी के हरण करने का उपाय सोच रहा है।

रावण साधारण पुरुष न था। वह बड़ा ज्ञानी पंडित था। बड़ा पराक्रमी था। तीन खंड का अधिपति, महाशूर वीर तेजस्वी राजा था। परन्तु चित्त की गति विचित्र है। लोक में लोभ समान कोई पाप नहीं और लोभ में भी पर-स्त्री के समान कोई अनर्थ नहीं। परस्त्री के कारण रावण जैसे पंडित की भी बुद्धि बिगड़ गई। उसे एक कर्णपिशाची विद्या सिद्ध थी। उसके बल से उसने यह जान लिया कि लक्ष्मण आपत्ति के समय सिंहनाद करने को कह गया है। अब तो वह फूला अंग में न समाया, उसका काम बन गया। उसने आपही लक्ष्मण के समान सिंहनाद करदिया। रामचन्द्रजी को "राम! राम!" की पुकार सुनाई दी।

इन शब्दों को सुनतेही राम का चित व्याकुल होगया। उन्होंने विचार किया कि भाई पर अवश्य कोई आपत्ति आई है और उसी ने यह शब्द किया है। लाचार प्राणप्यारी

सीता को जटायु पक्षी की रक्षा में छोड़कर आप भाई की मदद के लिये युद्धस्थल में जा पहुँचे।

जिस समय अशुभ कर्मों का उदय आता है, उस समय सारे कुल देवी देवता सो जाते हैं। बैठे बिठाये आपत्ति का पहाड़ सिर पर आपड़ता है। यह आपत्ति कौन कम थी कि राज्य विभूति को छोड़कर, सुख सम्पति को त्यागकर जनक नंदिनी गर्मी सर्दी के कष्टों को सहन करती, भयंकर बनों में पैदल पति के संग फिरती थी। पर हा दैव! तू बड़ा दुष्ट है। तुझे इस कोमलांगी पर तनिक भी दया न आई। एक आपत्ति से निकली नहीं कि इस बेचारी को दूसरी में पटक दिया।

रामचन्द्रजी के जाते ही रावण उस स्थान पर आया, जहां पतिव्रता सीता अपने प्राणनाथ को याद कर रही थी। एक अपरिचित व्यक्ति को अपनी तरफ शीघ्रता से आता देखकर सीता भय से काँपगई और कहने लगी 'तुम कौन हो? क्यों मेरी तरफ बढ़े आरहे हो? ज़रा दूर रहो, परस्त्री के आँचल को मत छुओ'।

रावण-प्यारी! "कहाँ यह बन, जहाँ भालू, बन्दर कहाँ तू सुकुमारी अति सुन्दर।" प्रिये, यह स्थान तुम्हारे योग्य नहीं, यह जंगल सुनसान बियावान है। नाना दुष्ट भयंकर जीव यहाँ विचरते हैं। कोई तुम्हें क्षणमात्र में भक्षण

कर जायगा । चलो, मैं तुम्हें विमान में बिठाकर लंकापुरी ले चलता हूँ, जिसकी बनावट सजावट के सामने इन्द्रपुरी भी शरमाती है । मैं तीन खण्ड का धनी रावण हूँ । मेरे बल पराक्रम को देखकर काल भी भयभीत होता है मेरे यहाँ चलो, वहाँ आनन्दपूर्वक जीवन के अकथनीय सुख भोगना। मुझे आशा है कि लंका देखकर तुम्हें रामचन्द्र का नाम भी याद न आयगा ।

सीता–अरे पापी ! कैसे शब्द मुख से निकालता है । हट, दूर हो । पर स्त्री से एकान्त में बात करनाही पाप है । मुझे तेरे महलों की ज़रूरत नहीं । मेरे लिये वही महल हैं, जहां मेरे प्राणपति श्रीराम विराजते हैं। याद रख जिस लंका की तू इतनी बड़ाई करता है, एक रोज उसमें गीदड़ और कुत्ते रोएँगे ।

वृथा अभिमान करता है अरे मतिमन्द तू वलका ॥ टेक
अकेली जानकर मुझको बचन बोला है तू छलका । अरे हट दूर हो पापी, न पकड़े पल्ला अंचल का ॥

रावण–प्रिये, तुझे मेरे बलका पता नहीं है। मैं कुवेरका सौतीला भाईही हूँ । मेरे डर से देवता तक थर थर कांपते हैं, मनुष्यों की तो बिसात ही क्या है । मेरे सामने तेरा पति तिनके के बराबर भी नहीं । मेरी शक्ति, मेरी विभूति, मेरा

ऐश्वर्य, इन्द्र से भी अधिक है। मेरे मंदोदरी आदि सहस्रों स्त्रियां हैं, मैं सबसे उच्चपद तुमको दूँगा। मेरा बचन मानो, मेरे साथ चलो।

सीता-अरे नीच कुवेर का भाई बनते और पराई स्त्री को चुराते लज्जा नहीं आती। अरे राक्षस इन्द्र की इन्द्रानी सची को चुराकर भलेही कोई जीता बचजाय पर रामकी भार्या को हर कर कोई नहीं बच सकता। बस अधिक मत बोल, मेरे हाथ न लगा। यदि तू अधिक सतायेगा, तो अभी प्राण दे दूँगी। इतना कहकर सीता राम राम पुकार कर रोने लगी।

रावण उसको पकड़कर विमान में बिठाने लगा। बेचारे जटायु ने चोंचें मार मार कर उसे बहुत रोका और उसका वस्त्र भी फाड़ दिया; परन्तु रावण जैसे बलवान् पुरुष के सामने अल्पशक्ति धारी पक्षी क्या कर सकता था? रावण ने जटायु को मारकर गिरा दिया और सीता को बलात्कार विमान में बिठाकर [illegible] ओर चलदिया।

दशवां परिच्छेद

अब सीता के दुख का कोई पार नहीं। वह चिल्ला चिल्ला कर गगन मंडल को फाड़े डालती है। उसके रुदन से जंगल के पशु पक्षी भी स्तम्भित रहजाते हैं।

'हाय राम ! हाय राम !! यही शब्द उसके मुख से बार बार निकलते हैं । हा जगदीश ! मुझपर यह कौनसी विपत्ति आई । मुझ अबला पर यह क्या दुख डाल दिया, मैं किस तरह सहन करूं । प्राणनाथ ! आप कहां हैं ? शूर वीर देवर लक्ष्मण ! तुम्हारी शक्ति कहां गई ? तुम्हारा बल, पराक्रम कहां है ? हा भाई भामंडल ! क्या तू भी इस समय अपनी बहिन की सहायता नहीं कर सकता । कुल देवी ! क्या तू भी रूठगई । भगवन् ! मैंने ऐसा कौन अपराध किया है ?

रावण—हे देवि, मैं तेरी सोहनी सूरत और मनोमोहनी मूरत को देखकर प्रेम वश विह्वल हुआ जाता हूँ । यद्यपि तेरा सुन्दर मुख क्रोध से लाल हो रहाहै, तथापि वह मुझे प्राणों से भी प्यारा मालूम होता है । प्यारी ! जिन नेत्रों ने मुझे घायल किया है, उन से तनिक तो मेरी ओर प्रेम दृष्टि से निहार, जिस से मेरे तड़फते हुए दिल को कुछ तो शांति प्राप्त हो ।

सीता—अरे दुराचारी, नराधम ! तुझे शर्म नहीं आती ? तेरे अन्तःपुर में सहस्रों रूपवती स्त्रियां होते हुए भी विषय वासना के वश तू पर स्त्री को विकार भाव से देखता है, और मुझ अबला के शील भंग करने के लिये उतारू हुआ है ? क्या तुझ जैसे भूपति को ऐसा घोर अन्याय करना उचित है ? याद रख, इसका फल बहुत बुरा होगा ।

रावण-प्यारी ! जो होगा सो हो रहेगा, इसकी कुछ चिंता नहीं। तेरे लिए मैं प्राण तक देने को तैय्यार हूँ।

सीता-धिक्कार है तुझ जैसे राक्षसी नीच पुरुष को। बस, मेरे हाथ न लगा और अधिक बातें न बना। मैं कोई ओछी स्त्री नहीं हूँ जो तेरी चिकनी चुपड़ी बातों में आकर अपने शील को गवाँ दूँ। मैं प्राणों को मुट्ठी में दबाये बैठी हूँ। तूने हाथ चलाया और मैंने उन्हें गँवाया।

अब रावण लंका में पहुँच गया है, और सीता को प्रमद उद्यान में ठहरा कर इस चिन्ता में लगा हुआ है कि किसी उपाय से इसको प्रसन्न करूँ। इसी दशामें पट्टरानी मंदोदरी उसे चिन्तित देखकर उसके पास आई और कहने लगी, नाथ, आप क्यों उदास हो रहे हैं ? क्या खरदूषण की मृत्यु का शोक है ? हम क्षत्री हैं। क्षत्रियों का यही धर्म है। इस के लिए शोक करना व्यर्थ है।

रावण-वल्लभे, इसका तो मुझे कोई शोक नहीं, पर मुझे शोक अपना है। मेरी जान के लाले पड़ रहे हैं। प्रिये! तेरे समान जगत में मेरा कोई मित्र नहीं। मुझे विश्वास है कि तू मेरा जीतेजी साथ देगी। यदि तू मेरा जीवन चाहती है, तो सीता को मुझ पर मोहित कर, नहीं तो अभी प्राण तजे देता हूँ।

मन्दोदरी–नाथ यह सीता का अभाग्य है कि आप जैसे शूरवीर महाराजाधिराज उससे प्रार्थना करें और वह स्वीकार न करे। पर यह क्या आवश्यक है कि वह स्वीकारही करे, यदि समझाने से न माने तो बल को उपयोग में लाइये और अपनी मनोकामना पूर्ण कीजिए।

रावण–प्यारी, यही तो आपत्ति है। नहीं, अबतक क्या था। मैं प्रतिज्ञा करचुका हूँ कि कोई भी परस्त्री जब तक वह स्वयं मुझे न चाहेगी, मैं उससे ज़बरदस्ती कदापि न करूँगा। इससे विवशहूँ। मेरी प्यारी, अब तू ही कोई उपाय कर, जिससे सीता मुझको चाहने लगे।

यह सुनकर मन्दोदरी सीता के पास बग़ीचे में गई? और कहने लगी, हे बहिन, तुम उदास क्यों होरही हो? तुम्हें क्या दुख है? ऐसे सुन्दर रमणीय स्थान में तो प्रसन्न चित्त रहना चाहिए।

सीता–बहिन, पापी रावण मेरा धर्म लेने पर उतारू हुआ है। मैं कोई ऐसा उपाय सोच रही हूँ जिससे उस दुष्ट अन्यायी के हाथ से बचूँ।

मन्दोदरी–अहा, हा! महाराजा रावण और उसके प्रति ये शब्द! प्यारी बहिन, अपनी जिह्वा को रोक। अभी कोई सुन लेगा, तो मेरी तुम्हारी दोनों की आपत्ति आजाय

गी । बहिन, तू क्या कहती है ? धन्य है वह नारी जिसका रावण जैसा सर्व गुण सम्पन्न पति हो । मुझको आश्चर्य है कि तू राम जैसे निर्जन वन के निवासी, निर्धन शक्तिहीन भूमि गोचरी, भिखारी का ख्याल दिलसे न निकालकर तीन खण्ड के अधिपति विद्याधरों के स्वामी, अनेक विद्याओं के पारगामी, पराक्रमी महाराजा रावण के साथ जीवन के सुखों को नहीं भोगती ।

सीता—(नेत्रों में आँसू लाकर) हाय ! हम अभागों का कोई शरण नहीं । आशा थी कि मन्दोदरी जैसी पति-व्रता शीलवती स्त्री कुछ अवश्य सहायता करेगी; परन्तु हा जब अशुभ कर्मों का उदय आता है, बनते काम भी बिगड़ जाते हैं । मित्र शत्रु होजाते हैं । भाई बन्धु बिगाने होजाते हैं बहिन मन्दोदरी, इसका तो मुझे कोई ख्याल नहीं कि तुम रावण की तरफ़दारी और मेरा विरोध करती हो, शोक तो इस बात का है कि तुम जैसी पतिव्रता स्त्री ऐसे घृणित शब्द अपने मुख से निकालती हो । क्या कोई पतिव्रता ऐसा निन्द्य कार्य कर सकती है ? मैं प्रतिज्ञा करचुकी हूँ कि चाहे प्राण जाते रहें, शरीर के टुकड़े टुकड़े उड़जायँ, कितनी ही आपत्तियां सहनी पड़ें, परन्तु पर पुरुषकी ओर कभी देखूँगी भी नहीं और जबतक राम लक्ष्मण की कुशलता का समाचार न सुनलूँगी, अन्न जल का स्पर्श भी न करूँगी । ये बातें हो ही रहीं थीं कि रावण भी वहाँ आगया और कहने लगा—

देवी–मैं कब तक तेरे लिये ठहरूँगा । यदि तू नहीं मानती तो याद रख, तेरे लिये अच्छा न होगा ।

सीता–बस अधिक मत बोल, मुझे यह पसंद नहीं । मैं मरने से नहीं डरती । यदि तू अधिक पांव फैलायगा, तो अभी गला घोट कर मरजाऊँगी ।

भजन ।

अरे रावण तू धमकी दिखावे किसे, मुझे मरने का खौफ़ो ख़तर ही नहीं । मुझे मारेगा क्या अपनी ख़ैर मना, तुझे होनी की अपने ख़बर ही नहीं ॥ अरे० । क्या तू सोने की लंका का मान करे मेरे आगे वह मिट्टी का घर भी नहीं । मेरे मन का सुमेरु हिलेगा नहीं, मेरे मनमें किसी का डर ही नहीं ॥ अरे० ॥ आवें इन्द्र नरेन्द्र जो मिल के सभी क्या मजाल जो शील को मेरे हरें । तेरी हस्ती है क्या सिवा राम पिया, मेरी नज़रों में कोई बशर ही नहीं ॥ अरे० ॥ तेरे घर में हैं कितनी ये रानी बरीं, आया इस पर भी तुझको सबर ही नहीं । पर तिरिया पै तूने जो ध्यान दिया, क्या निगोदो नरक का ख़तर ही नहीं ॥ अरे० ॥ मेरी चाह जो थी तेरे दिलमें बसी, क्यों न जीत स्वयंबर तू लाया यहीं । वह कौन सा देश बतावै मुझे, जहँ पहुँची स्वयम्बर की ख़बरी नहीं ॥ अरे० ॥ जो हुआ सो हुआ अब भी मान कही, मुझे राम

पिया पै पठा दे सही। कहै न्यामत न मानैगा तू जो कही,
तेरे धड़ पर रहैगा शिर ही नहीं॥ अरे०॥ (न्यामतसिंह)

❀ ग्यारहवां परिच्छेद ❀

इधर तो सीता राम के वियोग में तड़फ रही है, रात दिन रोने के सिवाय कोई काम नहीं, खाने पीने का नाम नहीं, उधर राम लक्ष्मण सीता के वियोग में विकल हो रहे हैं। राम ने जिस समय सीता को कुटी में न पाया, उनके होश हवाश जाते रहे, वे पछाड़ खाकर धम से नीचे गिर पड़े और "हाय जानकी, प्राण प्राण की" कहकर रोने लगे। कभी इधर देखते हैं, कभी उधर। यह सोचकर कि कहीं वृक्षों में तो नहीं छिप गई, कहीं जंगल देखने को तो नहीं चली गई, कभी मोह वश अबोल वृक्षों से पूछते हैं। कभी बन के पशु पक्षियों से कहते हैं कि कहीं तुमने तो मेरी सीता नहीं देखी।

चौपाई।

हा गुणखान जानकी सीता। रूप शील व्रत नेम पुनीता॥
हे खग, हे मृग मधुकर श्रेनी। तुम देखी सीता मृगनैनी॥
सुन जानकी तोहि बिन आजू। मोहि न भावै एकहि काजू॥
प्रिया वेग किन प्रगटउ आई। केहि कारण नहिं देत दिखाई॥

(तुलसीदासजी)

इस तरह से विलाप करते हुए जंगल में फिरने लगे। लक्ष्मण ने बहुत कुछ धैर्य्य दिया, परन्तु उनके विथित हृदय को कुछ भी शांति न हुई। प्राण प्यारी के बिछोह का किसे दुख नहीं होता और विशेष कर सीता जैसी पतिव्रता सुशीला स्त्री का हरण तो बज्र पात समान समझना चाहिये।

यद्यपि जानकी को उसकी हठसे साथ में लाये थे, परन्तु अब तो इस निर्जन वन में वह उनके जीवन का अवलम्ब थी। उसे देखकर ही वे सारे कष्टों को भूल जाते थे और घर के समान सुखों का अनुभव करते थे। जानकी के बिना उनका जीवन निरर्थक होगया। खाना पीना सब भूलगये। हाय जानकी, हाय जानकी! के सिवाय और कुछ उनके मुख से न निकलता था। एक एक घड़ी कष्ट से बीतती थी।

कई दिनों के बाद उनका किष्कन्धापुर नरेश सुग्रीव और पवनञ्जयसुत हनुमान आदि से मिलाप हुआ और बहुत कुछ मित्रता होगई। उनसे ज्ञात हुआ कि सीता को लंकाधीश रावण हरकर लेगया है। अब तो कुछ जान में जान आई और लक्ष्मणजी को ढाढस बँधगया। शत्रु का पता लगना ही कठिन था, अब पता लग गया, बस सीता को आई ही समझो। यह सुनकर सुग्रीवादि सब विद्याधर काँपने लगे और कहने लगे, आप ऐसे शब्द क्यों कहते हैं? रावण साधारण पुरुष नहीं है। हम सब उसके आधीन हैं।

हृदय से आपके दास हैं, पर बाहर से रावण के विरुद्ध हमारा साहस नहीं होता।

लक्ष्मण–अरे भाई ! इतने क्यों घबड़ा गये ? क्या रावण कोई देवता है ? जो कायर पर स्त्री को हर कर ले गया, वह मेरे सन्मुख खड़ा भी नहीं रह सकता।

विद्याधर–महाराज ! आप भी क्यों एक स्त्री के लिए इतने विह्वल हो रहे हैं। ऐसा सीता में क्या धरा है जिसके लिए जान बूझ कर मौत का सामना किया जाय। आप की एक ही सीता गई। हम आप को सीता से बढ़ कर सैकड़ों सीता लादेंगे।

रामचन्द्र–भाई, तुम्हें इन बातों से क्या मतलब ? न मुझे सौ चाहिएँ न दोसौ। यदि वे हज़ारों भी हों, तो वे भी सीता के सामने पैर की धूल हैं। चाहे कुछ हो, जान जाय या रहे हम सीता को रावण के यहाँ से लाकर ही छोड़ेंगे। आप हमारा साथ दें या न दें।

बहुत कुछ वाद विवाद के बाद महाराज सुग्रीव ने अपने आधीन राजा पवनंजय के पुत्र वीर हनुमान को सीता जी के समाचार लाने के लिए लंका जाने को कहा। हनुमान आज्ञा पाते ही लंका की ओर रवाना होगया और बहुत जल्द पहुँच कर विभीषण से मिला और कहने लगा, कि कहिए सीता जी का क्या हाल है ?

विभीषण–क्या बतलाऊँ, आज ११ दिन होते हैं उस बेचारी ने अन्न जल आँखों से भी नहीं देखा।

हनुमान–तो फिर आप क्यों उस पतिव्रता के प्राण लिए डालते हैं। रावण को समझा बुझाकर क्यों उसे राम के पास नहीं भिजवा देते।

विभीषण–प्यारे हनुमान, मैं क्या करूं। मैंने सौ बार रावण को समझाया, पर उसने मेरी एक न मानी और साफ़ कह दिया कि जो कोई मुझ से सीता के विषय में कहेगा, मैं उस से शत्रुवत् व्यवहार करूँगा। अब बतलाओ क्या कहूँ, और क्या करूँ ?

❀ बारहवां परिच्छेद ❀

अब हनुमान विभीषण से वार्तालाप करके प्रमद उद्यान में पहुँचा जहाँ सती सीता पति के वियोग में मलिन मुख बैठी थी। यद्यपि यह बन अनेक शोभाओं से मंडित था और साक्षात् नन्दन वन जान पड़ता था, परन्तु महादेवी को यह जंगल ब्याबान मालूम होता था। उसके नेत्र आँसुओं से भर रहे थे। सिर के केश बिखर रहे थे। उस की यह दशा देखकर हनुमान का हृदय भरआया। उसने दृढ़ संकल्प कर लिया कि चाहे कुछ हो इस पति

परायण्या सती को इस दुःख रूपी समुद्र से अवश्य निकालूँगा, इसका राम से मिलाप कराऊँगा।

हनुमान ने धीरे से आगे बढ़कर गुप्त रूप से श्रीराम की अंगूठी सीता के चरणकमलों में डाल दी। मुद्रिका देखतेही सीता का मुख कमल हर्ष से कुछ प्रफुल्लित होगया। पास में जो स्त्री बैठी थी, उसने उसी समय जाकर प्रसन्नता के समाचार रावण को कह सुनाये। रावण ने विचार किया कि शायद सीता की कुछ समझ में आगया है। अब मेरे कार्य की अवश्य सिद्धि होगी। उसने तत्काल ही मन्दोदरी को सारे अन्तःपुर सहित सीता के पास भेजा।

मन्दोदरी–हे बाले, आज तू प्रसन्न चित है। तूने हम पर बड़ी कृपा की। अब तू लोक के स्वामी रावण को अंगीकार कर।

सीता–हे खेचरी, आज मुझे मेरे पति का कुशल समाचार मिला है। वे आनन्द में हैं, इसीलिये मुझे हर्ष हुआहै। मन्दोदरी ने समझा कि इसने ११ दिन से कुछ खाया पीया नहीं है, इस कारण इसे वातरोग होगया और यद्वा तद्वा बकती है। तब जानकी मुद्रिका लाने वाले से कहने लगी कि भाई, मैं समुद के भीतर इस द्वीप के अगम्य वन में पड़ी हूँ। जो कोई उत्तम जीव मेरे प्राणनाथ की यह मुद्रिका लाया हो, वह प्रगट होकर साक्षात् दर्शन दे। तब हनुमान

ने आगे बढ़कर हाथ जोड़ कर प्रणाम किया, अपना पूरा पूरा परिचय दिया और फिर श्रीराम का संदेशा सुनाकर विनय पूर्वक निवेदन किया कि हे सती शिरोमणि बहिन, श्रीराम स्वर्ग के समान रमणीय स्थान में विराजमान हैं, परन्तु तुम्हारे बिना उन्हें वहाँ ज़रा भी विश्राम नहीं मिलता। सारे भोगोपभोगों को तज कर मौन धारे तुम्हारा ध्यान कर रहे हैं। सदा तुम्हारा कथन करते हैं, और केवल तुम्हारे लिए ही प्राणों को धारण कर रहे हैं।

यह सुनकर सीता को अत्यन्त दुःख हुआ। वह आँखों में आँसू भर कर कहने लगी भाई, मैं दुःख सागर में पड़ी हूँ, तुम से प्राणनाथ के समाचार सुनकर बहुत कुछ ढाढस बँध गया है, तुम बड़े उपकारी हो, मैं तुम्हें जन्म जन्मान्तरों में न भूलूँगी, पर भाई मेरे मन में अनेक विकल्प उठते हैं, तुम ने मेरे नाथ को कहाँ देखा। तुम्हारा उनसे कैसे परिचय हुआ। कदाचित् मेरे पति परलोकवासी होगये हों, अथवा सन्यासी होगये हों और तुम्हें यह मुद्रिका मिल गई हो, कृपा करके सारा हाल सुनाओ जिससे मुझे विश्वास होजाय।

इसके उत्तर में हनुमान ने राम लक्ष्मण का सारा वृत्तान्त आद्योपान्त कह सुनाया जिससे सीता को पूर्ण विश्वास होगया कि यह श्रीरामचन्द्रजी का ही दूत है। यह देखकर मन्दोदरी ने हनुमान से कहा--बड़े आश्चर्य की बात है कि

तू महाराज रावण का सम्बन्धी है, तो भी भूमगोचरियों का दूत बनकर आया है। क्या तुझे अपने स्वामी का कुछ भी विचार न आया ?

हनुमान-इसका तो आश्चर्य करती हो, पर तुम तो कहो कि राजा मयकी पुत्री और रावण की पट्टरानी, होकर भी यहाँ दूती बनकर क्यों आई हो। जिस पति के प्रसाद से तुमने देवाँगनाओं के समान सुख भोगे, शोक कि उसे अकार्य में स्वयं लगाती हो और ऐसे कार्य्य की अनुमोदना करती हो। तुम तो सब बातों में प्रवीणा, परम बुद्धिमती थीं, पर न जाने क्यों तुम्हारी मती मारी गई कि देखते भालते अपने हाथों अपने लिए गढ़ा खोदती हो। तुम अर्ध-चक्री की महिषी पट्टरानी हो, पुर अब मैं तुम में इस पद की ज़रा भी योग्यता नहीं देखता।

हनुमान के वचन सुनकर मन्दोदरी क्रोध से लाल तातीं होकर कहने लगी-अरे हनुमान, तेरा वाचालपना निरर्थक है। निर्लज्ज सुग्रीवादिक अपने स्वामी रावण को छोड़कर भूमिगोचरियों के सेवक बने हैं, जान पड़ता है कि इनकी मृत्यु निकट आई है। इनके समान मूढ़ और कृतघ्नी और कौन होगा। सीता से मन्दोदरी के ये वचन सहन न हो सके। उसने तत्काल उत्तर दिया, अरी मंदबुद्धि मन्दोदरी, तू मेरे पति को नहीं जानती, इसीलिए इतना अभिमान

करती है। अरी किसी से पूछ तो सही, कि मेरे राम कितने बली और पराक्रमी हैं। क्या किसी की सामर्थ्य है कि उनके सन्मुख आसके ? क्या कोई नर इस भूमि पर उपजा है, जो बल और विद्या में उनका सामना करसके। क्या तूने कभी मेरे शूरवीर देवर लक्ष्मण का नाम नहीं सुना, जिसके दर्शन से देवता तक कम्पित होजाते हैं, मनुष्यों और विद्याधरों की तो बातही क्या है। अधिक क्या कहूँ, मेरे पति अपने भाई लक्ष्मण सहित समुद्र तिरकर शीघ्र ही यहाँ आते हैं और तेरे पति को मारकर तुझे विधवा बनाते हैं।

इन शब्दों को सुनकर रावण की सब रानियाँ सीताजी को मारने के लिए दौड़ीं, पर हनुमान ने बीच में आकर सब को रोक दिया। तब वे सब मानभंग के कारण उदास होकर रावण के पास गईं। इधर हनुमान ने सीताजी से आहार के लिए प्रार्थना की और थोड़ा बहुत खिलाकर कहने लगे, बहिन, तुम मेरे कन्धे पर बैठ जाओ, मैं तुम्हें श्रीराम के पास ले चलूँ। पर आज्ञा कारिणी सीताजीने उत्तर दिया कि भाई मैं इस तरह नहीं जाती। कदाचित् प्राणनाथ यह कहने लगें कि तू बिना बुलाये क्यों आई ? तुम जाकर उन से सब हाल कहना और उनको धीरज बँधाना, तब जैसी उनकी आज्ञा होगी। मैं उनकी आज्ञा के बिना एक पग भी आगे पीछे नहीं रक्खूंगी।

मन्दोदरी ने रावण से जाकर कहा कि महाराज, पवनंजय का पुत्र हनुमान राम का दूत बनकर आया है और उसने ही सीता को बहका रक्खा है। रावण ने तुरन्त नारद को हुक्म दिया कि जाओ, हनुमान को शीघ्र पकड़ लाओ। नारद ने किसी तरह से हनुमान को पकड़ कर रावणके सामने उपस्थित कर दिया। रावण तथा उसके समस्त कार्यकर्ता मंत्रीगण हनुमान को धिक्कारने लगे, कि अरे दुष्ट पापी, तू बड़ा कृतघ्नी है। जिस स्वामी की पृथ्वी में तूने प्रभुता प्राप्त की, उसके प्रतिकूल होकर तू भूमगोचरियों का दूत बना। तू पवन का पुत्र नहीं, किसी और का है। केशरी सिंह स्याल का कभी आश्रय नहीं लेता। तू राजद्वार का द्वेषी है। तुझे अवश्य मार डालना चाहिए।

हनुमान इन शब्दों को सुनकर हँसकर कहने लगा कि कौन जाने किसकी मृत्यु निकट आई है। तेरे सहस्रों स्त्रियाँ होते हुए भी तुझे संतोष न हुआ। तूने पापी, परस्त्री पर दृष्टि डाली। रावण तू रत्नस्रवा राजा के कुलक्षय पुत्र हुआ। तुझ से राक्षस वंश का क्षय होजायगा। तेरे वंश में बड़े बड़े मर्यादा के पालक राजा हुए, पर न जाने तू कहाँ से दुष्ट, कुलनाशक, वंशविध्वंसक हुआ, ऐसे वचन कहकर फुर्ती से अपने बन्धन छुड़ाकर सब के देखते देखते ऊपर को उड़ गया और शीघ्रही श्रीराम और सुग्रीव के पास पहुँच कर उसने सीता का सारा हाल कह सुनाया।

❀ तेरहवां परिच्छेद ❀

सर्व सम्मति से यही निश्चय हुआ कि लंका को शीघ्र ही प्रस्थान करदेना चाहिए। रावण जैसे पापी दुष्टात्मा को अवश्य दण्ड देना उचित है। भामंडल को भी बुलालिया और सुग्रीवादिक अनेक राजा महाराजा शूरवीर योद्धा श्रीराम लक्ष्मण के साथ लंका को रवाना हुए। मार्ग में अनेक राजाओं को परास्त करते हुए और अभिमानियों का मान गलित करते हुए लंका में जा पहुँचे। लक्ष्मण को आया देखकर रावण को विभीषण ने बहुत कुछ समझाया और सीताजी वापिस देने के लिए शक्ति भर कहा, परन्तु उसने एक न सुनी और क्रोधित होकर लंका से निकल जाने का हुक्म दे दिया। विभीषण उसी समय अपनी सेना सहित राम से आ मिला और इनका जी जानसे भक्त हो गया। रामचन्द्रजी भी विभीषण को पाकर बड़े प्रसन्न हुए और अब उनको पूर्ण विश्वास हो गया कि मैं अवश्य लंका को जीतूँगा।

रणभेरी बजते ही दोनों ओर की सेना सज धज कर रणभूमि में विधिपूर्वक खड़ी होगई और इशारा होते ही बाणों की वर्षा होने लगी। दोनों पक्ष के सुभट अपना अपना बल दिखलाने लगे। इधर लक्ष्मण, विभीषण उधर रावण, कुम्भकर्ण अपने अपने गुण दिखलाने लगे। दोनों

दल में घोर संग्राम होने लगा। श्रीराम ने कुंभकर्ण को घेर लिया और नागफाँस से बाँध लिया। उधर इन्द्रजीत को लक्ष्मण ने पकड़ लिया। रावण कोई तीर विभीषण पर छोड़ने को ही था कि उसने लक्ष्मण को तीर ताने सामने खड़ा देख लिया और इस ज़ोर से अपने शक्तिवान को लक्ष्मण पर चलाया कि उसके लगते ही लक्ष्मण मूर्च्छा खाकर गिरपड़ा।

भाई को गिरा देखकर रामचन्द्र के होश हवाश जाते रहे और साहस टूटगया। वे उस दिन युद्ध को बंद करके लक्ष्मण का सिर गोद में रखकर धाड़ मार मार कर रोने लगे। हाय! लक्ष्मण हाय! भाई तू बोलता क्यों नहीं? तुझे यह कैसी निद्रा आई? तूने अब तक तो साथ दिया, अब अंत समय क्यों रुठ गया? भैया! उठ, आंखें खोल, देख तो, मैं कैसा तड़प रहा हूँ। मुझे अकेला यहाँ क्यों छोड़ दिया? भैया! अकेली तो लकड़ी भी नहीं जलती। तेरी मांने तुझे धरोहर रूप सौंपा था, अब मैं उसे जाकर क्या मुख दिखाऊँगा? भैया! देर न कर, उठ खड़ा हो, मैं क्षण भर भी तेरा वियोग नहीं सहन कर सकता। सीता बिछुड़ी तो क्या तू भी बिछुड़ गया? इस प्रकार श्रीराम विलाप करने लगे और हा लक्ष्मण! हा लक्ष्मण! कहकर रोने लगे।

सीताजी को भी ये समाचार मिलगये । पहिले से ही उसकी दशा बुरी थी, अब तो उसपर साक्षात् एक आपत्ति का पहाड़ ही टूट पड़ा । हाय लक्ष्मण ! क्या तुम जैसा शूर वीर बलवान् आजकी घड़ी के लिए ही पैदा हुआ था ? प्यारे देवर, क्या तुमने मुझ पापिनी के लिये अपने प्राणों तक को अर्पण कर दिया ?

सारी सेना में कोलाहल मचगया । सबके नेत्रों से टप टप आँसू गिरने लगे ।

कुछ देर के बाद शुभ कर्मोदय से एक आदमी आता हुआ दिखलाई दिया । उसने हनुमान को देखतेही कहा कि तुम अयोध्या जाकर द्रोणमेघ की पुत्री विशल्या के स्नान का जल ले आओ । हनुमान तत्कालही अयोध्या को रवाना होगया और वहाँ से विशल्या को ही ले आया । उसके स्नान के जल के छींटे देने से लक्ष्मण खड़े होगये और होश में आकर शत्रु से लड़ने के लिए तैयार होगये ।

❀ चौदहवां परिच्छेद ❀

लक्ष्मण के अच्छे होजाने का संवाद रावण को भी मालूम होगया । उसने और कोई उपाय न देख-कर बहुरूपिनी विद्या को सिद्ध किया और युद्धमें जानेसे पहले वह एक बार फिर सीता के पास गया और बड़े प्रेमसे कहने

लगा, हे देवी, यदि अब भी तुम को राम की अभिलाषा है तो उसे मन से निकाल दो। अब उसका पूर्ण होना असंभव है। मेरे साथ आनन्दपूर्वक जीवन के भोग भोगो और मेरी उभरती हुई इच्छाओं को पूर्ण करो। मैंने तुम्हारे प्रेम में अपने भाई बन्धुओं और मित्रों से भी नेह तोड़ दिया।

सीता-हे दशानन, यदि श्रीराम तेरे हाथ से मारेही जाँय तो मारने से पहले कृपया इतना उनसे अवश्य कह-देना कि शोक ! तुम्हारी प्यारी सीता अन्त समय में तुम्हारा दर्शन न करसकी। अब तक तुम्हारे कारण प्राण टिके थे, पर अब तुम्हारे दर्शनों की पिपासा और वियोग के दुःख को अपने कोमल हृदय पर लिये हुए वह भी प्राण न्योछावर कर देगी। अब रावण को निश्चय होगया कि सीता मुझे कदापि नहीं चाहेगी। शोक !!! संसार में कलंक का टीका मेरे माथे पर लग गया और मेरा कार्य भी न हुआ। हा ! मैंने अपने कुल को कलंकित किया, पूर्वजों की मर्यादा को भंग किया, भाई बन्धुओं को हाथ से खो दिया, मित्रों को शत्रु बना लिया, सहस्रों शूर वीरों का घात करा दिया, तो भी सीता ने मेरी ओर पलक भी उठाकर नहीं देखा। नि-स्सन्देह सीता साध्वी और पतिव्रता देवी है। धिक्कार मुझ को ! जो मैंने ऐसी पतिव्रता देवी के शील भंग करने का विचार किया। न मुझे यह विचार होता, न यह युद्ध होता

और न अपनी पराई जानों का स्वाहा होता, परन्तु अब क्या होता है। पीछे भी नहीं हटा जाता। क्या करूँ क्या न करूँ। इधर खाई उधर कुआ। अस्तु, जो होगा सो हो रहेगा। ऐसा विचार कर मंदोदरी से अन्तिम भेंट करने के लिए गया और कहने लगा, आज न जाने युद्ध से बचकर आऊँ या न आऊँ, अतएव यह अन्तिम भेंट है। जीता रहा, तो फिर आ मिलूँगा।

मन्दोदरी से विदा होकर अस्त्र शस्त्र धारण करके रावण ने रणभूमि में प्रवेश किया और बड़ी शूर वीरता से युद्ध किया, परन्तु लक्ष्मण के चक्र से कहाँ बचसकता था। तत्काल बेहोश होकर भूमि पर गिर पड़ा और क्षणमात्र में परलोक-वासी होगया। रावण की मृत्यु से विभीषण को अत्यन्त शोक हुआ। सारे रणवास में प्रलय का दृश्य दिखलाई देने लगा। चारों ओर रोने चिल्लाने के शब्द सुनाई देने लगे। श्रीराम ने भक्त विभीषण को धैर्य दिया और तमाम रानियों को संसार की असारता दिखलाकर शांत किया। कुंभकरण, मेघनाद इन्द्रजीतादि रामचन्द्र के बंदीगृह से मुक्त होकर संसार को क्षणभंगुर जानकर, भोग विलासों को त्यागकर राजविभूति को लात मारकर दीक्षित होगये।

अब श्रीराम शीघ्र वहाँ पहुँचे, जहाँ उनकी प्यारी अर्धांगिनी रावण की कैद में पड़ी हुई उनके दर्शनों की अभिलाषा

में जीवन के श्वास पूरे कर रही थी। देखतेही दोनो के नेत्रों से अश्रु जल की अविरल धारा बहने लगी। सीता राम की छाती से चिपट गई और कहने लगी, हे नाथ, प्राणाधार धन्य आपको, आपने दर्शन देकर मुझे प्राणदान दिया। स्वामिन् मैं तो निराश हो गई थी और प्राणों को अर्पण करने के लिए तैयार बैठी थी। धन्य मेरा भाग्य, जो मुझे आपके दर्शन होगये। नाथ, मैंने पूर्व भव में अवश्यही कोई घोर पाप किया था जिसका यह फल भोगरही हूँ। आपके कहने को न मानकर मैं हठ कर के जंगल में आई। मेरे कारण आपको कितने कष्ट हुए! महाराज, कहाँ अयोध्या और कहाँ यह समुद्र पार लंका। इस तरह बहुत देर तक दोनों वार्तालाप करते रहे। दोनों एक दूसरे से मिलकर अपार आनंदित हुए। अनेक वनोपवनों की शोभा देखते हुए भगवान के मंदिर में पहुँचे। बड़े भक्ति भाव से दोनों ने दर्शन पूजन किया। तदनन्तर विभीषण को राज देकर उन्होंने अयोध्या को प्रस्थान किया।

❀ पन्द्रहवां परिच्छेद ❀

उनके अयोध्या पहुँचने पर बड़ा आनंद मनाया गया। घर घर में उत्सव होने लगे। बाजे बजने लगे। यों तो सारी अयोध्या, और रनवास को अथाह आनंद हुआ, किन्तु कौशल्या और सुमित्रा जो १४

वर्ष से आशा लगाये मार्ग देख रही थीं, अपने प्यारे आँखों के तारे पुत्रों और पुत्रवधू को देखकर हर्ष में फूलीं न समाईं। वे बार बार सीता को गले से लगाती थीं। उसका मुख चूमती थीं और सहस्रों मोहरें उस पर न्योछावर करती थीं।

महाराज भरत ने प्रतिज्ञानुसार दीक्षा लेली और श्रीराम गद्दीपर बैठकर अकंटकराज्य करने लगे। उनके सुशासनके प्रताप से सारा कौशल राज्य सुख और धन से परिपूर्ण होगया।

कुछ दिन कुशल पूर्वक वीतने पर सीताजी के गर्भ चिह्न प्रगट हुए और उनको दो शुभ स्वप्न दिखलाई दिए। यह देखकर रामचन्द्रजी और रामजननी कौशल्या को बड़ा आनंद हुआ। सारा राज्य भवन उत्साह से पूर्ण होगया। सब कोई आशा पूर्ण नेत्रों से सीता की ओर देखने लगे, परन्तु हाय, समय तू किसी को फलाफूला नहीं देख सकता जब यह हर्ष समाचार सर्व साधारण को ज्ञात हुए तो शत्रुओं और द्वेषियों को अपने मनके फफोले फोड़ने का अवसर मिलगया। उन्होंने सीताजी की पवित्रता में कलंक लगाकर संदेह प्रगट किया और प्रत्येक के हृदय में यह अंकित कर दिया कि यह कदापि सम्भव नहीं कि सीता जैसी रूपवती स्त्री रावण से बची हो। अतएव कुछ लोग मिलकर श्रीराम के पास गये और भयसे कांपते हुए कहने लगे, महाराज, हम आपके राज्य में पूर्ण रूप से सुखी हैं। ऐसा राज्य

किसी ने भी आजतक अयोध्या में नहीं किया; पर शरणागत पालक, आपके राज्य में व्यभिचार दिनों दिन बढ़ता जाता है। जो चाहे जिसकी यौवन सम्पन्न स्त्री को बलात्कार हर लेता है। धर्म कर्म की कोई मर्यादा नहीं। सब कोई कहते हैं कि जब हमारे राजा ही महारानी सीता को ले आये, जो बहुत दिनों तक रावण के घर में रही और सम्भव नहीं कि उससे अछूती बची हो, तो फिर हमको क्या भय है। प्रजा राजा की अनुयायी होती है। "यथा राजा तथा प्रजा" अतएव महाराज कोई ऐसा उपाय करो जिससे धर्म कर्म की रक्षा हो। प्रजा का हित हो। आप लोक में बड़े राजा हैं। यदि आप प्रजा की रक्षा न करेंगे तो फिर कौन करेगा। हे देव, आप मर्यादा के प्रवर्तक पुरुषोत्तम हो। यही अपवाद यदि आप के राज्य में न होता, तो आपका राज्य इन्द्र से भी बढ़कर होता।

लोगों के मुख से सीताजी को कलंकित करनेवाले शब्द सुनकर महाराज रामचन्द्र के हृदय पर इतनी गहरी वेदना हुई कि उसका वर्णन नहीं हो सकता। उन्होंने बड़ी कठिनाई से आप को सँभाला। वे आँखों में आँसू भरे हुए कहने लगे कि हा, कैसी भयंकर हृदय विदारक सर्व नाश की बात सुनी है। इसकी अपेक्षा मेरी छाती पर वज्रपात क्यों न आ पड़ा। हा, मेरा यश रूपी कमलों का वन अपयश रूपी अग्नि से जलने लगा। जिस सीता के निमित्त मैंने

विरह का कष्ट सहा, जिस के लिए मैंने समुद्र तिरकर रण संग्राम में रावण जैसे रिपु को जीता, क्या वही जानकी अब मेरे कुल रूपी चन्द्रमा को मलिन कर रही है ? क्या यह सम्भव है ? कदापि नहीं, सीता निष्कलंक और पवित्र है। इसमें मुझे तनिक भी सन्देह नहीं। पर क्या करूँ, कुछ समझ में नहीं आता। इस लोकापवाद को सुना अनसुना करूँ अथवा निरपराधिनी साध्वी सती सीता को परित्याग करूँ ? भगवन् मैंने कौन अशुभ कर्म किये थे, जिनका यह विषफल मुझे भोगना पड़ रहा है। एक आपत्ति से निकलता नहीं कि दूसरी में फँसजाता हूँ। मेरी तरह कभी कोई संकट में न पड़ा होगा।

इस तरह परिताप करके श्रीराम नीची दृष्टि किये सोचने लगे। फिर लम्बी साँस भर कर कहने लगे, मैं इन्हीं पाप-कर्म्मों के लिये उत्पन्न हुआ था। मुझ जैसा पातकी नराधम इस लोक में कौन होगा कि जानते बूझते भी सीता जैसी प्रियभाषणी, निरापराधनी, शुद्धाचारिणी देवी को परित्याग करने के लिये उतारू हुआ हूँ। धिक ! राज्य विभूति और राज्यपद ! जिनके कारण मैं पाषाण हृदय होकर सती सीता को कूप में डालने के लिए तैयार होता हूँ। हे वसुन्धरे ! मैं तुझ में क्यों नहीं समा जाता। हे वज्रपटल ! तुम मुझपर गिर कर क्यों मेरे टुकड़े टुकड़े नहीं कर डालते। हा !!! सीता तू मेरे साथ कुछ भी सुख न भोग सकी। तूने विष

वृक्ष का चन्दन तरु समझ कर आश्रय लिया था। अब मैं तुझ से इस जन्म के लिए बिदा होता हूँ। प्यारी, तेरा, रक्षक पोषक श्रीजिनेन्द्र भगवान के सिवाय और कोई नहीं। संसार में स्त्री का रक्षक पति होता है, पर देवी तेरा पति तेरा शत्रु होगया, उसका हृदय पाषाण का होगया। उस की आशा छोड़कर एक मात्र जिनेन्द्र देव का स्मरण कर। इस प्रकार मन ही मन विलाप करके रामचन्द्रजी ने लक्ष्मण जी को बुलाया और कहा हे वत्स लक्ष्मण ! सीता इतने दिन रावण के घर रही और फिर मैंने उसे ग्रहण कर लिया, इस बात की लोक में निन्दा है, अतएव मैंने दृढ़ प्रतिज्ञा करली है कि जानकी का परित्याग करूँगा। सब तरह से प्रजा रंजन करना राजा का परम धर्म है। मैं अपने चिर पवित्र त्रैलोक्य पूज्य उज्ज्वल वंश को इस लोकापवाद से कलंकित न करूंगा। आशा है कि तुम भी मेरे इस कार्य में सहायक होजाओगे।

लक्ष्मण–भाई साहब आप क्या करते हैं। क्या किसी का साहस होसकता है कि जो सती सीता के विषय में ऐसे शब्द मुख से निकाल सके ? मैं अभी गुप्त रीति से जाँच करता हूँ और उस दुष्ट की अभी जिह्वा निकाल लाताहूँ। शोक और आश्चर्य है कि आपको भी मूर्ख लोगों के कहने पर विश्वास आगया।

चढ़ते समय अनेक अपशकुन हुए, परन्तु जिन भक्ति में अनुरागिनी सीता निश्चिन्त चित्त चली गई।

अनेक चैत्यालयों के दर्शन करने के पश्चात् अब सेनापति गंगा को पार करके सिंहनाद अटवी में पहुँचा। वहाँ पहुँचते ही सेनापति ने रथ को थाम दिया और रोने लगा। उसके मुखसे एक शब्द भी न निकल सका। उसकी यह दशा देखकर सीता कुछ देर तक योंही कर्तव्य विमूढ़ सी हो रहीं। फिर कातर होकर कहने लगीं-" भाई, तू इतना व्याकुल क्यों होरहा है ? मैं इस समय तुझको बहुत घबराया हुआ देखती हूँ। शीघ्र कहो, क्या बात है? मेरा हृदय फटा जाता है। आर्य पुत्र का तो कुछ अमंगल नहीं हुआ। शीघ्र कहो, बिलम्ब न करो, मेरे प्राण निकले जाते हैं, इन्हें बचाओ।

सीताजी को इस प्रकार व्याकुल देखकर सेनापति ने लाचार जैसे तैसे चित्तको कुछकड़ा करके बड़ी कठिनतासे कहा माता ! क्या कहूँ कहते मेरी छाती फटती है। आप इतने दिन रावण के घर रहीं, इस कारण नगर निवासी लोग आपके विषय में संदेह कर रहे हैं। उन्हीं के वचनों को सुनकर श्रीरामचन्द्रजी ने दया स्नेह और ममता को छोड़कर अकीर्ति के भय से आपको परित्याग किया है। लक्ष्मणजी ने बहुत कुछ समझाया, पर उन्होंने अपनी हठ न छोड़ी। हे स्वामिनि अब तुम को एक मात्र धर्म ही शरण है। संसार मे कोई किसी का नहीं"।

यह वज्रपात के समान शब्द सुनते ही सीता मूर्च्छा खा-कर ज़मीन पर गिर पड़ी। थोड़ी देर में सचेत होकर गद्‌गद वाणीसे कहने लगी, हे सेनापति एक तरफ़ की बात गुड़से भी मीठी होती है। यदि राम दोनों तरफ से परीक्षा करके कोई आज्ञा देते तो न्याय होजाता, परन्तु उनकी इच्छा, वे प्रसन्न रहें, मुझे उनकी आज्ञा शिरोधार्य है और इसी में मेरा सौभाग्य है।

सेनापति—माता, मैं निरापराधी हूँ, मुझे क्षमा करो, मैं पराधीन किंकर हूँ। इस पराधीनता को धिक्कार है। मुझे आज्ञा दीजिये।

सीता—हाँ तुम जाओ, प्रसन्न रहो, परन्तु श्रीराम से यह अवश्य कह देना कि "मेरे त्याग का कोई विषाद न करना परम धैर्य्य का अवलम्बन कर सदा प्रजा की रक्षा करना, परन्तु यह स्मरण रखना कि दुष्ट जन संसार में किसी की बढ़ती को देखकर प्रसन्न नहीं होते, मेरी निन्दा यदि की तो आपने मुझे त्याग दिया। अच्छा किया, पर यदि वे आपके धर्म की निन्दा करने लगें, तो धर्म को मेरे समान बिन परीक्षा किये न त्याग देना। हे नाथ, मेरे अपराधों को क्षमा करना। सदा धर्म में तल्लीन रहना। जगत दुर्निवार है, जगत का मुख बन्द करने को कौन समर्थ है? जिस के मुख में जो आवे सो कहे। इस लिए

जगत की बात सुनकर योग्य अयोग्य जो हो सो कीजिए गा। दान से जनों को प्रसन्न रखना, विमल स्वभाव से मित्रों को वश करना, चतुर्विधि संघ की सेवा करना, मन, वचन, काय से शुभ कर्म उपार्जन करना, क्रोध को क्षमा से, मान को निर्गर्वता से; माया को निष्कपटता से, लोभ को संतोष से जीतना। आप स्वयं शास्त्रों में प्रवीण हो, मैं क्या कहूँ, मैं केवल क्षमा की प्रार्थी हूँ। हे नाथ! क्षमा करो।"

यह कह कर सीता तृण पाषाण युक्त भूमि में अचेत हो कर गिरपड़ी। कृतान्त वक्र उन्हें निर्जनवन में अकेली पड़ी छोड़कर अयोध्या की ओर चल दिया। सीता उसके जाने के बहुत देर बाद मूर्च्छा से सचेत होकर यूथ त्यक्त मृगी की नाईं विलाप करने लगी। उसके रुदन के शब्दों को सुन कर वन के पशु पक्षी भी स्तम्भित हो रहे। हाय, कमल-नयन, राम, नरोत्तम मेरी रक्षा करो। मुझ से वचनालाप करो। आप महा गुणवन्त शान्ति चित्त हो। आपका लेश मात्र भी दोष नहीं। आप तो पुरुषोत्तम हो। यह मेरे पूर्वोपार्जित कर्मों का फल है। मैंने पूर्व जन्म में अवश्य किसी का वियोग किया है, अथवा कोई घोर पाप किया है; उसी का यह फल भोग रही हूँ। हाय, मैं महाराजा जनक की पुत्री, बलभद्र की पट्टरानी, स्वर्ग समान महलों की निवासिनी, हज़ारों सहेली मेरी सेवा करने वाली अब पाप के उदय से इस दुःख सागर में कैसे रहूँ। रत्नों के मन्दिर में

अति रमणीय वस्त्रों से सुशोभित सुन्दर सेज पर शयन करने वाली, अब इस वन में अकेली कैसे रहूँगी। मैं मनोहर वीणा बांसुरी, मृदंगादिक के मधुर शब्द निरन्तर सुना करती थी, अब इस भयंकर शब्दों से प्रतिध्वनित वन में अकेली कैसे रहूँगी। मैं रामदेव की पट्टरानी अपयश रूपी दावानल से जलती हुई इस भयावने वन में कँकरीली पृथ्वी पर कैसे शयन करूँगी। ऐसी अवस्था में यदि मेरे प्राण न जायँ, तो समझना चाहिए कि ये प्राण ही वज्र के हैं। क्या करूं, कहाँ जाऊँ, किस से क्या कहूँ। किसका आश्रय लूँ; हाय! गुण समुद्र राम, मुझे क्यों छोड़ दी। हाय, महाभक्त लक्ष्मण मेरी सहायता क्यों न की। हाय, पिता जनक! हाय माता विदेहा!! यह क्या हुआ। मुझे पैदा होतेही क्यों न मार-डाली। हाय, विद्याधरों के स्वामी भामंडल, मैं इस दुःख में कैसे रहूँ। तुमने भी मेरी सहायता न की। हाय वसुन्धरे! तू क्यों फटकर अपने में मुझे समा नहीं लेती। हा काल तू कहाँ सोगया, मुझे भक्षण क्यों नहीं कर जाता। यह कहते कहते सीता जी के नेत्रों से अविरल अश्रु जल धारा बह निकली।

❀ सत्रहवां परिच्छेद ❀

दैवयोग से इसी समय पुण्डरीक पुर का आधिपति राजा वज्रजंघ जो हाथी पकड़ने के निमित्त

उस वन में आया था सीताजी के रुदन को सुनकर उसके पास आया और कहने लगा हे बहिन, तू कौन है ? इस निर्जन वन में किस पाषाण हृदय मनुष्य ने तुझे अकेली छोड़ी है। हे पुण्य रूपिणी, अपनी इस अवस्था का कारण बतला, शोक को त्याग कर, धैर्य धारण कर। मुझ से भय भीत मत हो। मैं पुण्डरीक पुर का राजा वज्रजंघ हूँ। तब सीता ने कठिनाई से शोक को दबाकर अपनी सारी कथा कह सुनाई। इसे सुनकर वज्रजंघ का हृदय करुणा से भीग गया। उसने सीता को बहुत धैर्य दिया और उसे अपनी धर्म बहिन बनाकर पालकी में बिठाकर बड़े आदर सत्कार से पुण्डरीक पुर लेगया। राज परिवार की समस्त स्त्रियों ने सीताजी का यथेष्ट स्वागत किया। वज्रजंघ तथा उसकी समस्त रानियाँ सीताजी की निष्कपट हृदय से सेवा करने लगीं और उस से भगिनी के समान प्रेम करने लगीं।

अब वह दिन भी आगया कि नवाँ महीना पूर्ण हुआ और श्रावण शुक्ला पूर्णिमा के दिन श्रवण नक्षत्र में पुत्र युगल का जन्म हुआ। पुत्रों के जन्म से पुण्डरीकपुरी ने स्वर्गपुरी का रूप धारण कर लिया। सकल प्रजा अति हर्षित हुई मानो नगरी नाच उठी। तरह तरह के बाजे बजने लगे और चारों ओर से " चिरंजीव, चिरंजीव जय जय " शब्द सुनाई देने लगे। एक का नाम अनंग लवण और दूसरे का

मदनांकुश रक्खा गया। ये दोनों दोयज के चन्द्रमा के समान दिनों दिन बढ़ने लगे और अपने मीठे मीठे तोतले शब्दों से माता के मन को मोहित करने लगे। माता इन को देखकर अपना सारा दुःख भूल गई। बालक बड़े हुए और विद्या पढ़ने के योग्य हुए। दैव योग से एक बड़े ज्ञानवान् क्षुल्लक वहाँ आगये। उन्होंने कुमारों को होनहार जानकर थोड़े ही दिनों में उन्हें ज्ञान विज्ञान में निपुण कर दिया। दोनों भाई चन्द्र सूर्य के समान अपने बल और विद्या के प्रताप से सारे जगत में प्रसिद्ध होगये। संसार में किसी की भी सामर्थ्य न थी, जो इनके सामने आसके। जिस किसी ने ज़रा भी सिर उठाया कि उन्होंने तुरन्त उसे मारकर यमलोक का रास्ता दिखलाया। इनके बल पराक्रम के प्रभाव से राजा वज्रजंघ शान्ति पूर्वक निष्कंटक राज्य करने लगे।

एक दिन दोनों कुमार वन क्रीड़ा करते फिर रहे थे कि नारदजी दिखलाई दिये। कुमारों ने नारदजीको मस्तक झुका कर प्रणाम किया। नारद जीने प्रसन्न होकर आशीर्वाद दिया कि तुम दोनों भाई राम लक्ष्मण की तरह फलो फूलो। कुमारों ने पूछा—"महाराज! राम लक्ष्मण कौन हैं? कहाँ रहते हैं? क्या उनकी राज्य विभूति हम से ज्यादह है? नारदजी ने आदि से लेकर सीताजी के त्याग पर्यंत का सारा हाल कुमारों को कह सुनाया।

अंकुश—निस्सन्देह राम लक्ष्मण बड़े पराक्रमी बलधारी

है, पर उन्होंने मिथ्या लोकापवाद के कारण सीताको त्याग दिया, यह अच्छा न किया।

लवण–महाराज यहां से अयोध्या कितनी दूर है ?

नारद–यहां से ६४० कोस उत्तर की ओर है। क्यों किस लिये पूछते हो ?

लवण–हम राम लक्ष्मण के साथ लड़ेंगे और देखेंगे कि उनका बल वीर्य कितना है।

कुमारों ने घर आकर राजा वज्रजंघ से कहा कि मामा जी, हम अयोध्या पर चढ़ेंगे। आप शीघ्र युद्ध की तैयारी कीजिए। यह सुनतेही सीता रुदन करने लगी और नारद जी से कहने लगी महाराज ! आज यह क्या स्वांग रचाया है। क्यों बैठे बिठाये बाप बेटों में बजवा दी ? मैं दुखिया बहुत दिनों के शोक को ज्यों त्यों दाबे बैठी थी। न कुछ तुम्हारा बिगड़ेगा न इन बाप बेटों का। आपत्ति मुझ अबला पर आई; इधर कुवाँ उधर खाई। अब किसी तरह इस विरोध को रोको।

नारदजी ने कहा–बहिन, मैं ने तो कुछ नहीं किया। इन्होंने मुझे प्रणाम किया। मैंने इन्हें आशिष दी कि तुम राम लक्ष्मण से हो, इन्होंने राम लक्ष्मण का वृत्तान्त पूछा, मैंने आदि से अंत तक सारा हाल कह सुनाया। अस्तु, तुम कोई चिन्ता न करो, अच्छा ही होगा।

लवण अंकुश माता को दुखी सुनकर उसके पास आये और कहने लगे—माता ! तुम किस लिये उदास हो । शीघ्र कहो । हम जैसे शूरवीरों की माता को कायर न होना चाहिए । आपको तो हर्ष मनाना चाहिये कि आपके सपूत आज इस योग्य हुए कि शत्रुओं का मान गलित करके उन का शिर नीचा करें ।

सीता—बेटा, तुम्हारी वीरता का मुझे अभिमान है; परन्तु प्रेम भी तो दोनों ओर का है । युद्ध में किसी को हानि पहुँचे इसी का मुझे भय है । तुम से प्यारे मुझे राम लक्ष्मण और उनसे प्यारे तुम हो । बस यही उदासी का कारण है ।

कुमार—(आश्चर्य से) माता, वे हम से प्यारे कैसे हैं ?

सीता—श्रीराम तुम्हारे पिता और लक्ष्मण तुम्हारे चाचा हैं । वे दोनों तुम्हारे पूज्य गुरुजन हैं । अतएव मैं तुम से अधिक उनको समझती हूँ । मुझे तुम्हारा इतना ख्याल नहीं जितना उनका है । वे भी बड़े शूरवीर बलवान् हैं । इस युद्ध में किसी न किसी का अवश्य पराजय होगा । मुझ अभागनी के भाग्य में शोक ही बदा है । मेरा कहा मानो, तो जाकर पिता को प्रणाम करो । यही नीति का मार्ग है ।

कुमार- माता, ये कैसे हो सकता है ? हम दीनता के

वचन कैसे कहें ? हम तुम्हारे पुत्र हैं । हम रणांगन में जाकर अवश्य तुम्हारा बदला लेंगे । ' उन्होंने तुम को तजा ' यह हमसे सहन नहीं होसकता ।

माता चुप होगई, परन्तु मन में अति खेद खिन्न होती रहीं । कुमार सज धज कर और एक बड़ी सेना लेकर अयोध्या पर चढ़ गये और वहाँ पहुँच कर उन्होंने जंगल में डेरे डाल दिये ।

❀ अठारहवां परिच्छेद ❀

राम लक्ष्मण भी किसी शत्रु को अपने राज्य पर चढ़ आया देखकर एक बड़ी भारी सेना लेकर प्रातःकाल रणभूमि में आ डटे । रणभेरी बजते ही दोनों दलों में घोर संग्राम होने लगा, बाणो की वर्षा होने लगी, पैदल पैदलों से घुड़सवार घुड़सवारों से और हाथीसवार हाथी सवारों से भिड़ गये । परन्तु न उनके बाण उन पर काम करते और न उनके बाण उनपर चलते थे । दोनों दल अटल खड़े रहे, जिसे देखकर सब को बड़ा आश्चर्य होरहा था । महारानी सीताजी भी आकाश में विमान में बैठी यह तमाशा देख रही थीं ।

इतने में नारद मुनि आते दिखलाई दिये । उन्हें देखते ही लक्ष्मणजी ने प्रणाम करके कहा, महाराज ! आजतक मेरा बार कभी खाली नहीं गया । आँख मीच कर भी जहाँ तीर

फेंका, जिगर को पार करता हुआ निकल गया, पर न जानें आज क्या होनहार है। सब के सब वार खाली जा रहे हैं।

नारद–लक्ष्मण, इस में आश्चर्य क्या है। तुम जानते हो, ये कौन हैं? ये दोनों सती सीता के पुत्र हैं। जिस समय रामचन्द्रजी ने निरपराधिनी सीताजी को घरसे निकाला था, ये ही दोनों सुत गर्भ में थे। प्रकृति के नियमानुसार न तुम्हारा तीर इन पर चल सकता है और न इनका तुम पर। यह सुनते ही राम लक्ष्मण ने हाथ से हथियार डाल दिये और सीता का स्मरण कर के रोने लगे। फिर बड़ी शीघ्रता से पुत्रों के सन्मुख आये। अपने पूज्य पिता और काका जी को अपनी ओर आते देख कर दोनों भाई रथ से उतर पड़े और हाथ जोड़ कर रामचन्द्रजी के चरणों में गिर पड़े। रामचन्द्रजी ने अति स्नेह प्रेम से उन्हें उठाकर छाती से लगा लिया और अपने को धिक्कारने लगे। हाय, मैंने तुम्हारी महा गुणवती, व्रतवती पतिव्रता माता को निरापराध बन में तज कर महा अनर्थ किया। धिक्कार मुझ को. मैंने तुम जैसे वीर पुत्रों को घोर कष्ट दिया। पश्चात् दोनों भाइयों ने लक्ष्मणजी को प्रणाम किया और उन्होंने अनेक आशीर्वाद दिये।

यह दृश्य देखकर सीताजी को आकाश में असीम आनंद हुआ और वे तत्काल ही पुण्डरीकपुर लौट गईं। भामंडल, सुग्रीव, विभीषण आदि अनेक राजा, महाराजाओं, मित्रों सम्बन्धियों और नगर निवासियों को लव अंकुश से मिल-

कर अत्यन्त हर्ष हुआ। बड़े समारोह और गाजे बाजे के साथ उनका अयोध्या में प्रवेश हुआ।

एक दिन हनुमान, सुग्रीव आदि सब ने मिलकर रामचंद्रजी से विनयपूर्वक निवेदन किया कि महाराज अब सती सीताजी को बुला लेना चाहिए। रामचन्द्रजी ने कहा कि भाई मुझे उस के शील में तनिक भी संदेह नहीं है, पर मैंने उसे लोकापवाद के भय से निकाली थी, अब कैसे बुलाऊँ। कोई उपाय ऐसा करो कि जिससे समस्त विश्वमंडल को उस के शील और पातिव्रत धर्म की श्रद्धा होजाय। सुग्रीवादि ने पुण्डरीकपुरी में जाकर सीता को सारा वृत्तान्त सुनाया! सीताजी की आँखों में आँसू भर आये और वे रोकर अपनी निंदा करने लगीं। हे वत्स सुग्रीव, मेरे अंग दुर्जनों के वचन रूप दावानल से दग्ध हो रहे हैं। ये क्षीर सागर के जल से सींचने से भी शीतल न होंगे। तब वे कहने लगे, हे देवि भगवति, सौम्ये, उत्तम, अब शोक को तजो और धैर्य धरो। इस पृथ्वी में किसकी सामर्थ्य है जो अब आपके विरुद्ध जिह्वा निकाल सके। हे पतिव्रते! रामचन्द्रजी ने तुम्हारे लिए यह पुष्पक विमान भेजा है। अयोध्या तुम्हारे बिना शून्य होरही है। हे पंडिते, तुम को अवश्य पति का वचन मानना होगा। यह सुनकर सीताजी ने उनकी बातों को स्वीकार किया और पुष्पक विमान में चढ़ कर संध्या समय अयोध्या नगरी के महेन्द्र नामक उद्यान में जा ठहरीं।

❀ उन्नीसवां परिच्छेद ❀

अगले दिन सवेरा होते ही निष्पाप हृदय राम की रमा सती सीता राम की सभा में आई। सारी सभा ने सीता जी को देखकर विनय संयुक्त वंदना की और सब के मुख से "माता सदा जयवंत हो, नादो, विरधो, फूलो फलो, धन्य यह रूप, धन्य यह धैर्य, धन्य यह सत्य, धन्य यह ज्योति, धन्य यह वीरता, धन्य यह गम्भीरता, धन्य यह निर्मलता," आदि शब्द निकलने लगे जय जयकार से सारा सभा मंडप गूँज उठा।

सीताजी अपने स्थान पर बैठ गईं। रामचन्द्रजी ने उन की ओर दृष्टि करके कहा—हे देवि ! धन्य है तुमको, तुम निष्कलंक और पवित्र हो, मैंने लोकापवाद के भय से तुम को तजी थी, अब तुम कोई ऐसा उपाय करो जिससे तुम्हारे अखंड शील का सर्व साधारण को विश्वास होजाय। सीता जी ने कहा, प्राणनाथ ! आपने केवल दूसरों के भय से मुझे त्यागा, यह अच्छा नहीं किया। मेरे मन में जिन चैत्यालयों के दर्शन की वांछा हुई थी, सो आपने यात्रा का नाम लेकर विषम वन में छुड़ादी। यदि आपके जी में तजने ही की थी, तो मुझे आर्यिकाओं के समीप तजी होती। अब जो आज्ञा करो, सो ही प्रमाण है। आप कहें महा विष कालकूट को पीऊँ, अग्नि की ज्वाला में प्रवेश करूँ अथवा जो आप

आज्ञा करो सो करूँ। राम ने क्षणिक विचार कर कहा कि अग्निकुण्ड में प्रवेश करो। सीता नें मस्तक नमाकर स्वीकार किया। तब तीन सौ हाथ चौकोर वापिका खोदी गई, जिस में कालागुरु अगर चन्दन भरा गया और अग्नि से जाज्वल्यमान की गई। चारो ओर ज्वाला फैलगई। दशों दिशायें स्वर्णमय होगई। यह दृश्य बड़ा ही विषम था। सब के हृदय थर थर काँप रहे थे। स्वयं राम अति व्याकुल हो रहे थे। असंख्य नरनारी देख देख कर रो रहे थे। इतने में ही सीताजी उठीं और अत्यन्त निश्चल चित्त हो कायोत्सर्ग धार हृदय में ऋषभादि तीर्थंकर देवों को विराजमान कर, पंचपरमेष्ठी को स्मरण कर, बीसवें तीर्थंकर हरिवंश तिलक मुनि सुव्रतनाथ स्वामी का ध्यान कर सर्व जीवों में समता भाव धारण कर गम्भीर स्वर से बोलीं; —

"मनसि वचसिकाये जागरे स्वप्नमार्गे,
मम यदि पतिभावो राघवादन्यपुंसः।
तदिह दह शरीरं पावके मामकेदम्
सुकृत विकृत नीतंर्देवसाक्षी त्वमेव"

अर्थात् हे उपस्थित महानुभावो! यदि मैंने रामचन्द्रजी को छोड़ कर अन्य पुरुष की मन वचन काय से स्वप्न में भी कामना की हो, तो यह मेरा शरीर इस प्रचंड अग्नि में भस्म होजाय और यदि मैं सती, पतिव्रता, अणुव्रत धारणी श्राविका हूँ, तो हे भगवन् मेरी रक्षा कीजियो। ऐसी प्रतिज्ञा

कर नमोकार मंत्र का उच्चारण करती हुई सती सीता उस प्रचंड दहकते हुए अग्निकुंड में निशंक कूद पड़ी। उसके कूदते ही इधर तो दर्शकों के होश हवाश उड़ गये, राम लक्ष्मण मूर्च्छित होकर पृथ्वी पर गिर पड़े, भामण्डल सुग्रीवादि सब ही हा हा कार करके रोने लगे। उधर उस सती के अखण्ड शील के प्रभाव से वह अग्निकुंड स्फटिक मणि समान निर्मल जल वापिका होगई। जल में कमल फूल गये, कमलों पर भ्रमर गुंजार करने लगे, अग्नि का कहीं चिह्न भी न रहा, सारा कुंड जल मय होगया। जन साधारण को सती सीता के शील का माहात्म्य दिखलाने के लिए देव ने विक्रिया से उस वापिका का प्रवाह इतना बढ़ा दिया कि दर्शकों के डूबने में कुछ भी सन्देह न रहा। सब चिल्लाने लगे और कहने लगे, हे देवि, हे लक्ष्मि, हे सरस्वती, हे कल्याण रूपिणी, हे धर्मधुरन्धरे, हमारी रक्षा करो, हे माता दया करो, बचाओ बचाओ, प्रसन्न हो। जब सब लोगों को सीताजी के अखण्ड शील का परिचय हो गया, तब रक्षक देव ने जलकी बढ़ती हुई बाढ़ को रोका। तब सबको शान्ति हुई। देवों ने वापिका के मध्य भाग में सहस्र दल का एक कमल बनाया और कमल की मध्य कर्णिका पर सिंहासन निर्माण कर उस पर सीताजी को बैठाया और सिंहासन के ऊपर मणि खचित मंडप बनाया। ऊपर से देवों ने प्रसन्न होकर आकाश मार्ग से रत्न पुष्पादि

की वर्षा की। लव अंकुश अपनी माता को देवों द्वारा सम्मानित देखकर अति प्रसन्न हुए और उसके दोनों ओर जाकर खड़े होगये। रामचन्द्रजी भी ऐसे मुग्ध हुए कि उसके पास जाकर अपने दोषों की क्षमा माँगने लगे। हे प्रिये! मेरे अपराध क्षमा करो. मैंने लोकापवाद के कारण तुम को तजकर महा अनर्थ किया। आओ, अब एक बार फिर उसी प्रेम बन्धन से बँधकर सांसारिक सुखों का रस पान करें। परन्तु जानकी संसार का मार्ग निःसन्देह भली भाँति जान चुकी थी। उसने प्रत्येक अवस्था का अनुभव कर लिया था। उसने उत्तर दिया, स्वामिन् आपका कोई दोष नहीं और न लोगों का ही दोष है। दोष केवल मेरे अशुभ कर्मों का है। इन्होंने ही मुझे इस चतुर्गति रूप संसार में अरहट के समान अनादि काल से घुमा रक्खा है। मैंने आपके साथ बहुत काल तक स्वर्ग समान सुख भोगे। अब यह इच्छा है कि जिन दीक्षा धारण करूं, जिसमें भ्रान्ति का अभाव हो। मैंने संसार का समस्त सार देख लिया सिवाय दुःख के सुख का लेश भी नहीं है। सुख केवल मोक्ष में है और वह मोक्ष कर्मों के क्षय से प्राप्त होता है। अतएव उन कर्मों के नाश करने के लिए ध्यानरूपी शस्त्र को धारण करती हूँ। यह कहकर सीताजी ने अपने सिर के केश उखाड़ कर रामचन्द्रजी के सामने फेंक दिये और देव परिवार के साथ जिनेन्द्र भगवान के दर्शन करके पृथिवीमती आर्जिका से जिन दीक्षा लेली॥

॥ प्रद्युम्नचरित ॥

विश्वविख्यात महाराज श्रीकृष्णजी का नाम कौन नहीं जानता। उन्हीं के प्रिय पुत्र (प्रद्युम्न कुमार) का यह संक्षिप्त चरित्र है। इसमें प्रद्युम्न कुमार के आश्चर्यजनक वीरता के कार्यों का बड़ी सुन्दरता से वर्णन किया गया है। इसके पढ़ने से पुण्य पाप का फल अच्छी तरह मालूम हो जाता है और ईर्षा द्वेष का मुँह काला हो जाता है। [illegible] कथा भाग बड़ाही रोचक है। [illegible] जिसके पढ़ने से महान पुण्य होता है। इसमें [illegible] है। मूल्य [illegible]

पता—मूलचन्द जैन, सद्ग्रन्थप्रकाशक कार्यालय
बड़ा बाजार सागर (सी. पी.)

* हमारे यहां सब प्रकार के शुद्ध छपे हुए जैन ग्रन्थ मिल सकते हैं।

'जैनतत्त्वप्रकाशक' के इसी अंकका क्रोडपत्र ।

वन्देजिनवरम्

श्रीमान् पं० अर्जुनलालजी सेठी

बी. ए. का

जीवनचरित ।

(जैनहितैषीसे उद्धृत)

जिसको

चन्द्रसेन जैनवैद्य मंत्री जैनतत्त्वप्रकाशिनी

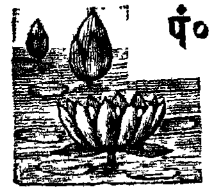
सभा इटावाने छपाकर प्रकाशित किया ।

बिनामूल्य वितरण

Printed by Chintaman Sakharam Deole at the Bombay
Vaibhav Press, Servants of India Society's Home,
Sandhurst Road, Girgaon, Bombay.
Published by Chandrasen Jain Vaidya, Etawah.

वन्दे जिनवरम् ।

श्रीयुक्त पं० अर्जुनलालजी सेठी बी. ए. का संक्षिप्त जीवन-चरित ।



पं० अर्जुनलालजीका जन्म जयपुर नगरमें सन् १८८० में हुआ था । आपके पिताका नाम लाला जवाहरलालजी सेठी था । महाराजा जयपुरने उन्हें ठाकुर गोविन्दसिंह जागीरदारका अभिभावक और शिक्षक नियत किया था; अन्ततक वे यही काम करते रहे ।

अर्जुनलालजीने सन् १९०२ में जयपुर कालेजसे प्रयाग विश्व-विद्यालयकी बी, ए. की डिग्री प्राप्त की । कालेजमें पढ़ते समय ये प्राइवेट तौरसे जैनधर्मके ग्रन्थोंका भी अध्ययन किया करते थे और इस कार्यमें इन्हें पं० चिम्मनलालजी जैनवैद्यसे बहुत सहायता मिलती थी । संस्कृतका ज्ञान भी इन्हें इन्हींसे प्राप्त हुआ था ।

विद्यार्थी अवस्थामें ही सेठीजीको देशसेवा और समाजसुधारके कामोंसे बहुत प्रेम था । अपने देशकी, धर्मकी और समाजकी गिरी हुई अवस्था पर तो इन्हें बड़ा ही दुःख होता था । इस विषय-में वे निरन्तर ही विचार किया करते थे । सारी अवनतियोंका कारण उन्हें शिक्षाका अभाव ही जान पड़ता था । उन्हें विश्वास हो गया था कि यदि देशमें शिक्षाका प्रचार होगा—निरक्षरों और अज्ञा-नियोंकी संख्या घट जायगी तो देशकी प्रगति होनेमें ज़रा भी विलम्ब न लगेगा । पर वे यह जानते थे कि यह कार्य केवल

सरकारकी सहायतासे नहीं हो सकता; इसके लिए देशवासियोंको स्वयं प्रयत्न करना चाहिए। विशेष करके शिक्षितोंका ध्यान इस ओर जाना चाहिए। शिक्षाप्राप्तिका फल केवल धन कमाना या औरों पर हुकूमत करना नहीं है। जिस शिक्षासे मनुष्य केवल अपना ही स्वार्थसाधन करता है उसे शिक्षा कहना 'शिक्षा' का अपमान करना है। शिक्षितोंको स्वार्थत्याग करना चाहिए और अपने भाई-योंको शिक्षित बनानेमें अपनी सारी शक्तियाँ लगा देना चाहिए।

सरकारी स्कूलोंकी शिक्षाके विषयमें उन्हें यह धारणा हो गई थी कि उनमें आचरणके सुधारनेकी ओर ध्यान नहीं दिया जाता, नैतिक बलको उत्तेजन नहीं दिया जाता, देखने और विचारनेकी शक्तिका गला घोट दिया जाता है और विद्यार्थी केवल पुस्तकोंके दास बन जाते हैं। धर्म जो मनुष्यत्वका भूषण है उसकी ओरसे तो वे बहुत ही विरक्त हो जाते हैं। इसलिए सरकारी शिक्षापद्धतिका अनुकरण न करके हमें अपना शिक्षाक्रम बनाना चाहिए और उसके अनुसार शिक्षा देनेवाली स्वतंत्र संस्थायें हमारे देशवासियोंको स्थापित करना चाहिए।

ऐसी शिक्षासंस्थायें यदि जुदा जुदा जातियों या समाजोंकी ओरसे स्थापित की जायँगी तो वे अच्छा काम कर सकेंगी, उनकी ओर जुदा जुदा जातियोंका विशेष प्रेम होगा और वे उनकी उन्नतिमें तनमन-धनसे सहायता करेंगी। कमसे कम देशकी वर्तमान अवस्थामें तो वे इस प्रकारके जुदा जुदा प्रयत्नोंको बहुत लाभकारी समझने लगे।

कालेज छोड़ने पर तो सेठीजीके मस्तकमें ये बातें रातदिन

चक्कर लगाने लगीं । उनका चित्त निरन्तर व्याकुल रहने लगा । अपने आगामी जीवनको कर्तव्यपरायण बनानेके लिए वे प्रतिदिन नई नई मानसिक स्कीमें गढ़ने लगे ।

उनकी स्वार्थवासनायें बहुत ही दुर्बल थीं, इस लिए वे नहीं चाहते थे कि शिक्षाकी प्राप्तिके लिए मैंने जो अश्रान्त परिश्रम किया है और शरीरको अतिशय क्षीण कर डाला है, उसका बदला मैं केवल धन कमाकर और भोगसामग्रियाँ प्राप्त करके लूँ। उनके हृदयपट पर जो बड़े बड़े स्वार्थत्यागी महात्माओंके चरित लिखे हुए थे वे उन्हें परोपकारके मार्गका यात्री बनानेके लिए ही प्रेरणा करते थे। यद्यपि नौकरीसे उन्हें बहुत ही घृणा थी; परन्तु अपने पिताके द्वारा बहुत मजबूर किये जाने पर और पिताकी आज्ञाका उल्लंघन करना अच्छा न समझकर उन्हें लाचार होकर नौकरीके लिए राजी होना पड़ा । पहले वे जयपुरमहाराजकी कौंसिलमें 'एप्रेंटिस' नियत हुए । इसके बाद उन्हें रेजीडेंसीमें काम मिला और इस कामको उन्होंने दो महीने तक किया । इसी समय इनके पिताका देहान्त हो गया और तब ये उन्हीं जागीरदारके—जिनके यहाँ इनके पिता नियुक्त थे—प्राइवेट सेक्रेटरी नियुक्त हो गये ।

इस पदको प्राप्त हुए थोड़ा ही समय व्यतीत हुआ था कि सेठीजीको मथुराके जैन महाविद्यालयकी उन्नतिका आन्दोलन सुन पड़ा । उनके हृदयकी तलीमें जो शिक्षाप्रचारके भाव जमे हुए थे और जो विचार उन्हें निरन्तर ही चिन्तित बनाये रखते थे अब उनका रोकना कठिन हो गया । इस बीचमें उन्हें जैनधर्म और जैनसमाजकी दुरवस्थाका

भी बहुत कुछ परिचय हो गया था और इस कारण वे यह चाहने लगे थे कि मैं अपने कार्यका क्षेत्र जैनसमाजको ही बनाऊँ । इस अवसरको हाथसे जाने देना उन्होंने उचित नहीं समझा और सन् १९०९ में अपनी नौकरीसे स्तीफा दे दिया । इस समय ठाकुरसाहबने उन्हें बहुत समझाया—आग्रह भी किया, पर वह सब निष्फल हुआ ।

अब सेठीजीने जैनधर्म और जैनसमाजकी सेवाके लिए अपना जीवन अर्पण कर दिया । धन कमा करके भोगविलासके साधन इकट्ठा करनेकी—राजकीय प्रतिष्ठा प्राप्त करनेकी और उठती जवानीकी अन्यान्य सारी वासनाओंको संकुचित करके उन्होंने समाजसेवाकी दीक्षा ले ली और यह उस समय जब कि जैनसमाजमें इस तरहके स्वार्थत्यागकी न तो चर्चा ही थी और न प्रतिष्ठा । अपने भाइ-योंकी भलाईके लिए दिनरात अश्रान्त परिश्रमके सिवाय इस स्वार्थ-त्यागका और कोई ऐहिक फल पानेकी उस समय आशा न थी । इस मार्गमें अनेक विघ्न उपस्थित हुए; परन्तु सेठीजीने उनकी जरा भी परवा न की । सुनते हैं कि अपनी धुनमें उन्होंने अपनी पैतृक सम्पत्ति तकको तुच्छ समझा और अपना हक छोड़कर उसे अपने भाईको ही सौंप दिया । सेठीजीके इस स्वार्थत्यागका महत्त्व वे लोग समझ सकेंगे जिन्होंने सब तरहकी योग्यतायें प्राप्त करके अभी अभी आशामय संसारमें पैर बढ़ाया है और कभी एकान्तमें बैठकर अपनी असीम आशाओंको मर्यादित करनेका थोड़ासा भी प्रयत्न किया है ।

सेठीजी नौकरी छोड़कर जैनमहाविद्यालयके डेप्यूटेशनमें आकार शामिल हुए। इस डेप्यूटेशनमें साहु जुगमन्दरदासजी, लाला बद्रीदासजी, बाबू शीतलप्रसादजी आदि अनेक सज्जन थे। सेठीजीकी अनेक शहरोंमें अच्छी जोरदार अपीलें हुई और उनका फल भी अच्छा हुआ। लगभग १९ हजार रुपये विद्यालय फण्डको मिल गये।

इसके बाद सेठीजी जैनमहाविद्यालय मथुराके आनरेरी अध्यक्ष नियत हुए। जब विद्यालय सहारणपुर चला गया, तब वहाँ भी वे गये। लगभग एक वर्ष तक उन्होंने विद्यालयकी सच्चे हृदयसे सेवा की। उस समय जैनमहासभाके कार्यकर्ताओंमें मतभेद बहुत बढ़ गया था। समाचारपत्रोंमें एक दूसरेके विरुद्ध लेख प्रकाशित हो रहे थे। इससे तथा और भी कई कारणोंसे सेठीजी विद्यालयसे अलग हो गये और १९०६ में अपने घर जयपुर लौट गये।

अब उनकी इच्छा एक स्वतंत्र संस्था स्थापित करनेकी हुई और थोड़े ही दिनोंमे उन्होंने अपने कई मित्रोंकी सहायतासे 'जैनशिक्षा-प्रचारक समिति' नामकी संस्था खोल दी। इस संस्थाकी उन्होंने आश्चर्यजनक उन्नति की और कुछ समयके बाद उसे Jain Educational Society of India के रूपमें परिवर्तित कर दिया। समिति जिस प्रणालीसे काम करती थी और जो काम कर रही थी इसका जिन लोगोंको परिचय है वे ही जानते हैं कि सेठीजी किस श्रेणीके मनुष्य हैं और जैनसमाजके लिए उन जैसे पुरुषोंकी कितनी अधिक अवश्यकता है। पाठक यह जानकर आश्चर्य करेंगे कि

जैनशिक्षाप्रचारक समितिने अपने पिछले वर्षोंमें प्रतिवर्ष १२०००) बारह हजार रुपयेके हिसाबसे खर्च किया है ! इतनी बड़ी रकम कहाँसे आती थी ? न सेठीजीके पास कोई स्थायी फण्ड था और न उनका कोई धनी सहायक था। यदि कुछ था तो असाधारण साहस, दृढ प्रतिज्ञा और अश्रान्त परिश्रम करनेकी शक्ति। जैन-समाजका कोई मेला, कोई जल्सा कोई उत्सव और कोई प्रतिष्ठा ऐसी न होती थी जिसमें सेठीजी न जाते हों और कुछ न कुछ चन्दा एकत्र करके न लाते हों। इस कार्यके लिए एक एक पैसा माँगनेमें भी उन्हें संकोच न होता था। उनकी अपील बड़ी जोरदार होती थी। श्रोताओंके कड़ेसे कड़े हृदय भी उनकी हृदय-द्रावक वाणीसे पिघल जाते थे। उनके कई मित्र भी उन्हीं जैसे थे। वे जयपुर शहरमेंसे चन्दा वसूल करते थे। कई सज्जनोंने तो यह प्रतिज्ञा ले रक्खी थी कि जिस दिन समितिको कमसे कम एक रुपया कहींसे माँगकर न ला देंगे, उस दिन एक वारका भोजन या कोई एक रस छोड़ देंगे !

समितिके कार्योंके कई विभाग थे। परीक्षाविभागके द्वारा समिति अपने निर्वाचित पठनक्रमके अनुसार जयपुर शहरकी और बाहरकी जैनपाठशालाओंकी परीक्षा लेती थी। जो विद्यार्थी परीक्षामें उत्तीर्ण होते थे उन्हें पारितोषिक और मासिकवृत्तियाँ भी दी जाती थीं। परीक्षाके प्रश्नपत्र समिति बड़े बड़े बड़े विद्वानोंसे तैयार करवाती थी, जो विद्यार्थियोंकी योग्यताकी जाँचके लिए बहुत ही अच्छे होते थे।

पुरुषशिक्षाविभाग और स्त्रीशिक्षाविभागकी अधीनतामें समितिने

जयपुरमें कुछ विद्यालय और कन्या पाठशालायें स्थापित कर रक्खी थीं। इन सबमें समितिके पठनक्रमके अनुसार पढ़ाई होती थी। बारह हजार वार्षिक खर्चेमेंसे अधिकांश रुपया इन्हीं पाठशालाओंके काममें खर्च होता था।

'श्रीवर्द्धमानजैनविद्यालय' समितिका आदर्श विद्यालय था। इसमें लगभग २०० विद्यार्थी शिक्षा पाते थे। विद्यालयके साथ एक छात्रालय भी था जिसमें दूर दूरसे आये हुए लगभग ५० विद्यार्थी रहते थे। विद्यार्थियोंको शारीरिक मानसिक और धार्मिक तीनों प्रकारकी शिक्षायें दी जाती थी। शिक्षापद्धतिके सम्बन्धमें सेठीजीका ज्ञान और अनुभव बहुत ही बढ़ा चढ़ा है। उन्होंने यूरोप, अमेरिका जापान आदि सारे उन्नत देशोंकी शिक्षाप्रणालीका अध्ययन और मनन किया है। इस विषयके बहुत ही कम ग्रन्थ होंगे जो उन्होंने न पढ़े हों। उन्होंने कांगड़ी, ज्वालापुर, वृन्दावन आदिके गुरुकुल, तथा रवीन्द्रबाबूका शान्तिनिकेतन आदि एतद्देशीय आदर्श विद्यालयोंका अच्छी तरह अवलोकन किया है तथा उनकी शिक्षापद्धति पर विचार किया है। वे स्वयं भी एक अच्छे शिक्षक हैं। इससे पाठक जान सकते हैं कि उनके विद्यालयका पठनक्रम और पठनप्रणाली कितनी अच्छी होगी। वे अपने विद्यालयमें एक भी अध्यापक ऐसा न रखते थे जो शिक्षापद्धतिका जानकर न हो। अध्यापकोंको वे स्वयं शिक्षा देनेकी पद्धति बतलाते थे।

विद्यालयमें संस्कृत, अँगरेजी और हिन्दी तीन भाषाओंकी शिक्षा सहजसे सहज पद्धतिके द्वारा दी जाती थी। जैनधर्मकी शिक्षाकी

ओर तो बहुत ही अधिक लक्ष्य दिया जाता था। जैनधर्मके मूलभूत कर्मसिद्धान्तका ज्ञान वे छोटेसे छोटे बच्चोंका इतना अच्छा करा देते थे कि सुननेवाले आश्चर्य करते थे। विद्यालयकी अन्तिम श्रेणीके विद्यार्थियोंकी योग्यता अँगरेजीमें इतनी अच्छी हो जाती थी कि वे कुछ ही समय तक प्राइवेट परिश्रम करके मैट्रिकमें भरती हो जाते थे। संस्कृतमें उनकी प्रवेशिकामे भी अच्छी योग्यता हो जाती थी और हिन्दी साहित्यके तो वे बहुत अच्छे जानकार हो जाते थे। उनके कई विद्यार्थी हिन्दीके अनेक पत्रोंमें लेख लिखते थे और कोई कोई तो कविता भी कर सकते थे। हिन्दीके सेठीजी अनन्य भक्त हैं। इस विषयमें वे अपने विद्यार्थियोंका खास तौरसे उत्साह बढ़ाते थे। हिन्दीका उन्होंने खास तौरसे अध्ययन किया है। यद्यपि उन्हें समय बहुत ही कम मिलता था, तो भी उन्होंने हिन्दीमें कई पुस्तकें लिखी हैं जो अभीतक प्रकाशित नहीं हुई हैं। वे अच्छे लेखक हैं। कविताका भी उन्हें अभ्यास है। उनके बनाये हुए 'महेन्द्रकुमार' और 'धर्मपाल' नामक नाटक गद्यपद्यमय हैं और बहुत ही सुन्दर हैं।

विद्यालयमें गणित, इतिहास, भूगोल, अर्थशास्त्र, पदार्थविज्ञान, चित्रकारी आदि सब विषय पढ़ाये जाते थे और इतिहासादि कई विषयोंकी पढ़ाई तो उनकी बहुत ही अच्छी होती थी। उनकी शिक्षाका क्षेत्र बहुत ही विशाल है। वे यह नहीं चाहते कि जैनविद्यार्थी किसी संकीर्ण परिधिके भीतर कैद कर दिये जावें और वे संसारके विशाल ज्ञानसे वंचित रहकर अंधश्रद्धालु बन जावें।

विद्यालयमें जितने कार्यकर्ता थे वे प्रायः अल्पवेतन लेकर काम

करनेवाले या अवैतनिक थे। उनके विचारोंका विद्यार्थियों पर बहुत गहरा प्रभाव पड़ता था। वे उनके चरित्रसे यह सीखते थे कि मनुष्यका सबसे बड़ा कर्तव्य समाज और धर्मकी निःस्वार्थ होकर सेवा करना है।

सेठीजीका धार्मिक ज्ञान बहुत ही बड़ा चढ़ा है। जैनधर्मके गोम्मटसार, कर्मग्रन्थ आदि सिद्धान्तोंका उन्होंने इतना अच्छा अध्ययन और मनन किया है कि जैनसमाजमें उनकी जोड़का एक भी ग्रेज्युएट नहीं है। जैनधर्मकी सैद्धान्तिक चर्चामें ऐसा शायद ही कोई दिन हो जब उनके दो तीन घंटे न जाते हों। उनकी शंकाओंका समाधान करना बड़े बड़े विद्वानोंके लिए भी कठिन जाता है। जैनधर्मका हृदय क्या है यह वे जानते हैं। उन्होंने श्वेताम्बरशास्त्रोंका भी एक यति महाशयके पास अच्छा अध्ययन किया है। जैनधर्मकी शिक्षाको वे बहुत ही आवश्यक समझते हैं।

जैनधर्मके वे केवल ज्ञाता ही नहीं है, उसका आचरण भी पूर्णतया करते हैं। अभी कुछ दिन पहले जेलखानेमें जिन-दर्शन न मिलनेसे उन्होंने आठ दिन तक भोजन न किया था।

जैनसमाजके बीसों ग्रेज्युएटोंका ध्यान उन्होंने जैनधर्मके अध्ययनकी ओर आकर्षित किया है और उन्हें समझाया है कि अपने इस रत्नाकरको देखो, इसमें अवगाहन करो; तुम्हें वह शान्ति मिलेगी जो और कहीं भी नहीं मिल सकती है।

स्त्रीशिक्षाविभागकी ओरसे सरस्वती कन्यापाठशाला और पद्मावती कन्यापाठशाला दो पाठशालायें स्थापित हैं और उनमें समितिके

पठनक्रमके अनुसार हिन्दी, भूगोल, गणित, गृहकार्य और धर्मकी शिक्षा दी जाती है।

समितिका एक पुस्तकालय भी है। उसमें हिन्दीकी तथा अँगरेज़ी आदिकी कई हजार पुस्तकें संग्रह हैं। इसमे जैन अजैन सब एक सा लाभ उठाते थे। जयपुरका प्रसिद्ध हिन्दी पुस्तकालय 'नागरी भवन' समितिको ही मिल गया था।

प्राचीन हस्तलिखित ग्रन्थोंका संग्रह और उद्धार करनेके लिए भी एक विभाग स्थापित किया गया था और उसके द्वारा जयपुरके समस्त भंडारोंकी सूची तैयार कराई गई थी; परन्तु आगे कोई योग्य कार्यकर्त्ता न मिलनेके कारण यह काम बन्द कर दिया गया।

विद्यार्थियोंको व्याख्यान देना भी सिखलाया जाता था। उनके सामने अच्छे अच्छे व्याख्यान होते थे, जिसमे वे अपने चरित्र-को उदार उन्नत और धर्ममय बनावें और लोगोंके कल्याण कर-नेकी शक्ति—वक्तृत्व शक्ति प्राप्त कर सकें।

छात्रालयमें कालेजके पढ़नेवाले विद्यार्थी भी रक्खे जाते थे और जो असमर्थ होते थे उनमे कुछ काम लेकर उन्हें कुछ आर्थिक सहायता कर दी जाती थी। ऐसे विद्यार्थियोंके हृदय पर धार्मिक संस्कार डालनेका सेठीजी बहुत प्रयत्न करते थे। थोड़े ही समयमें उन्हें धर्मसे प्रेम हो जाता था और उनकी धर्म तथा समाजकी सेवा करनेकी ओर रुचि हो जाती थी। उनके यहाँके ऐसे कई विद्यार्थी आज जैनसमाजकी सेवा कर रहे हैं।

समिति एक ऐसी अच्छी संस्था थी कि उसकी विशेष विशेष

बातोंका उल्लेख करनेके लिए ही बहुत स्थान चाहिए। हमने यहाँ मोटी मोटी बातें बतला दी हैं; अधिक जाननेके लिए समितिकी रिपोर्ट देखना चाहिए।

हमारी समझमें सेठीजीका वास्तविक परिचय पानेके लिए- उनके कर्तव्यशील जीवनका महत्त्व समझनेके लिए समितिके कामोंको छोड़कर और कोई साधन नहीं है। उनका अन्तरंग शरीर समितिके ही रूपमें विद्यमान था।

हमारा विश्वास है कि यदि सेठीजीकी 'समिति' दश ही वर्ष और चल जाती तो जैनसमाजकी प्रगति इतनी हो जाती जिसकी कि हम कल्पना भी नहीं कर सकते हैं। अभी तो उसका प्रारंभ ही था— काम करनेके दिन तो उसके अब आये थे; परन्तु जैनसमाजका दुर्भाग्य कि उस पर अकालहीमें एक वज्र आकर पड़ा और वह नष्ट भ्रष्ट हो गई।

सेठीजीका शिक्षाप्रचारके समान समाजसुधारकी ओर भी लक्ष्य है। उन्होंने जो महत्त्वका और सबसे आवश्यक कार्य अपने हाथमें ले रक्खा था उसके देखते हुए यद्यपि उन्हें इस कार्यमें हाथ न डालना चाहिए था; तथापि जैनसमाजके कल्याणकी—उसकी दशा सुधारनेकी भावना उनके हृदयमें इतनी प्रबल थी कि उन्हें यह कार्य बलात् करना पड़ता था। इससे उन्हें अनेक संकीर्ण हृदय व्यक्तियोंका कोपभाजन बनना पड़ा और बहुतोंने तो उनके मार्गमें काँटे बिछाने तकका प्रयत्न किया। किन्तु वे अपने विचारोंमें इतने दृढ थे कि उन्होंने किसीकी जरा भी परवा न की—सब कुछ हानियाँ सहकर भी वे अपने कर्तव्यपथ पर आरूढ रहे।

वे सुधारक हैं; परन्तु अविचारक नहीं हैं। समाजमें जिन सुधारोंकी वास्तवमें आवश्यकता है, जिनसे समाजका कल्याण होनेकी संभावना है और जिनसे जैनधर्मके सिद्धान्तोंमें कोई बाधा नहीं आ सकती उन्हीं सुधारोंके लिए वे प्रयत्न करते थे। राजपूतानेमें छोटी छोटी सैकड़ों कुरीतियाँ प्रचलित हैं उन्हें सेठीजीने बहुत कुछ बन्द करा दिया है। कन्याविक्रय, बाल्यवृद्धविवाह, रंडियोंका नाच और फिजूलखर्चीके मिटानेमें उन्हें बहुत सफलता हुई है। उन्होंने अनेक विवाह बहुत ही थोड़े खर्चेमें सर्वथा सभ्य और उच्च रीत्यानुसार करवाये हैं। समाजसुधारके लिए उन्होंने एक नाटकमण्डली स्थापित कर रक्खी थी। इसके नाटकोंका लोगोंपर बड़ा प्रभाव पड़ता था। अभी दो वर्ष हुए इनके एक नाटकमें लगभग दश हजार दर्शक उपस्थित हुए थे!

जैनोंकी तमाम जातियोंमें परस्पर रोटी-बेटी व्यवहार जारी करनेकी वे बहुत आवश्यकता बतलाते हैं। इस विषयमें उनकी युक्तियाँ सुनने योग्य होती हैं। जैनोंकी तीनों शाखाओंमें—दिगम्बर श्वेताम्बर स्थानकवासियोंमें मेल मिलाप बढ़ानेका—प्रीतिभाव उत्पन्न करानेका वे बहुत उद्योग किया करते थे। इसके लिए उन्होंने एक भजनमण्डली स्थापित कर रक्खी थी जो बारी बारीसे तीनों सम्प्रदायके मन्दिरोंमें जाकर प्रीतिवर्धक भजन गाती थी। कभी कभी वे तीनों सम्प्रदायके शिक्षितोंको एकत्र करते थे और उनका एक साथ प्रीतिभोज कराते थे। अपने विद्यालयमें वे तीनों सम्प्रदायके विद्यार्थियोंको रखते थे; उनकी धर्मशिक्षाका भी उन्होंने यथोचित प्रबन्ध कर रक्खा

था। उनकी संस्थाके लिए चन्दा भी उन्हें तीनों सम्प्रदायोंसे मिलता था। कई अजैन विद्यार्थी भी उनके विद्यालयमें शिक्षा पाते थे। देशकी उन्नतिके लिए वे यह भी आवश्यक समझते हैं कि नीच जातियोंको शिक्षा दी जाय। उनके खयालमें ज्ञानदान किसीको भी किया जाय, वह पापका कारण नहीं हो सकता है। अवश्य ही उनके इन कामोंसे बहुत लोग अप्रसन्न थे।

सेठीजी जैनसमाजके बड़े नामी व्याख्याता हैं। उनके व्याख्यानोंका प्रभाव भी बड़ा गहरा पड़ता है। नये और पुराने दोनों तरहके खयालवाले उनके व्याख्यानोंकी प्रशंसा करते हैं। इस कारण उन्हें प्रायः प्रत्येक जैन सभामें उपस्थित रहना पड़ता था। आज तक उनके देशके एक छोरसे दूसरे छोर तक सैकड़ों व्याख्यान हुए हैं; परन्तु जहाँतक हम जानते हैं समाज और धर्मसे बाहर राजनीति आदिके सम्बन्धमें उनका कोई भी व्याख्यान नहीं हुआ। वे केवल धर्म और शिक्षाके प्रचारक हैं। जैनसमाजमें अभी इतनी योग्यता भी कहाँ है कि वह राजनीतिके व्याख्यान सुने। जिस समाजकी सारी शक्तियाँ साम्प्रदायिक झगड़ोंमें—शास्त्रार्थोंमें और तीर्थोंकी मुकद्दमेबाजीमें खर्च होती हैं उसमें इतना बल कहाँ कि राजनैतिक क्षेत्रमें खड़ा हो सके।

सेठीजीका स्वभाव बड़ा ही सुशील, मृदु और प्रभावशाली है। अभिमान उनको छू तक नहीं गया। वे प्रशंसाके भूखे नहीं। वे केवल काम करना जानते हैं। उनका रहन सहन बहुत ही सादा है। सदा अपनी देशी पोशाक पहनते हैं। जयपुरी पगड़ी छोड़कर

उन्हें कभी किसीने टोपी लगाये न देखा होगा। खाना पीना बहुत ही साधा रखते हैं। कष्ट सहन करनेमें तो वे बहुत ही बढ़े चढ़े हैं। थोड़ेसे भुने चने साथमें रखकर सैकड़ों मीलोंकी सफ़र कर आना उनके लिए मामूली बात है

सेठीजीके कुटुम्बमें उनकी सहधर्मिणी, एक पुत्र और तीन कन्यायें हैं। अपनी स्त्री श्रीमती गुलाबबाईको उन्होंने इस प्रकारकी शिक्षा दी है, उनके विचारोंको इतना उन्नत और उदार बना दिया है और उनके मनमें समाजसुधारकी आवश्यकताके भाव इतने दृढ कर दिये हैं कि वे इनके कामोंको अच्छा ही नहीं समझती हैं किन्तु इन्हें बहुत कुछ सहायता भी पहुँचाती हैं। सेठीजीका विश्वास है कि जो पुरुष अपनी सहधर्मिणीको अपने विचारोंकी अनुयायिनी और शिक्षिता नहीं बना सकता है वह समाजका काम कभी सफलताके साथ नहीं कर सकता।

पुत्र प्रकाशचन्द्रकी अवस्था इस समय ११ वर्षकी है। लड़कियाँ छोटी छोटी हैं। प्रकाशचन्द्रको आप स्वयं ही पढ़ाते थे। आप यह नहीं चाहते हैं कि वह बी. ए., एम. ए. पास करके वकील बन जाय या नौकरी कर ले। आपकी यही इच्छा है कि वह भी अच्छी तरह शिक्षित होकर अपना जीवन देश, धर्म और समाजकी सेवाके लिए अर्पण कर दे। ' प्रकाश ' होनहार लड़का है। उससे बात-चीत करके और उसके इस छोटीसी उम्रके विचार सुनकर चित्त बहुत ही प्रसन्न होता है।

गतवर्ष इन्दौरके नामी रईस रायबहादुर सेठ कल्याणमलजीने दो लाख रुपयोंका दान करके इन्दौरमें एक जैन हाईस्कूल खोलना चाहा और उसकी नीव जमाकर कुछ समय तक स्कूलको अच्छे ढंगसे चला देनेके लिए सेठीजीसे प्रार्थना की। उन्होंने कुछ समयके लिए यह कार्य करना स्वीकार भी कर लिया। करते क्यों नहीं, उनके जीवनका तो उद्देश्य ही शिक्षाप्रचार है। गत मार्चमें वे उक्त स्कूलको आदर्शरूपमें स्थापित करनेकी तैयारी कर ही रहे थे कि अचानक गिरिफ्तार कर लिये गये। पहले देहलीके षड्यंत्रके मामलेमें देहली लाये गये; परन्तु सुबूत न मिलनेसे थोड़े ही दिनोंमें छोड़ दिये गये। इसके बाद ही न जाने फिर क्यों पकड़ लिये गये और कुछ दिनों इन्दौरमें रक्खे जाकर जयपुर भेज दिये गये। तबसे अबतक वे जयपुरकी जेलमें सड़ रहे हैं। यह नहीं बतलाया जाता है कि उन्होंने क्या अपराध किया है।

देखें जैनसमाजके शुभदिन कब आते हैं और कब वह फिरसे ऐसे महात्मा, उदारहृदय, स्वार्थत्यागी सच्चे सेवकको प्राप्त कर उन्नतिके पथ पर अग्रसर होता है।

उठो प्यारो, उठो प्यारो !

(श्रीयुत बाबू अर्जुनलालजी सेठी बी. ए. के, महेन्द्रकुमार नाटकसे उद्धृत ।)

हुआ है भोर उन्नतिका उठो प्यारो उठो प्यारो ।
वह देखो ज्ञानका दिनकर, उठो प्यारो उठो प्यारो ॥ १ ॥
कला कौशलके पक्षीगण, सुनाते शब्द हैं मनहर,
पढ़ो अध्यात्मकी वाणी, उठो प्यारो उठो प्यारो ॥ २ ॥
अविद्याका अँधेरा सब, मिटा जाता है दुनियासे ।
जगे हैं चीन भी देखो, उठो प्यारो उठो प्यारो ॥ ३ ॥
सँभालो अपने घरको अब जगा दो वृद्ध भारतको ।
यह गुरु है सर्व देशोंका, उठो प्यारो उठो प्यारो ॥ ४ ॥
क्या हिन्दू क्या मुसलमाँ, और जैनी बौद्ध ईसाई ।
करो अब मेल आपसमें, उठो प्यारो उठो प्यारो ॥ ५ ॥
जहाँके अन्न पानीसे, बना यह तन हमारा है ।
करो सब उस पै न्योछावर उठो प्यारो उठो प्यारो ॥ ६ ॥
बजाके बाजे शिक्षाके, भरो आलाप साहसका ।
बनो पात्र लक्ष्मीके, उठो प्यारो उठो प्यारो ॥ ७ ॥

हृदयोद्गार ।

[श्रीयुत बाबू अर्जुनलालजी सेठी बी. ए. के बनाये हुए 'महेन्द्रकुमार' नाटकसे उद्धृत एक पद्य ।]

कब आयगा वह दिन कि बनूँ साधु विहारी ॥ टेक ॥
दुनियामें कोई चीज़ मुझे थिर नहीं पाती,
और आयु मेरी यों ही तो बीती है जाती ।

मस्तक पै खड़ी मौत वह सबहीको है आती,
राजा हो चाहे राणा हो हो रंक भिखारी ॥ १ ॥
संपत्ति है दुनियाकी वह दुनियामें रहेगी,
काया न चले साथ वह पावकमें दहेगी।
इक ईंट भी फिर हाथसे हर्गिज न उठेगी,
बँगला हो चाहे कोठी हो हो महल अटारी ॥ कब० ॥ २
बैठा है कोई मस्त हो मसनदको लगाये,
माँगे है कोई भीख फटा वस्त्र बिछाये।
अंधा है कोई कोई बधिर हाथ कटाये,
व्यसनी है कोई मस्त कोई भक्त पुजारी, ॥ कब० ॥ ३
खेले हैं कई खेल धरे रूप घनेरे,
स्थावरमें त्रसोंमें भी किये जाय बसेरे।
होते ही रहे हैं यों सदा शाम सवेरे,
चक्करमें घुमाता है सदा कर्म मदारी ॥ कब० ॥ ४
सबहीसे मैं रक्खूँगा सदा दिलकी सफ़ाई,
हिन्दू हो मुसलमान हो हो जैन ईसाई।
मिल मिलके गले बाँटेंगे हम प्रीति मिठाई,
आपसमें चलेगी न कभी द्वेष-कटारी ॥ कब० ॥ ५
सर्वस्व लगाके मैं करूँ देशकी सेवा,
घर घरमें मैं जा जाके रखूँ ज्ञानका मेवा।
दुःखोंका सभी जीवोंके हो जायगा छेवा,
भारतमें न रक्खूँगा कोई मूर्ख अनारी ॥ कब० ॥ ६
जीवोंको प्रमादोंसे कभी मैं न सताऊँ,
करनोंके विषय हेयमें अब मैं न लुभाऊँ।
ज्ञानी हूं सदा ज्ञानकी मैं ज्योति जगाऊँ,
समतामें रहूँगा मैं सदा शुद्ध विचारी ॥ कब० ॥ ७

उठो, क्या सोच रहे हो !

जैनबन्धुओ ! उठो ! अब क्या सोच रहे हो। देखते नहीं तुम्हारे लिये तनमनधन अर्पण करनेवाला धर्मवीर अर्जुन विपत्तिमें फँसा है। सारे भारतके माननीय पुरुष उनकी मुक्तिके लिये अधीर हो रहे हैं। पर अभी तक तुम सोच विचारमें ही पड़े हो। उठो ! और अपने पैरों खड़े होकर अपने प्राणोंसे प्यारे बन्धुके लिये कुछ [illegible]मूल्यका परिचय दो। यदि यह समय चूक गये तो याद रक्खो अधमरे तुम्हारे मरनेमें देर न लगेगी। वीरप्रभुका नाम लेकर यदि तेरह लक्ष जैन उठेंगे तो वीर भगवान कल्याणही करेंगे।

चन्द्र।

ऐतिहासिक स्त्रियाँ।

कुमार देवेन्द्रप्रसाद जैन।



"कन्याप्येवं पालनीया रक्षणीयाति यत्नतः ।"

ऐतिहासिक स्त्रियां ।

आठ प्रसिद्ध ऐतिहासिक सतियों और देवियों के शिक्षाप्रद जीवनचरित ।

सम्पादक—

आरा-निवासी कुमार देवेन्द्रप्रसाद जैन ।

वीर निर्वाण संवत् २४३८ ईसवी सन् १९१२ ।

 [मूल्य ॥) मयडाक

PRINTED BY
RAM PRATAP BHARGAVA,
Narsingh Press 201 Harrison Road, Calcutta.
PUBLISHED BY
KUMAR DEVENDRA PRASAD JAIN, ARRAH.
First Edition 1000 Copies.

Price Ans. Eight. *Post free.*
Free Gift to Sisters who cannot afford -
Sent Post paid on application.

मातृ-चरणोंमें।

सम्मति ।

मुझे बहुत हर्ष है कि मेरे प्रिय मित्र देवेन्द्रप्रसादजीने इस ऐतिहासिक स्त्रियाँ नामक उत्तम पुस्तकको लिखकर एक बड़ी भारी आवश्यकताकी पूर्त्ति की है। मैंने इस पुस्तकको पढ़ा और इसे स्त्री-पुरुष दोनोंके लिये उपयोगी पाया। इसमे भारतवर्षकी प्राचीन देवियों और पुण्यकीर्त्ति महिलाओंकी शीलता, पातिव्रत, वीरता आदिकी झलक दिखाई देती है जिनके पाठसे पाठकों और पाठिकाओंको अवश्य आनन्दके साथ साथ शिक्षा भी प्राप्त होगी। मेरी इच्छा है कि यह पुस्तक जैनकन्यापाठशालाओंकी पाठ्यपुस्तकोंमें सम्मिलित अवश्य की जाय। आशा है कि इसके सम्पादक और भी ऐसी पुस्तकें लिखकर हम लोगोंको आभारी करेंगे।

निवेदक,

जे० एल० जैनी, एम० ए०

बार-एट ला. एडवोकेट,

इलाहाबाद।

अवतरण।

प्रिय पाठक एवं पाठिका वर्ग।

महात्माओं और पुण्यात्मा देवियोंकी जीवनी पढ़नेसेही इस संसारमें मनुष्यकी सभी उन्नतियां हो सकती हैं। जिस किसी जाति या समाजने इस जगत्‌में सुख सौभाग्य प्राप्त किया है उसने अपने देशके महान् पुरुष और स्त्रियोंकेही पुण्य चरित्रोंका अनुकरण करके प्राप्त किया है। किन्तु खेदकी बात है कि ऐसी ऐसी पुस्तकोंका हिन्दीमें बड़ाही अभाव है विशेषतः स्त्रियोंके पढ़ने और अनुकरण करने योग्य पुस्तकें तो बहुत ही थोड़ी हैं इसी कारण उस अभावको यत्किञ्चित् पूरा करनेके लिये हमने यह उद्योग किया है। आशा है कि इससे हमारी कन्याएँ और भगिनीगण लाभ उठावेंगी। जिस उद्देश्यसे यह किताब लिखी गयी है वह यदि कुछ अंशमें पूरा हुआ तो उसे हम अपना परमसौभाग्य समझेंगे और उत्साहित होकर दूसरी भी पुस्तक इसी ढँगकी आठ अन्य पुण्यात्मा महिलाओंकी जीवनी समेत लेकर सेवामें

उपस्थित होंगे। इस पुस्तकमें इस बातका पूरा पूरा ध्यान रखा गया है कि यह जैनकन्या पाठशालाओं और श्राविकाश्रमोंमें पढ़ायी जाने योग्य होवे इसीसे इसमें जीवनियाँ ऐसी दी गयी हैं जो कि ऐतिहासिक और शिक्षाप्रद हैं।

अन्तमें हम बाबूपन्नालालजी चौधरी, पण्डित दीपचन्दजी और तुलसीरामजीको धन्यवाद देते हैं जिन्होंने इसे तैयार करनेमें हमारी सहायता की है।

जिसमें हमारी इस पुस्तक से सभी हमारी बहिनों और माताओंको लाभ हो इसलिए हमने निश्चय किया है कि असमर्थ बालिकाओं एवं स्त्रियोंको पत्र लिखनेसे ही बिना मूल्य और बिना डाक व्ययके पुस्तक भेज देंगे।

इस पुस्तकसे जो कुछ भी मूल्य प्राप्त होगा वह स्त्रीशिक्षा के ही प्रचार में लगा दिया जायगा।

आरा।
१—५—१९१३

सविनय—
देवेन्द्रप्रसाद जैन।

विषय-सूची।

विषय — पृष्ठांक

(१) श्रीमती राजुलदेवी (राजमती) ... १
(२) श्रीमती सीताजी ७
(३) महारानी चेलनादेवी ३०
(४) महारानी मैना सुन्दरी ३८
(५) वीरानारी रानी द्रौपदी ४८
(६) श्रीमती रानी अञ्जना सुन्दरी... ... ५८
(७) शीलवती मनोरमा देवी ७०
(८) श्रीमती रानी रयन मंजूषा ... ... ८०—९०

पातिव्रत धर्मका आदर्श ।

ताहि न बाघ भुजंगमको भय,
पानी न बोरै न पावक जालै ।
ताके समीप रहैं सुर किन्नर,
सो शुभ रीत करै अघ टालै ।
तासु विवेक बढ़ै घट अन्तर,
सो सुरके शिवके सुख भालै ।
ताकि सुकीरति होय तिहूँ जग,
जो नर शील अखण्डित पालै ।

बनारसी विलास ।



चित्रशाळा प्रेस, पुणें.

ऐतिहासिक स्त्रियां।

"वैरागिणी-रमणी-रतन"

श्रीमतीराजुल देवी।

(राजमती)

''धन धन्य महिलारत्न राजुल, युवा वय में तपधरा।
भव वास के सब भोगतज, निर्वाण सुख में चितधरा॥
गिरनार के उस आम्रवन में ध्यानमय आसन धरा।
उच्च पातिव्रत दिखाकर, सुयश से जग मल हरा॥''

श्री राजमती भोजवंशीय राजा उग्रसेनकी कुमारी थीं, छोटेपनसे ही इनका लालन पालन बड़ी योग्यतासे हुआ था, अद्भुत गुण और सौन्दर्यके कारण राजकन्या राजमतीकी प्रशंसा यहां तक बढ़ी चढ़ी थी कि इनके पिताको

इनके लिये वर खोजनेमें कुछ भी परिश्रम नहीं उठाना पड़ा। अनेक महाराजा इस रत्नलक्ष्मीके लिये स्वयं आ आकर याचना करते थे।

सौर्यपुरके यदुवंशीय राजा समुद्र विजय और रानी शिव-देवीके पुत्र बाइसवें तीर्थङ्कर श्रीनेमीनाथ स्वामी जब तरुणा-वस्थाको प्राप्त हुए, तब इनके कुटुम्बियोंने भोजवंशियोंसे श्रीराजमती और श्रीनेमीनाथका सम्बन्ध करनेके लिये संदेशा भेजा। यह सम्बन्ध सबको रुचिकर जँचा और विवाहकी तिथि निश्चित होकर टीका भी चढ़ गया।

श्रीनेमीनाथ स्वामी उस समय सारे भूमण्डलके पुरुषोंमें श्रेष्ठतम पुरुष थे। इनके जन्मके छः महीने पूर्वहीसे माता शिव देवीके यहाँ रत्नोंकी वर्षा हुई थी तथा अनेक देव देवि-योंने सेवा पूजा की थी। भगवान् नेमि प्रभु जन्मसेही मति, श्रुति और अवधि इन तीन ज्ञानोंके धारी थे तथा अत्यन्त शान्त-चित्तइन्द्रियविजयी परमपराक्रमी थे। ऐसे अद्वितीय गुणयुक्त त्रैलोक्यनाथ पतिके प्राप्त होनेकी आशासे श्रीराजुल देवीके हर्षका पारावार न रहा। यद्यपि अभी विवाह संस्कार पूरा नहीं हुआ था केवल टीका कङ्कण आदि शुभसूचक रीतियाँही हो पाई थीं परन्तु श्रीराजुलदेवी अपने अन्तरङ्गमें निजको सर्व प्रकारसे श्रीनेमीनाथ स्वामीके अर्पण कर चुकी थी।

धीरे धीरे पाणिग्रहणका दिन आया और बड़े ठाटबाटसे बारात लगनेकी तैयारी हुई। इस समय राजुलदेवी महलके

झरोखेपर बैठी बैठी अपने आनेवाले पतिके गुणोंका विचार करके परमहर्षमें मग्न हो रही थीं। परन्तु पाप पुण्यकी लीला बड़ा प्रबल है। इस समय अशुभोदयने राजुलदेवीको कुछका कुछ दिखा दिया और उनके साहसकी भली भाँति परीक्षा की।

विवाहका समय निकट होनेपर श्रीनेमीनाथ स्वामी विशाल रथपर सवार हो अनेक महाराजाओं सहित ससुराल जा रहे थे कि मार्गमें बहुतसे पशुओंको एक बाड़ेमें घिरे रोते चिल्लाते देखा। दीनरक्षक श्रीनेमी कुमारने रथ रुकवाकर इस भयावने दृश्यका कारण सारथीसे पूछा। उत्तरमें यह सुनकर कि "इन पशुओंका माँस बारातमें आये हुए नीच मनुष्योंके लिये पकेगा"। नेमी प्रभुको बड़ी घृणा हुई। फिर उन्होंने अवधि ज्ञान द्वारा विचारकर देखा तो इसका कारण कुछ औरही ज्ञात हुआ। उनको मालूम हो गया कि यह दृश्य उन्हें वैराग्य प्रगट करानेके लिये उनके बड़े भाईने रचा है। सब तरहसे पराक्रम होकर भावी राजलक्ष्मीके लोभसे श्रीनेमी प्रभु पृथिवीपर रहेंगे तो यही राजा होंगे और यदि मुनि हो जायँगे तो हम राज्य करेंगे, इस अभिप्रायसे यह सब प्रपञ्च श्रीकृष्णजीकाही किया हुआ है।

बस अब क्या था, बस प्रपञ्चको देख श्रीनेमीनाथको सच-मुच वैराग्य प्रगट हो गया। वे विचारने लगे कि देखो यह राज्य विभव कैसा बुरा है जिसके लिये बड़े बड़े पुरुष भी

इतना प्रपञ्च रचते हैं। धिक्कार है इन इन्द्रियभोगोंको जो जगत्के जीवोंको स्वार्थमें ऐसा अन्धा कर देते हैं। क्षणभंगुर संसार है इसमें आत्महितही सार है इत्यादि इत्यादि बातोंके विचारसे नेमीनाथको परम वैराग्य हो गया। वे बारह भावनाओंका चिन्तवन करने लगे और शिरका मुकट उतारकर पृथिवीपर डाल दिया। कङ्कण तोड़ फेंक दिया, सांसारिक भोगोंसे मुख मोड़ लिया। संसार से उदासी-मोक्ष-लक्ष्मीके अभिलाषी, श्रीनेमीकुमार विवाहारम्भके सम्पूर्ण कार्योंको छोड़ जैनेन्द्री दीक्षा धारण करके गिरनार (जूनागढ़) के पहाड़पर योगाभ्यास करने लगे। सारे विषय भोगोंको छोड़ श्रीराजुलदेवी जैसी पत्नीको त्याग ध्यान ज्ञानमें मग्न हो गये।

इधर महलोंमें स्थित कोमल-चित्ता राजुलदेवीको यह समाचार मिले कि "नेमीनाथने वैराग्य लेलिया"। इन शब्दोंने उस देवीके हृदयरूपी कमलका दहन कर दिया। कहां तो वह परमहर्ष और कहां यह विपत्तिका पहाड़!

सारे राजमहलमें खलबली मच गई। सब मनुष्योंके मुख-पर शोकही शोक झलकने लगा।

राजुलदेवीको सब कुटुम्बीगण समझाने लगे, सबने चाहा कि इन्हें अन्यान्य भोग सामग्रियोंसे लुभा देवें और श्रीनेमी प्रभुका दुःख भुला दें; परन्तु यह सती ऐसी बुद्धिहीना न थी। राजुलदेवीको उस समय सारा संसार शून्य दीखने लगा, वे

क्षणभर भी वहाँ न टिकीं। समस्त भूषण वसन उतार वैराग्यमें उद्यम करने लगीं, अपने पूर्वकृत कर्मोंके खेलको देख अपनी निन्दा करने लगीं। पाठक पाठिकागणो! राजुलदेवीके सतीत्व और स्वार्थत्यागकी प्रशंसा लेखनीसे नहीं हो सकती। आप लोग स्वयं अन्तरङ्गमें विचार लेंगे।

ये महासती समस्त कुटुम्बियोंसे विदा माँग, जगत् का मोह छोड़, स्वामीके ऐसे वैराग्य धर्मको अङ्गीकार करनेके लिये गिरनार पर्वतपरही चली गई। वहाँ पहाड़ोंकी भयानक गुफाओंमें अकेली रहकर परम तप करने लगीं। अहा! धन्य है इस सतीको जिसने पतिके सम्बन्धको इतना दृढ़ निबाहा। इसीका नाम है पतिके सुखमें सुखी और दुःखमें दुःखी होना! इसीका नाम है पातिव्रत! जो इतने अल्प सम्बन्धित पतिकोही अपना सर्वस्व समझ स्थिर हो गई, जिस तरह पतिने संसार त्यागा उसी तरह स्वयं भी साध्वी हो गई।

इधर श्रीनेमीनाथ स्वामीको केवल ज्ञान उत्पन्न हो गया घातिया कर्मोंके नाशसे निर्मल केवल-ज्ञान-ज्योति ऐसी स्फुरायमान हुई जिसमें तीनों लोक प्रत्यक्ष दीखने लगे। क्षुधा तृषा, भय, खेद, स्वेदादि १८ दोषोंका नाश हो गया, परमात्मअवस्था प्रगट हो गई। यह देख देवोंने समवशरणकी रचना बनाई यानी इतना विशाल सभामण्डप बनाया जिसमें बारह सभा और अनेक ध्वजा, पताका, तोरण आदिसे सजे

बने और कितने ही स्थान बनाये। इस समवशरणमें चार बड़े विशाल दरवाजे बने थे, जिनपर अनेक देव देवी गान करते थे। बीचोंबीचमें अत्यन्त उज्ज्वल स्फटिक मणि (ज्योतिसे भी साफ होती है) का सिंहासन तीन कटनियोंपर शोभायमान हो रहा था और उसीपर श्रीनेमी प्रभु अन्तरीक्ष विराजमान थे। इनके चौगिर्द बारह सभायें थीं जिनमें क्रमसे देव देवी मनुष्य (गृहस्थत्यागी मुनि अर्जिका) तिर्यञ्च सब बैठे बैठे धर्मश्रवण करें। भगवान्‌की दिव्यध्वनि (वाणी) में इतना चमत्कार होता है कि उसको सब जीव अपनी अपनी भाषामें समझ जाते हैं।

श्रीनेमी प्रभुका समवशरण (सभा) अत्यन्त विभूतिके साथ सङ्गठित और सब जगहमें भव्यजीव भगवान्‌का उपदेश सुनने आये, इस समय श्रीमती राजुलदेवीजी परम अर्जिका छः हजार रानियाँ जो कि सब भगवान्‌के समवशरणमें अर्जिका हुई थीं उन सबकी गुरुआनी हुईं। सब अर्जिकाओंको सत्पथ दर्शानेवाली सबोंकी रक्षिका नियत हुईं। अर्जिकाओंके समूहमें राजुलदेवीकी छवि अद्भुत प्रकाशमान होती थी।

सर्वत्र धर्मोपदेश कर कुछ दिन बाद श्रीनेमी प्रभुको मोक्ष हो गयी और समाधिमरणकर श्रीराजुलदेवी स्वर्गारोहिणी हुई। धन्य है इस देवीके साहस, पतिप्रेम और धर्माचरणको!

२ श्रीसती सीताजी।

"श्रीजानकी राम नृपस्य देवी
दग्धा न संधुक्षित वन्हिना च
देवेश पूज्या भवतिस्म शीला-
च्छीलं ततोऽहं परिपाल यामि"

"रामचन्द्रका वंश परिचय"

इक्ष्वाकु-वंश संसारमें सर्व श्रेष्ठ माना जाता है। क्योंकि भगवान् आदि नाथ तीर्थङ्कर इसी वंशमें उत्पन्न हुए थे। इनके अतिरिक्त अन्यान्य तेजस्वी महाप्रतापी राजर्षि गणने भी इस वंशकी कीर्त्ति अपनी वीरता सदाचारिता और धर्मपरायणतादि गुणोंसे चिरस्थायिनी की है; इसी प्रशस्त इक्ष्वाकु-वंशमें काल क्रमानुसार राजोचित समस्त गुण

सम्पन्न "अरण्य" नामक राजा उत्पन्न हुए तथा इन अरण्य नृपतिके ज्येष्ठ पुत्र महाराजा दशरथ थे। यद्यपि महाराजा दशरथके अन्तःपुर (रनवास) में बहुतसी रानियाँ थीं पर उन सबोंमें कौशल्या, सुमित्रा, कैकयी और सुप्रभा, ये चार रानियाँही प्रधान रानी थीं। इनहीं चार रानियोंसे क्रमसे रामचन्द्र, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न इन चार पुत्र-रत्नोंका जन्म हुआ था। इन पुत्रोंको इनके योग्य पिताने बाल्यकाल हीमें सुशिक्षित किया। राजकुमारोंके योग्य जो जो विद्यायें उपयुक्त होती हैं उन सब विद्या और कलाओंमें उन्हें निपुण बनाया। इस शिक्षाके प्रभावसे इन राजकुमारोंमें नैतिक बल, समीचीन साहस, कर्त्तव्य परायणतादि गुणोंका समावेश वास्तविक था। यही कारण है कि इनका चरित्र इन गुणोंसे इतने महत्त्वका है कि न केवल वह आदर्शही किन्तु मनुष्यमात्रको उपादेय और अनुकरणीय है। यह रामचन्द्रादि, पिताके आज्ञापालक सत्यप्रतिज्ञ, जितेन्द्रिय और असाधारण धैर्यशाली थे। आपत्ति कालमें धीरता रखना, दुःखितोंके दुःखको दूर करना तथा जैन धर्मको सच्ची प्रभावना करनाही इनके प्रधान गुण थे।

सीताजीका वंश परिचय।

उनका रामचन्द्रजी से सम्बन्ध।

जिस प्रकार इक्ष्वाकु वंशमें आदर्श राजाओंने जन्म पाया है उसी प्रकार हरिवंश भी प्रख्यात राजाओंका जन्मदाता है। इस वंशके राजगणोंको गुणगरिमाने इतिहासमें अच्छा स्थान पाया है। इसी वंशमें मिथिलापुरीका अधिपति इन्द्रकेतु नामक महाप्रतापी राजा हुआ तथा इनके जनक नामक पुत्र हुए जो कि अपने पिता इन्द्रकेतुके स्वर्गारोहणके पश्चात् राज्यके शासक हुए। इनका पाणि-ग्रहण विदेहा नामकी किसी राजपुत्रीसे हुआ था। पाणिग्रहणके कुछ दिन पीछे इन जनकको विदेहासे युगल सन्तानकी उत्पत्ति हुई जिसमें एक कन्या और पुत्र था। पूर्वजन्मके वैरसे कोई देव पुत्रको उठा ले गया। पीछे दयासे किसी स्थानपर छोड़ दिया। रथनूपुर नगरके चन्द्रगति विद्याधर राजाने उसको पाया और अपने घर ले जाकर उसे पाला पोसा। इधर जानकी भी दिन दिन बढ़ने लगी। एक दिन नारद सीताको देखनेको आये। सीताने पहले कभी ऐसे मनुष्यको नहीं देखा था इसलिये नारदको देखकर कोठेमें घुसने लगी। यह कोलाहल देखकर महलरक्षकोंने नारदको पकड़ना चाहा। जैसे तैसे नारदने उन रक्षकोंसे अपना पिण्ड

२

छुड़ाया और भयभीत हो किसी पर्वतके ऊपर बैठकर वैरका बदला लेनेकी ठानी। कुछ सोच विचारकर सीताका चित्र खींचा और सीताके भाई भामण्डलको उस चित्रको दिखाया। वह चित्र इतना मनोहर था कि उसको देखनेमात्रसे भामण्डलका चित्त मदनबाणोंसे पीड़ित होने लगा। नाना उपचार करनेपर भी उनकी वह व्यथा बढ़तीही गई और इतने विचार शून्य हो गये कि किसी की लाज न करके सबके सामने सीता सीता शब्दका पाठ करने लगे। इस बातको चन्द्रगतिकी रानीने सुना और समस्त वृत्तान्त अपने पतिसे कहा। चन्द्रगति इस समाचारको सुनकर अति विस्मित हुआ और भामण्डलके पास आकर बहुत समझाया पर उसने एक न मानी। तब चन्द्रगतिने यह स्थिर किया कि सीताके पिताको यहीं बुलाना चाहिये और भामण्डलके लिये सीताको मांगना चाहिये। इस कामके लिये चन्द्रगतिने एक विद्याधरको नियुक्त किया और वह विद्याधर अपनी विद्यासे जनकको रथनूपुर ले आया। जनकके सामने वह प्रस्ताव उपस्थित किया गया। जनकने किसी समय अपने विचारको इस तरह स्थिर किया था कि यह समस्त विद्याओंमें निपुण, सकल कलाओंमें प्रवीण सीता, महाराज दशरथके ज्येष्ठ पुत्र रामचन्द्रजीको दूंगा। इस कारण राजा जनकने चन्द्रगतिके प्रस्तावको मंजूर नहीं किया। तब विद्याधरोंका अधिपति चन्द्रगति और उसके अनुयायी विद्याधर अति क्रुद्ध हुए

और सहसा बोल उठे कि यह वज्रावर्त्त और सागरावर्त्त नामके धनुष हैं इनको जो कोई चढ़ायेगा वही सीताका पति होगा। जनकने इस बातको स्वीकार किया और वे विद्याधर उन दोनों धनुषोंको लेकर जनकके साथ मिथिला-पुरीको आये। जनकने समस्त राजमण्डलको निमन्त्रण दिया। चारों तरफ़से नाना देशोंके अनेक वीर राजा मिथिलापुरीमें आये। राजा दशरथ भी अपने पुत्रों सहित उस स्थानपर आये। सभामण्डप बनाया गया। राजा और राजकुमार अपने अपने आसनपर आ विराजे। रामचन्द्र और लक्ष्मण भी अपने अपने आसनपर बैठ गये। आज सीताका स्वयम्बर दिन है। राजाओंके हृदयमें अनुपम सुन्दरी सीताका ध्यान लग रहा है। कोई राजा विचारता है कि इसके बिना संसारमें रहना व्यर्थ है। और कोई विचारता है इसके रूप और लावण्यके योग्य मैं ही हूँ और कोई इसके योग्य नहीं। इस प्रकार सभा-मण्डपमें उपस्थित राजगण मनमानी कल्पना कर रहे थे। उसी समय वह प्रस्ताव उपस्थित किया गया अर्थात् इस बातकी घोषणा की गई कि वही राजकुमार इस परम सुन्दरी सीताका पति होगा जो कोई इस "वज्रावर्त्त" धनुषको चढ़ायेगा। वह धनुष बड़ाही भीषण था। विद्याधरों द्वारा रक्षित था। तथा अग्निकुलिङ्गाओंकी रक्तज्वालाएँ भक्तों भक्तोंके धैर्यको च्युत करनेवाली उसमें से निकल रही थीं। बड़े बड़े भुजङ्ग अपनी भयावनी जीभें निकाल रहे थे।

पर कामके वशीभूत राजागण कब डरनेवाले थे ? वे मृत्यु के मुखमें प्रवेश करनेको तैयार हो गये। अर्थात् धनुषको चढ़ानेके लिये उद्यम करने लगे। पर किसी भी राजाको चढ़ानेकी बात तो दूर रही उसके पास जानेका भी साहस नहीं हुआ। समस्त राजा अपना अपना सिर धुनने लगे और अन्तमें लज्जित हो ज्योंके त्यों अपने अपने आसनपर आ बैठे। सब लोग अवाक् होके रह गये। और प्रत्येक मनुष्यके हृदयमें यह भावना उत्पन्न होने लगी कि अब इस धरणीतलपर ऐसा कोई वीर नहीं जो इस धनुषको चढ़ायेगा। पर उन्हें यह मालूम नहीं था कि महाराजा दशरथके सुपुत्र श्रीरामचन्द्रजी इस धनुषको चढ़ायेंगे और सीताके पति होंगे। जब रामचन्द्रजीने देखा कि सबके बल और पौरुषकी परीक्षा हो चुकी अर्थात् कोई भी इसे चढ़ानेको समर्थ नहीं हुआ तब महापराक्रमी रामचन्द्र धनुषको चढ़ानेके लिये उद्यमी हुए और धनुषके पास गये। रामचन्द्रजीके पूर्वोपार्जित पुण्योदयसे वे अग्निज्वालायें और वे सर्प एकदम विलीन हो गये। रामचन्द्रजीने उस धनुषको पुष्पमालाकी तरह उठा लिया और उसे चढ़ाया। दर्शकगण चकित होके रहगये और रामचन्द्रका मुँह ताकने लगे। बस फिर क्या था ? सीताने वरमाला रामचन्द्रके गलेमें डाल दी। अनन्तर बड़े समारोहसे रामचन्द्र और सीताका पाणिग्रहण हुआ।

श्रीरामचन्द्रजी और सीताजी की विशेष बातें।

जब राजा दशरथको कैकेयीके स्वयम्बर समयमें स्वयम्बरसे असन्तुष्ट राज गणसे भीषण युद्ध करना पड़ा था, उस समय सर्व-गुण-सम्पन्न कैकेयीने दशरथको असाधारण सहायता दी थी। इसीसे महाराज दशरथने उस महायुद्धमें विजय लाभ की थी और सन्तुष्ट होकर कैकेयीको वरदान दिया था। कैकेयीने उस वरको उस समय न लेकर धरोहर रखनेको प्रार्थना की और महाराजने उसे स्वीकार किया। जब महाराज दशरथको राज्य करते बहुत समय हो गया तो उनको संसारसे वैराग्य आया और जिनेन्द्र दीक्षाके ग्रहण करनेको उद्यत हुए। पर कैकेयीके सुपुत्र "भरत" संसारसे उदासीन हो पितासे भी पहिले दीक्षित होना चाहते थे। कैकेयीको यह बात नहीं रुची। पति और पुत्र दोनोंका एकही साथ वियोग होते देख उसे बुद्धि उत्पन्न हुई और उसने विचारा कि, अब उस वरका समय है। यदि मैं उस वरसे अपने पुत्रको राजगद्दी दिला दूँ तो मेरा पुत्र दीक्षित न होगा। बस क्या था— रानीने पतिसे अपने धरोहर वर की याचना की। यद्यपि न्याय से राज्यका स्वामी होना रामचन्द्रको योग्य था पर दृढ़ प्रतिज्ञ महाराज दशरथने ऐसा नहीं किया अर्थात् भरतही को राज्य का अधिकारी बनाकर दीक्षित हो गये। रामचन्द्र जी सहन-

शील थे, पिताके आज्ञाकारी थे; इसीसे उन्होंने इस विषय में हस्तक्षेप नहीं किया और विचारा कि यदि हम इस राज्यमें रहेंगे तो प्रजा जन हमसे अधिक प्रेम करेंगे और हमें राज्य का अधिकारी होनेको वाधित करेंगे, इसलिये यहांसे चला जाना ही उचित होगा। रामचन्द्रजी बनको जानेके लिये उद्यत हुए। अपने पतिको बनवास करनेका उद्यमी देखकर सीता आकुल व्याकुल हो उठीं और अपने प्राणप्रियके साथ जानेका दृढ़ सङ्कल्प कर लिया। यद्यपि रामचन्द्रजीने बहुत कुछ समझाया बुझाया पर उनके हृदयमें एक भी न आई। सीता जानती थी कि स्त्रियोंको पतिके बिना स्वर्गमें भी रहना अच्छा नहीं लगता। पति ही नारियोंका प्राण है। वही पति नारियोंका सर्वस्व है। हमारा पति बनमें जाय और हम घरमें रहें यह बात कभी नहीं होगी इत्यादि बातें विचार रामके समझाने पर भी उसने अपने विचारको नहीं बदला और अन्तमें सीता अपने पतिहीके साथ बन जानेको उद्यत हो गई। इसी प्रकार लक्ष्मण भी अपने बड़े भाईका अनुगमन करनेको उद्यमी हो गये। जब रामचन्द्रजीने कोई उपाय नहीं देखा तब सीता और लक्ष्मण को साथ ले बनका मार्ग लिया। हा! कैसा विलक्षण यह पतिप्रेम है और कैसी गाढ़ भक्ति है जिससे प्रेरित हो आज सीता पैदल बन को जा रही है। जिस सीताने कभी पृथ्वीका स्पर्श भी नहीं किया था, जिसने कभी स्वप्नोंमें भी दुःख नहीं भोगा था,

जिसको यह भी ज्ञान नहीं था कि बन क्या वस्तु होती है, वही सीता पति-प्रेम लीन हो इस बनसे उस बनमें और उससे इसमें भ्रमण करती फिरती है। सीताको अब उन ऊँचे ऊँचे महलोंपर पुष्प-शय्या का सुख नहीं है। सीताको नाना प्रकारके स्वादु-सुखद व्यञ्जन नहीं हैं। सीताके शरीरमें अब सुवर्ण-मय और रत्न-मय आभूषण नहीं हैं। तात्पर्य कहने का यह है कि सीताके पास सुखकी कोई सामग्री नहीं है तौभी सीता सुखी है। उसका सुख अपार है। वह अपने सुखके सामने स्वर्गके सुखको तुच्छ समझती है। तीन लोक की विभूति भी सीता को सूखे तृणके समान है। केवल पति के चरण कमलोंके दर्शन मात्रसे ही सीता अपनेको परम सुखी मानती है। पतिकी सेवा करके ही अपनेको कृतकृत्य मानती है। यही कारण है कि सीता उस महा भीषण बन को सुन्दर महल समझती है और मार्गमें पड़े हुए कंटकोंको पुष्प-शय्या जानती है! इसी प्रकार नाना दुःखोंको और अनेक कष्टोंको सहन करती हुई सीता और रामचन्द्र को बहुत दिन बीत गये। जब रामचन्द्रने दण्डक बनमें प्रवेश किया उसी समय दुराचारी रावण ने अपने छलसे सीताको हरण कर लिया। रामचन्द्र और लक्ष्मण उस समय सीताके पास नहीं थे। इसलिये रावणको अपने कार्यमें किसी प्रकारकी बाधा भी नहीं पड़ी। जब रामचन्द्रने उस स्थान पर आकर देखा कि सीता नहीं है। तो अत्यन्त खिन्न और शोकातुर हुये।

पश्चात् सीताको ढूँढ़ने के लिये उद्यत हुये। इधर अविचारी रावण सीताको लङ्का में लाकर सीताको इच्छा पूर्वक अपनी घृणित कामनाको पूरी करना चाहता था। यहाँ पर पाठक पाठिकाओंको यह ध्यान रहे कि रावणने किसी अवसर पर यह प्रतिज्ञा ले ली थी कि "जो स्त्री अपनी इच्छा पूर्वक हमें चाहेगी उसीका मैं प्रणयी होऊँगा अन्यथा नहीं।" इसी कारण उस कामीने उस अबला पर बलात्कार नहीं किया। किन्तु सीताको राज़ी करनेकी विविध चेष्टा करनेपर भी उनका सुमेरु जैसा मन कुछ भी नहीं चला। उस समय सीताके समीप कोई सहायक नहीं था। सीताके प्राणनाथ सीतासे हज़ारों कोसोंकी दूरीपर थे। ऐसे दुर्घट समय में सीताको भयङ्कर भय बताये गये और सहस्रों प्रलोभन दिये गये। घोर यातना और तीव्र वेदनाओंसे सीताके विचारको बदलने की चेष्टाएँ की गईं—पर सीताने अपने हृदयको पाषाणका बनाकर उन सब दुखोंको सहन किया।

सीताका पातिव्रत निर्दोष और सत्य था। इसी कारण दुःख सहने पर भी उसने थोड़ा भी कलंक नहीं लगने दिया। महासती सीताने तबतक अन्न पानका ग्रहण नहीं किया जब तक उसने अपने प्राणनाथका कोई समाचार नहीं पाया। महावीर हनूमान (पवनञ्जय) ने सीताकी खोज की और सीताको लंका में देखा। देखकर रामचन्द्रका कुशल-समाचार सुनाया और आश्वासन दिया। इस समाचारको पाकर

ही सीताके जीमें जी आया और संकुचित जीवनलताका फिरसे विकास हुआ। इधर रामचन्द्रके शुभोदयसे बहुत से सहायक आन मिले थे। इसलिये बहुत से वीरोंको लेकर उन्होंने लंकापर चढ़ाई की। लंकामें आकर रामचन्द्रने रावणको कहला भेजा कि तुम यदि सीताको अपनी इच्छासे देना चाहते हो तो दे दो, अन्यथा हम बलात् सीताको ले जायँगे और तुम्हारा सर्वनाश हो जायगा। इस प्रकार उदारचेता रामचन्द्रने अपनी गम्भीरता और उदारताका परिचय दिया पर कामान्ध रावणको एक भी नहीं सुहाई। उसका विचार टससे मस नहीं हुआ। सो ठीक है—क्योंकि "विनाश काले विपरीति बुद्धिः।" इस नीतिके अनुसार विनाशके समय लोगोंकी उलटी मति हो ही जाती है। बस क्या था, दोनों पक्षके योद्धा गण रणाङ्गणमें उतर पड़े। महा घोर युद्ध ठना। क्रमशः रावणकी पराजय होती गई। परम रणासक्त रावणके विचारोंमें अंश मात्र भी परिवर्त्तन नहीं हुआ। बराबर युद्ध करता ही गया। रावण विषय लम्पटी था। कामके वशीभूत था। कर्तव्याकर्त्तव्य के ज्ञानसे शून्य था। महा अविनयी था—और अविवेकी था; इसलिये उसका अधःपतन हुआ। रामचन्द्रने उसे युद्धमें मारकर परलोक का मार्ग बताया। रावणकी कीर्त्ति सदाके लिये लोप हो गई और उसके मस्तक पर ऐसा कलंकका टीका लगा कि आज हज़ारों बरसोंके बीत जानेपर भी उसका मार्जन नहीं हुआ।

यही कारण है कि आज रावणका स्मरण आनेसे उसके ऊपर घृणा आती है और ऐतिहासिक दृष्टिसे निरादर का पात्र गिना जाता है। अस्तु। जो होना था हो गया। जो भवितव्यता होती है वह होही कर रहती है। उसे कोई नहीं मेट सकता। रामचन्द्रने लंकाको विजय किया और लंका का राज्य विभीषण को दिया और अपनी प्राण प्रिया पतिव्रता सीता को लेकर अयोध्या आये। यहाँ आकर इनका राज्याभिषेक हुआ। राजसिंहासन पर विराजमान् हुये। बहुत दिनोंसे बिछुड़े हुये अपने परिवार जनोंको सुखमय किया। प्रजा पर पुत्रकी तरह वात्सल्य भावसे शासन करने लगे। इसी प्रकार सीता और लक्ष्मण भरत इत्यादिकोंके साथ सुख से दिन बिताने लगे। अभी महाराज रामचन्द्रको गद्दीपर बैठे अधिक दिन नहीं हुये थे कि अकस्मात् एक घटना आ उपस्थित हुई। कुछ नगर के लोग समुदाय होकर राजभवनमें आये और आकर बैठ गये। आनेका कारण पूछने पर उन आगत जनोंके धृष्ट नेता "विजय" नामा पुरोहितने इन कर्णभेदी शब्दोंको उच्चारण किया कि महाराज !!! सीता जो इतने दिनोंतक रावणके घर पर रहीं और उनको बिना सोचे विचारे आपने अपने गृहमें प्रविष्ट कर लिया! हे प्रभो! आप प्रजाके शासक हैं। आपके आधीन बहुत जन समुदाय हैं। राजा का प्रजाके ऊपर अधिक प्रभाव पड़ता है। जैसा राजाका व्यवहार होता है वैसा ही व्यव-

हार उस राजाको प्रजाका हो जाता है। आपके इस व्यवहारको देखकर प्रजा उच्छृंखल और निरर्गल हो गई है इत्यादि।

यह बात सुनकर रामको अतिशय खेद हुआ। रामचन्द्र को अपनी प्रिया के सतीत्वमें लेशमात्र भी शंका नहीं थी। तोभी रामचन्द्र -बहुसंख्यक जन-समुदाय के शासक थे। सामाजिक नियमोंके पूर्ण मर्मी थे। पूर्वापर विचार में अति चतुर थे। वे जानते थे कि इनका कहना ठीक है। यदि आज हम ही ऐसा करेंगे तो हमारे आधीन प्रजा भी समाज के नियम परिपालन में स्वेच्छाचारप्रवृत्ति करेगी इत्यादि विवेचन कर दूरदर्शी स्वार्थ-हीन महात्मा रामचन्द्रने प्राणप्रिया सीता को परित्याग करनेका विचार कर लिया! सीता को गर्भ था। इसलिये उस पुण्यशीलाको निर्वाण भूमिके दर्शनोंकी इच्छा हुई और पतिसे निवेदन किया। रामचन्द्रको अच्छा अवसर मिल गया। अपने कृतान्त वक्र नामक सेनापतिको बुलाके कहा कि सीताको निर्वाण-भूमिके दर्शनोंके बहानेसे किसी वनमें छोड़कर चले आओ। कृतान्तवक्र सीताको रथमें बैठा कर भयङ्कर वनमें ले गया। वहाँ ले जाकर छोड़ दिया। उन वनों को देख सीताको आश्चर्य हुआ। उसने पूछा—क्या यही वह निर्वाण भूमि है? कृतान्त वक्र मनुष्य था। उसका हृदय पिघल गया और अश्रुओंकी धारा बहाने लगा। सीताके पूछने पर उसने सब वृत्तान्त

सुनाया। सीता इस आकस्मिक वज्र-पातसे मूर्छित हो गई। क्षणिक में सचेत हो मनस्विनी सीता (सचेत हो) कहने लगी भाई! रुदन मत करो। प्रसन्नतासे अपने स्वामीके पास जाओ। किन्तु वहां जाकर हमारा एक संदेशा अवश्य कह देना कि "जनापवादके भयसे मुझ निरपराधिनीको जिस तरह छोड़ दिया इसी प्रकार मिथ्यादृष्टियोंके भयसे जैन धर्म नहीं छोड़ देना।" देखो कैसा गम्भीर और मर्मस्पर्शी उपदेश है। ऐसी घोर दशामें सीताकी सुबुद्धि निस्तब्ध और चञ्चलता से बिलकुल शून्य है। आज उसकी जीवन-लीला संसारके सब सुखोंसे दूर पर है तोभी वह अपने स्वाभाविक धैर्य,साहस और नैतिक बलका अवलम्बन लेकर आपत्ति घटाकी सरलता से सहन करती चली जाती है। पाठक और पाठिकागण!! देखो संसारका कैसा दृश्य है! जो जानकी जगदीश रामचन्द्र बलभद्र की प्रधान रानी है वही हिंसक जन्तुओंसे पूर्ण बनमें असहाय होकर भ्रमण करे!!! कर्मोंकी गति बड़ी विचित्र और दुर्निवार है। यह कर्मोंका ही माहात्म्य है जो महासती सीता को इन असह्य आपत्तियोंको सहन करना पड़ा। अस्तु। सीताको छोड़कर कृतान्तवक्रने जाकर रामचन्द्रसे सब वृत्तान्त कह सुनाया और वह संदेशा भी सुनाया जो सीताने आते समय कह दिया था। रामचन्द्र गुणवती सीताके गुणानुवाद कर अपने दिन बिताने लगे। इधर एक दिन वज्रजंघ राजा हाथीको पकड़नेके लिये उसी बनमें आया था।

सीताको देखकर दया आई। उसे धर्मकी भगिनी मानकर अपने घर ले गया और सुखसे रक्खा। सीता अपने दिनोंको सुखसे बिताने लगी। नौ महीना पूर्ण होनेपर सीताको लव और कुश नामक महा शूरवीर दो पुत्रोंकी उत्पत्ति हुई। यह दोनों पुत्र बड़े हुये। एक दिन दैवयोगसे सिद्धार्थ नामक क्षुल्लक वहां आया। क्षुल्लकने इन बालकोंको होनहार देखकर शास्त्र और शस्त्र विद्या में अति निपुण करदिया। एकबार इन दोनों कुमारोंको देखने के लिये कलह-प्रिय नारद आये और आकर इन दोनों पुत्रोंको आशीर्वाद दिया कि तुम दोनों भाई राम और लक्ष्मणकी तरह समृद्धिशाली होओ। कौतुकी बालकोंसे रहा न गया और उन्होंने पूछ ही लिया कि हे महर्षि! वे राम और लक्ष्मण कौन हैं? उनका सब वृत्तान्त हमसे कहो। नारदने सीताके हरणसे लेकर त्याग पर्यन्तका सब वृत्तान्त कह सुनाया। पिताकी क्षतिपर दोनों बालकों को क्रोध आया और अयोध्याको प्रयाण किया। थोड़े ही दिनोंमें अपनी चतुरंगिणी सेना के साथ महायोद्धा दोनों भाई अयोध्या में पहुँच गये और राम लक्ष्मण के पास दूत भेजा। दूतने जाकर कहा, "महाराज! आपकी ख्याति सुनकर लव और कुश दो राज-पुत्र युद्ध के लिये आये हैं। यदि आपमें सामर्थ्य है तो इनके साथ युद्ध कीजिये।" राम और लक्ष्मणको बड़ा आश्चर्य हुआ और कहा "अच्छा ऐसा

ही करेंगे।" उभय पक्षके योद्धा गण संग्राम-भूमिमें अवतीर्ण होगये। महातुमुल युद्ध होने लगा। लव राम से और कुश लक्ष्मण से लड़ने लगे। लव और कुश दोनों भाई बड़े वीर थे। दोनोंने रणाङ्गणमें अपना अजेय पराक्रम दिखाया। लव ने रामके सात रथ तोड़ डाले। इधर कुश ने भी लक्ष्मण को अस्तव्यस्त कर दिया। कुशके एक बाणसे लक्ष्मण अचेत हो गये। तब उनका सारथी लक्ष्मणको अयोध्या ले जाने लगा। मार्गमें ही लक्ष्मण सचेत हुये और रणभूमि में लौट आये। लक्ष्मणने क्रुद्ध होकर कुशके ऊपर चक्र प्रहार किया। चक्र तीन प्रदक्षिणा देकर कुशको भुजापर स्थिर हो गया। उसे लेकर कुशने लक्ष्मणपर चलाया पर उसी तरह प्रदक्षिणा देकर लक्ष्मणको भुजापर स्थिर हो गया। इसी प्रकार उस चक्रने सात बार गतागत किया पर किसीपर वह चला नहीं अर्थात् किसीका प्राणाघात उससे नहीं हुआ। लक्ष्मण अधीर और निरुद्यमी हो गये। चक्र न चलनेसे बड़ा आश्चर्य हुआ। ऊपर विमानमें सीता, भामण्डल और नारद प्रभृति इस बन्धुसंग्रामको देख रहे थे। नारदने आकर कहा, क्यों अधीर हो गये? लक्ष्मण लज्जित हुए। इधर नारदने कहा यह दोनों सीतासुत हैं। इस बातको सुनकर असीम आनन्द हुआ। लक्ष्मण अपने बड़े भाई रामचन्द्रके पास गये और सब वृत्तान्त कहा। दोनों भाई युद्धके आरम्भको छोड़कर अपने वीर पुत्रोंके सम्मुख आये। राम-

चन्द्र और लक्ष्मणको आते देख दोनों भाई रथसे उतर पड़े और हाथ जोड़कर विनय-नम्र हो रामचन्द्रके चरणोंमें पड़ गये। रामचन्द्रने बड़े हर्षसे आलिङ्गन किया। फिर दोनों भाइयोंने लक्ष्मणको नमस्कार किया और लक्ष्मणने अनेक शुभाशीर्वाद दिये। पश्चात् बड़े उत्सव और समारोहके साथ दोनों पुत्रोंका नगर-प्रवेश हुआ और कुश युवराज पदपर अभिषिक्त किया गया। एक दिन सब मन्त्रियोंने मिलकर रामचन्द्रसे कहा कि महाराज! जगत्प्रसिद्ध महासती सीताको बुलाना चाहिये। रामचन्द्रने कहा उसके शीलमें हमें कुछ भी सन्देह नहीं, पर लोकापवादके भयसे मैंने उसे छोड़ा। कोई ऐसा उपाय करो जिससे जनापवाद छूट जाय। सुग्रीवादिने पुण्डरीकिणी नगरीमें जाकर सीताको सब वृत्तान्त सुनाया और सीताने उनकी बातोंको स्वीकार किया तथा पुष्पक विमानमें चढ़कर सीता सन्ध्या समय अयोध्यानगरीके महेन्द्र नामक एक उद्यानमें ठहरी। प्रभात होतेही रामचन्द्र जी और लक्ष्मणजीने जिनेन्द्र भगवान्‌की भक्तिभावसे पूजाकी और अपने अपने उचित स्थानों पर बैठ गये। थोड़ी देरबाद सीता आई और वह भी अपने उचित स्थानमें बैठ गई। रामचन्द्रने कहा मैंने तुम्हें केवल जनापवादके भयसे छोड़ा है। इसलिये कोई ऐसा उपाय करो जिससे सर्वसाधारणको तुम्हारी निर्दोषताकी प्रतीत हो और तुम्हारे अखण्ड पातिव्रत पर सबका विश्वास हो। सीताने पतिके प्रस्तावको सहर्ष

स्वीकार किया और कहा कि अवश्यही मैं दिव्य परीक्षा द्वारा आरोपित दोषका उद्धार करूँगी। सीताकी आज्ञानुसार एक सुन्दर स्थानपर कुण्ड बनवाया गया और उसमें कालागुरु, अगर, चन्दन भरवाया गया और उसमें अग्नि लगाई गई। उस समयका दृश्य बहुत मनोहर और भीषण था। असंख्य नरनारी इस अपूर्व दृश्यको देखनेके लिये उपस्थित थे। सभीके हृदयमें नाना भाँतिके विचार उत्पन्न होने लगे। यह सब हो रहा था कि इतनेहीमें सीताने गम्भीरतर स्वरसे कहा:—

"मनसि वचसि काये जागरे स्वप्न मार्गे
मम यदि पति भावो राघवादन्यपुंस:
तदिह दह शरीरं पावके मामकीदम्
सुकृतविकृतभीतर्देव साक्षी त्वमेव"

अर्थात् हे उपस्थित महानुभावो! ध्यानसे सुनो। यदि मैंने रामचन्द्रको छोड़कर अन्य पुरुषकी मन, वचन, कायसे स्वप्नमें भी कामना की हो, तो यह मेरा शरीर इस प्रचण्ड अग्निमें भस्म हो जाय। ऐसी प्रतिज्ञा कर श्रीसीता उस धधकती हुई वन्हिमें निःशंक हो कूद पड़ी। इसी अवसरपर इन्द्रादिक देव किसी कार्यको जा रहे थे। मार्गमें जब इस घटना-स्थलपर आये तो सीताको अति सती जानकर इन्द्रने शीलव्रतकी प्रभावनाके लिये "मेघकेतु" नामा देवको वहाँ नियुक्त किया। और वह देव वहाँपर आगया। सीताने प्रवेश किया ही था

कि दर्शकगणोंका हा! जानकी!! हा! सीते! ऐसा हाहाकार मच गया और महान् कोलाहल होने लगा, रामचन्द्र मूर्छित होगये, लक्ष्मण विह्वल होगये, और पुत्र भी अतिशय खिन्न हो गये। तब देवने अपनी विक्रियासे उस अग्नि-कुंडको एक मनोहर तालाब बनाया। तालाबके मध्य भागमें सहस्र दलका एक कमल बनाया और कमलकी मध्य कर्णिकापर एक सिंहासन निर्माण कर उस पर सीताको बैठाया और सिंहासनके ऊपर मणिखचित मंडप बनाया। ऊपर से देवोंने प्रसन्न होकर आकाश-मार्गसे पञ्चाश्चर्यों की वर्षा की और साथ साथ उस तालाबका प्रवाह इतना बढ़ा कि दर्शकगणोंकी प्राणरक्षा करना असंभवसा मालूम होने लगा। धीरे धीरे पानी बढ़ा और बढ़कर दर्शकोंके गलों तक आ गया। घोर आक्रन्दन और आर्त्त-निनाद से दिशाएँ गूँज उठीं। दशों दिशायें जलसे प्लावित हो गई और त्राहि त्राहि का कर्णवेधी स्वर सब जगह होने लगा। जब इस बातका सर्व-साधारणको ज्ञान हो-गया कि यह सब माहात्म्य पतिव्रता सीताके निर्दोष शील-व्रतका है, तब देवने अपनी मायाका संवरण किया। दर्शकों को शान्ति हुई और सीता की निर्दोषताकी प्रतीति हुई। तथा रामचन्द्रके शुद्ध और निर्दोष शासन का परिचय मिला।

रामचन्द्र भी अपनी पत्नीकी सत्यता और पातिव्रतपर मुग्ध होगये तथा अपनी पत्नीको देवकृत अतिशय से सभा-

नित देखकर फूले अंग न समाये और आनन्द के ऐसे आवेश में आये कि सीताके पास आकर अपने अपराधोंकी क्षमा मांगने लगे और कहा हे प्रिये! मुझे क्षमा करो केवल जमापवाद से ही मैंने तुमको छोड़ा अब आओ एकबार फिर उसी प्रेमबन्धनसे बँधें और संसारके नाना सुखोंका अनुभव करें। भोगोंसे विरक्त सीताने उत्तर दिया आपको तो क्षमा ही है पर जिन कर्मोंने मुझे ऐसा नाच नचाया है उन कर्मोंके लिये क्षमा कैसे हो सकती है? उन कर्मोंके नाश करनेके लिए घोर तपश्चरण ही शरण है। संसारका समस्त सार देख लिया सिवाय दुःख के सुख का लेश भी नहीं है। यह प्राणी इन्हीं जंजालमें फंस ममत्व-बुद्धि करता है। वास्तवमें कोई किसीका नहीं। 'यह हमारी माता है' 'यह हमारे भाई बहिन हैं,' 'यह हमारी संपत्ति है' इत्यादि आडम्बरोंसे यह जीव ज्ञानावरण, दर्शनावरण इत्यादि आठ कर्मोंका निरन्तर बन्ध करता रहता है तथा इन्हीं कर्मोंके उदय से नरक तिर्यञ्चादि गतियों में नाना प्रकारके कष्ट और यातना सहता है जबतक यह जीव सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान, सम्यक् चारित्र को प्राप्त नहीं कर लेगा तबतक वह संसारमें निरन्तर परिभ्रमण करता रहेगा। किन्तु अष्ट कर्मोंके नाश होनेसे उत्पन्न हुए उस अतीन्द्रिय सुखके लेशको भी नहीं पावेगा। प्राणीमात्रका लक्ष्य सुख की ओर है पर यह जीव उस के प्राप्त करनेका मार्ग नहीं जानकर बान्धवादि के प्रेमबन्धन

में पड़कर उस सुखसे सदा विलग ही रहता है। मैं ऐसी मन्दभागिनी हूँ कि अनादि से नाना योनियोंमें परिभ्रमण किया पर अभी तक अपने ध्येयकी प्राप्ति नहीं हुई। उस परमपद पानेका सरल उपाय जैनेन्द्री दीक्षा ही है। चारों गतियोंमें मनुष्य गति ही ऐसी गति है जिसमें उत्तम क्षमा, विवशाधर्म, अनित्याशरणादि, द्वादश भावना, तथा अन्य अन्य धर्मके साधनोंको कर सकता है। जिस जीवने मनुष्यपर्याय पाकर भी कठिन तपश्चरणादि से आत्माका कल्याण नहीं किया और केवल विषयादिक की पुष्टिहीमें इस शरीर का उपयोग किया उस नराधमीने राखके लिये मुक्ताहार को दग्ध किया। क्षणिक सुखके लिये नित्य सुखमें अन्तराय किया इसलिये अब जाओ मैं तुम्हारे साथ नहीं जाऊंगी किन्तु जैनेन्द्री दीक्षा धारण कर कर्म समूहका नाश करूँगी। इतना कह कर सीताने अपने केश उत्पाटनकर रामचन्द्रके सामने फेंक दिये और देवपरिवार के साथ श्री जिनेन्द्र भगवान्के समवशरणमें जाकर जिनेन्द्र भगवानको वन्दनाकर "पृथ्वीमति" नामिका अर्जिकाके समीप दीक्षा ले ली और बासठ वर्ष तक कठिन तपस्या कर तैंतीस दिन का सन्यास धारण करके शरीर को छोड़ अच्युत नामा सोलहवें स्वर्गमें जा स्वयंप्रभा नामा देवी हुई।

पाठक और पाठिका गण! आपने भली भाँति जान लिया होगा कि सीताकी सम्पूर्ण जीवनलीला दुःखमय होती है।

सीता पर अनेक दुर्घटनायें हुई हैं। उन सीता ने निःसहाय होकर भी कैसी सरलतासे सबको सहन किया। सीता अबला स्त्री थी। असहाय नारी थी। पूर्वमें उपार्जन किये हुये कर्मसमूह के वशीभूत थी अतएव एक के ऊपर एक आपत्ति आती रही पर सीता हाथपर हाथ रखकर बैठ नहीं गई। उसने आत्मावलम्बन लेकर असाधारण पौरुष का परिचय दिया। हम देखते हैं कि यदि हमपर थोड़ी भी आपत्ति आ जाती है तो हम मृततुल्य हो जाते हैं। हमें कर्तव्य अकर्तव्य का ज्ञान नहीं रहता इसका कारण स्पष्ट है। हममें वह स्वात्मावलम्बन नहीं है। हम सर्वदा दूसरोंकी बाट जोहा करते हैं। हमारे पास वह सीताका सा शील नहीं है। हम सत्य बोलना नहीं जानते। हम इन्द्रियोंके वशमें पड़े हुये हैं। हमें विषय-कषायसे इतनी प्रीति है कि हमें धर्मके कार्य नहीं भाते। हमारी इन्द्रियाँ इतनी चञ्चल और चपल हैं कि हम किसी सुन्दर वस्तुको देखते हैं तो हमें मोह अवश्य हो जाता है। भला बतलाइये जब हमारी यह दशा है तो हम कैसे आत्मिक उन्नति कर सकते हैं? हम सीताके साहस से कोसों दूर हैं। हममें सीताकीसी जितेन्द्रियताका लेश नहीं है। यही कारण है कि हम अभी तक अपने वास्तविक सत्यके मार्गपर नहीं पड़ने हैं प्रत्युत दिनों दिन गिरते चले जाते हैं।

हम सीताके चरित्रको प्रतिदिन पढ़ते हैं और अनेक

व्याख्यान और उपदेशोंमें सीता की गुण-गाथा सुनते हैं पर जब हम यह सोचते हैं कि हमारे कितने भाई और कितनी भगनी सीताके गुणोंका अनुसरण करती हैं तो हमें बिल्कुल निराश होना पड़ता है। यदि हमारे समाजमें दो चार ही विदुषी सीता समान उत्पन्न हो जायँ तो थोड़े समयमें ही हमारा जैनसमाज उन्नतिके शिखरपर पहुँच जाय।

हमें आशा और विश्वास है कि जिनशासन के महत्व और उन्नति के अभिलाषी पाठक और पाठिका इस पुण्यात्मा सीताके चरित्र को पढ़कर कुछ न कुछ लाभ अवश्य उठायेंगे।



धर्मगतप्राणा

महारानी चेलना देवी।

"चेलना रानी थी श्रेणिक राजकी।
विद्वती पतिव्रतरता सिरताज थी॥
उसने निज अध्यातमिक बलसे यथा।
धर्ममय पतिको किया सुनिये कथा॥"

अनुमान २५०० वर्षसे अधिक समय व्यतीत हो चुका। वैशालीपुर (सिन्धुप्रदेश) में महारानी चेलना का जन्म हुआ था। इनके पिताका नाम महाराज 'चेटक' था जो उस नगरका राज्य शान्ति पूर्वक करते थे। माताका नाम रानी 'सुप्रभा' था।

इनको छः बहिनें थीं, जिनमें पांच इनसे बड़ी और एक छोटी थी। सबसे बड़ी बहिन राजकुमारी प्रियकारिणी (त्रिशला) कुण्डलपुर (विहार) के सिद्धार्थ नामक

राजासे विवाही थी। इन्हीं शुभ संयोगसे, जैनधर्मको सारे भूमण्डलमें विजय वैजयन्ती उड़ानेवाले, अन्तिम तीर्थंकर, श्री वर्द्धमान (महावीर) स्वामीका जन्म हुआ।

इन सातों राजकुमारियोंको बाल्यावस्थामें उत्तमोत्तम शिक्षाएँ दी गईं थीं जिनसे इन्होंने और और विषयोंके साथ साथ सत्यधर्म जैनधर्मका मर्म अच्छी तरह समझ लिया था।

संयोगवश राजकुमारी चेलनाकी शादी राजगृही(विहार) के राजा श्रेणिकके साथ हुई। महाराज श्रेणिक बौद्ध धर्मावलम्बी थे। इसलिये दोनों स्वामी और भार्या अपने अपने धर्मकी प्रशंसा कर एक दूसरेको अपने धर्ममें लानेकी प्रेमपूर्वक इच्छा करने लगे। ऊपर लिखा जा चुका है कि राजकुमारी चेलनाको बाल्यकालमें स्वधर्म जैनधर्मकी शिक्षा उत्तम रीतिसे दी गई थी जिससे इस विषयमें उनका ज्ञान दिनों दिन बढ़ता गया और विवाहसम्बन्धके समय वे जैनधर्मकी विशेष पण्डिता हो गईं थीं। इसी कारण राजा श्रेणिकके कई उपदेश व प्रयत्न निष्फल हुए और अन्तमें राजाको ही इस धर्मयुद्धमें पराजित होकर जैनधर्मको खुशीके साथ धारण करना पड़ा, जिसका वर्णन इस प्रकार है कि :—

एक समय राजा और रानी सुख-आसनपर बैठे परस्पर प्रेमालाप कर रहे थे कि बौद्ध-धर्मावलम्बी राजगुरु जिनका नाम "जठराग्नि" था पधारे। महात्मा जठराग्निको भक्ती

भाँति ज्ञात था कि महारानी जैनधर्मावलम्बी हैं। इसीलिये अवसर पाकर कटाक्ष-पूर्ण शब्दोंमें कहा कि—"क्षपणक (जैनगुरु) मरकर क्षपणक (भिक्षुक) होते हैं। महारानी को इस असत्य वाक्यसे बहुत सन्ताप हुआ। होना ही चाहिये, क्योंकि एक सत्यधर्मकी अनुयायिनी अपने धर्मकी इस प्रकार निन्दा नहीं सह सकतीं। परन्तु उस समय महारानीने शान्ति धारण कर विशेष कुछ न कह राजगुरुसे पूछा "महाराज! आपने कैसे जाना?" उत्तर मिला कि 'मुझे विष्णु भगवान्‌ने ऐसी ही विद्या दी है।" महारानीने समझ लिया कि महाराज गप्पाष्टक झाड़ रहे हैं। इनकी परीक्षा करनी चाहिये, ताकि सन्देह की निवृत्ति हो। उन्होंने प्रगट रूपसे कहा कि महाराज! अगर आप ऐसी बुद्धि रखते हैं तो हमारे महलमें भोजनके लिये कल आपका निमन्त्रण है। महाराजने सहर्ष स्वीकार कर लिया। यथासमय अपने कुछ चुने हुए शिष्योंको लेकर नियत स्थानपर आ पहुँचे और जूते उतार बैठकखानेमें बैठे। महारानी चेलना की आज्ञानुसार एक दासीने कुछ जूते उठाकर खाद्य पदार्थों में इस तरह मिलाये कि जिससे बिल्कुल मालूम न पड़े। पश्चात् भोजन कराया गया। महाराजने अपने शिष्यों समेत खूब अच्छी तरह भोजन किया। अब जाने लगे तब देखा कि कुछ जूतोंका पता नहीं। महलके अन्दरसे जहां सैकड़ों संगीनदारोंका दिन रात पहरा रहता है कौन जूते ले जा

समझता है। इसलिये महारानीसे पूछा गया। महारानीने नम्रता पूर्वक उत्तर दिया कि आप तो बुद्धि रखते हुए भी इस तरहके प्रश्न करते हैं। आखिर सब हाल विदित हो गया और अपमानित होकर राजगुरु अपने स्थानको प्रस्थानित हुए। उनको अपनी गप्पाष्टकोंका पूरा प्रायश्चित्त मिला। महाराज श्रेणिकको अपने प्रसिद्ध विद्वान् राजगुरुकी इस तरह कार्यविमूढता देख बौद्धधर्मसे कुछ अश्रद्धा होगई। महारानीने यह देख अपने कार्यकी सफलताके चिह्न समझ और भी उत्तम उपायोंसे काम लेना आरम्भ किया।

एक समयका वर्णन है जबकि बौद्धधर्मावलम्बी साधुगण एक झोंपड़ीमें बैठे परमेश्वरकी ओर ध्यान लगाये थे। राजा रानी सहित वहांसे निकले। जिन धर्मकी परम भक्त, शुद्ध-हृदय महारानी चेलना का इस पहुंचे हुए साधुओंकी भी परीक्षा करनेका विचार हुआ। उन्होंने अपने अनुचरों द्वारा उस झोंपड़ीमें अग्नि लगवा दी। अग्निको प्रज्वलित देख साधुओंने ध्यान वगैरः सब छोड़कर भागना आरम्भ किया। अन्तमें कुछ ही मिनटोंके अन्दर सारी झोंपड़ी खाली होगई। राजा और रानी दोनों इस मनोहर दृश्यको छिपे हुए देख रहे थे। उसी समय वह थोड़ी सी अग्नि शान्त की गई। बड़े विद्वान् और तपस्वी महात्माओंकी बगुलाभक्ति इस तरह दूसरी बार भी ज़ाहिर हो गई। इस तरह अपने धर्मकी हंसी उड़ाते देख महाराजा महारानीसे अवश्य रुष्ट हुए तोभी

महारानी अपने कार्यमें तत्पर रहीं। क्योंकि उनको अपने स्वामीकी आत्माको यथेष्ट शान्ति देनेकी इच्छा थी।

महाराजा श्रेणिक एक दिन शामके समय शिकार खेलकर आ रहे थे। उन्होंने मार्गमें एक जैन मुनिको जोकि नग्नमुद्रा धारण किये शान्तिके स्वरूप थे ध्यानमें लवलीन अचल खड़े हुए देखा। राजाने धर्मद्वेषसे मुनिपर अपने शिकारी कुत्ते छोड़े परन्तु मुनिके प्रभावसे वे कुत्ते द्वेषबुद्धि छोड़कर मुनिके पास जाकर बैठ गये। महाराजाको यह और भी बुरा लगा। इसलिये उन्होंने स्वयं वहीं पड़े हुए एक मृतक सर्पको उठाकर मुनिके गलेमें डाल महलका रास्ता लिया।

चार दिन व्यतीत होनेपर रात्रिके समय जबकि महाराजा और महारानी सुख-शय्या पर बैठे परस्पर वार्त्तालाप कर रहे थे, महाराजने मुनिके साथ किये हुए कार्यका वृत्तान्त भी सुना दिया। महारानीको इससे बहुत कष्ट हुआ। अपनी प्राणप्यारी भार्याको सन्तापित देखकर महाराज बोले कि क्या अबतक वह मृतक सर्प मुनिके गलेमें पड़ा रहा होगा? जो इतना सन्ताप करती हो। महारानीने सरल वाणीसे उत्तर दिया कि जबतक कोई अन्य पुरुष उस सर्पको अलग नहीं करेगा तबतक वे मुनि अपने उपसर्गको जानकर वहीं अचल रहेंगे।

राजाको यह जानकर आश्चर्य हुआ और उसी समय दोनों

से सेवकों द्वारा दीपकोंका प्रकाश कराकर रानी सहित मुनि के स्थानको गये। वहाँ आकर देखा तो मुनि महाराज शान्ति मुद्रा धारण किये उसी आसन से खड़े हुए हैं जैसे कि चार दिन पहले थे। गलेमें उसी तरह सर्प पड़ा हुआ है जैसा कि डाला गया था। राजाके हृदयमें एकदम भक्तिका समुद्र लहरा उठा। उन्होंने मुनिकी बहुत प्रकारसे स्तुति की। रात्रि होनेसे मुनि महाराज कुछ बोल न सके। अतः राजा और रानी दोनोंने शेष रात्रि उन्हींके चरणारविन्दोंके समीप व्यतीत की। प्रातःकाल होते ही राजा और रानीने मुनि महाराजको वन्दना की। महाराजने दोनोंको समान रूपसे "धर्मवृद्धि" आशीर्वाद दिया। राजाके भक्तिरूपी समुद्रका तो अब ठिकाना ही क्या हो सकता है? उन्होंने समझ लिया कि यही सत्यगुरु हैं, जिनके स्वच्छ हृदयमें अपराधी और निर-पराधी बराबर हैं। असीम भक्तिके कारण महाराजने मुनि के चरणोंमें पूर्वधर्मानुसार अपने सिरको अर्पण करनेकी इच्छा की। मुनि अन्तर्यामी थे इसलिये उन्होंने इनका विचार समझ लिया तथा यह कार्य पाप-कर्म बतलाकर धर्मोपदेश दिया। राजाको बहुत आश्चर्य हुआ। अब उनकी श्रद्धा जैनधर्म में पूर्ण रूपसे होगयी। रानीने अपने सारे परिश्रमको सफल समझा तथा दम्पति यथार्थ आनन्दके साथ काल व्यतीत करने लगे।

रानी चेलनाके क्रमशः कुणिक, वारिषेण, हल्ल, विहल्ल,

जितशत्रु, गजकुमार और मेघकुमार ये सात पुत्ररत्न उत्पन्न हुए। जोकि विद्या, बल और रूपमें इन्द्रको भी विजय करते थे।

एक वनमाली (जङ्गल मुहकमेके अफ़सर) ने राजसभामें आकर राजा श्रेणिकसे निवेदन किया कि महाराज! आपके राज्यके अन्तर्गत विपुलाचल (विन्ध्याचल) पर्व्वत पर जगद्गुरू २४ वें तीर्थंकर वर्द्धमान स्वामी संसारी जीवोंके उपकारार्थ उपदेश देनेको पधारे हैं। राजाने इस समाचारको पाकर बहुत आनन्द मनाया तथा महारानी चेलना और सर्व कुटुम्बियों सहित स्वामीजीके दर्शनोंके निमित्त गये। विपुलाचल पर्वत पर पहुँच कर स्वामी जीके उपदेश देनेकी सभा, जिसे समवशरण कहते हैं, की प्राकृतिक रचना देखकर चकित हो गये। केन्द्रस्थलमें स्वामी जी अनुपमेय सिंहासन पर विराजमान हैं। जिनके चारों तरफ़ गोलाकार बारह सभास्थल बने हुए हैं, जिनमें क्रमसे मुनि, कल्पवासिनी देवियाँ, स्त्रियाँ, ज्योतिषी देवियाँ, व्यंतर देवियाँ, भवन-वासिनी देवियाँ, भवनवासी देव, व्यंतर देव, ज्योतिषी देव, कल्पवासी देव, मनुष्य, विद्याधर भूमि गोचरी और तिर्यञ्च विराजमान हैं। सब द्वेष भाव छोड़ धर्मश्रवण कर रहे हैं। यद्यपि ये सभायें स्वामीजीको चारों तरफ़ स्थित हैं; तौभी असीम प्रभावके कारण सब श्रोतागणको यही ज्ञात होता है कि महाराज अपने मुखमण्डलको हमारी ही तरफ़ फैलाकर

उपदेश दे रहे हैं। महाराजा और महारानीने स्वामीजीके दर्शन व पूजन करके अपने जन्मको कृतार्थ समझा।

नियमानुसार महारानी चेलना तीसरे और महाराजा श्रेणिक ग्यारहवें सभास्थलमें विराजमान हुए। धर्म श्रवण कर तथा कई शंकाओंकी निवृत्ति कर महाराजाने अपने परिणामोंको (अन्य निर्मूल मतोंको बिल्कुल छोड़कर) खूब स्वच्छ किया, जिससे उनको प्रबल पुण्य कर्मोंका बन्ध हुआ। इन्हीं प्रबल पुण्य कर्मोंके अखण्ड प्रतापसे आगामी कालमें महोपम नामक प्रथम तीर्थंकर होकर जगत्के पूज्य होंगे।

उक्त सभामें श्री सम्मेदशिखरजीकी अनुपम महिमा सुनी जहांसे कि बीस तीर्थंकर संसारके आवागमनको छोड़ परम सुख रूप मोक्षको गये हैं। इसीलिये महाराजा और महारानी ने उस पुण्य भूमिके दर्शन करनेकी इच्छा की और शुभ मुहूर्त्तमें प्रस्थान किया। परन्तु ऊपर कह चुके हैं कि महाराजा श्रेणिकने एक जैन मुनिके गलेमें अपमानके साथ मृतक सर्प डाला था। इसी पाप कर्मके उदयसे मार्गमें उन्हें कई बड़े बड़े विघ्नोंका सामना करना पड़ा। तौभी वे उस पवित्र तीर्थके दर्शन न कर सके और वापिस अपनी राजधानी को लौट आये। महारानी चेलनाने निर्विघ्नतासे तीर्थकी वन्दना की और अपने स्थानको आईं।

अपनी अवस्था को पूर्ण होती देख युवराज कुणिकको राज्यभार देकर महाराजने एकान्तमें रहकर ईश्वरोपासना

करनी शुरू की। परन्तु राज्यभारसे मत्त होनेके कारण कुणिककी प्रवृत्ति बिगड़ गई। इसलिये राजा श्रेणिकको अन्त समय सुख नहीं हुआ।

थोड़े ही दिनोंके बाद रानी चेलना भी दीक्षा धारण कर समाधि मरण करके स्वर्ग सिधारीं।

देखिये! राजकुमारी चेलना ने किस कौशलसे अपने स्वामीको सत्यधर्ममें श्रद्धावान् कराया तथा जगत्‌का पूज्य बनाया जोकि एक आदर्शनीय है।



४

सती-शिरोमणि

श्रीमती मैनासुन्दरी।

"साध्वी समीचीना सदा जिन भक्तिसे परि भाविता।
कर चक्रवर दृढ़ नेमसे पति प्रीतिसे परि प्लाविता॥
जिसने अलौकिक शक्तिसे पति कुष्टको वारण किया।
वह धन्य रमणी रत्न है श्रीपाल नृपवरकी प्रिया॥"

महारानी मैनासुन्दरी इसी भारतवर्षकी विश्वविदित उज्जैन नगरीके राजा पहुपाल की कनिष्ठा पुत्री थीं। इनकी ज्येष्ठा भगिनी का नाम सुरसुन्दरी था। दोनों राजकुमारियोंकी शिक्षाका प्रबन्ध उनकी इच्छानुसार क्रमशः शैव और जैन पुरोहितको दिया गया। शिक्षा समाप्त हो चुकने पर इन्होंने यौवनावस्थामें पदार्पण किया। राजाको इनके विवाह की चिन्ता हुई और उन्होंने प्रथम ज्येष्ठा पुत्री सुरसुन्दरीको बुलाकर प्रश्न किया कि तुम्हारी अवस्था अब विवाह-योग्य

हो गई है; इसलिये तुम्हारी इच्छा जिसके साथ विवाह सम्बन्ध करने की है सो कहो। तदनुसार कार्य किया जावे। कुमारीके उत्तरानुसार उसकी शादी कौशांबीपुरके राजकुमार हरिवाहनसे करनी निश्चय कर दी गई। इसी तरह राजाने दूसरी पुत्री मैनासुन्दरी को बुलाकर प्रश्न किया। परन्तु राजकुमारी मैनासुन्दरी बहुत ही लज्जावती और गुणवती कन्या थी। उसे यह लज्जारहित प्रश्न कुल वधुओंसे किया जाना अनुचित मालूम हुआ। इसलिये लज्जावश होकर उसने इसका कुछ उत्तर नहीं दिया। राजाके अनुरोधसे उसने विनय की कि उच्च कुलकी प्रतिष्ठित कुलांगनाएँ अपने पिता माताओंसे कभी अपने लिये वरकी इच्छा प्रगट नहीं करतीं। पिता-माता उनका जिसके साथ सम्बन्ध कर देते वही उनका सर्वस्व हो जाता है और उसीसे वे सन्तुष्ट रहती हैं। आपका मुझसे यह प्रश्न करना अनुचित है। राजा सुन्दरीके इस स्वाधीनता और महत्वपूर्ण उत्तर से तथा और भी कई उत्तरोंसे, जिनमें कि उसने सबसे श्रेष्ठ राजाको न बतलाकर अपने भाग्यको बतलाया था सुन्दरीसे असन्तुष्ट हो गया और क्रोधके आवेशमें आकर उसके भाग्य-गर्वको नष्ट करनेके लिये उचितानुचितका कुछ विचार न कर प्रयत्न सोचने लगा। राजाकी वह कुवासना इस तरह पूर्ण हुई :—

एक दिन राजा प्रहुपाल ससैन्य वनक्रीड़ा करता हुआ एक भयंकर जङ्गलमें जा पहुँचा जहाँ चम्पापुरका राजा

श्रीपाल अपने पूर्व कृत कर्मों के उदयसे कई अनुचरों सहित कुष्टरोगसे अत्यन्त पीड़ित हो अपने शरीरकी दुर्गन्धसे प्रजा जनोंको कष्ट न हो इसलिये चाचा वीरदमनको राज्यभार सौंप राजधानी छोड़ जङ्गल जङ्गल भटकता हुआ वहाँ ठहरा था। उसके शरीरकी दुर्गन्ध चारों ओर फैल रही थी। राजा पहुपाल राजा श्रीपालके अनुचरोंसे यह सब हाल जानकर अपनी कनिष्ठ पुत्री मैना सुन्दरीके भाग्य-रूपी गर्वका बदला चुकाने का अच्छा अवसर आया जान शीघ्र श्रीपालके पास गया और आदर सत्कारके पश्चात् कृत्रिम प्रसन्नता प्रगट कर अपनी सुकुमारी पुत्री मैनासुन्दरी देनेका सङ्कल्पकर उसे टीका कर दिया। राजा श्रीपाल इसका भेद न समझ बहुत प्रसन्न हुआ। यहाँ राजा पहुपालने राजप्रासादोंमें आकर सुन्दरीको उसके भाग्यकी प्रबलताका पराजय रूप यह समाचार सुनाया। परन्तु सुन्दरी ने यह सहर्ष मञ्जूर किया और शीघ्र अपने स्वामीसे मिलनेके लिये उत्कण्ठित हुई। उसको किसी तरह का भी सङ्कल्प विकल्प नहीं हुआ। राजा पहुपाल कुमारीकी यह कृति देख और भी रुष्ट हुआ। राजमहिषी, प्रधान मन्त्री, प्रधान सेनापति, राजपुरोहित आदिके समझानेपर भी राजाने कुछ ध्यान न दे क्रोध व अहङ्कारसे उन्मत्त होकर शीघ्र ही शुभ तिथिपर कुमारीका विवाह उस कुष्ट रोगसे कुरूप हुए राजा श्रीपालसे कर दिया। कुमारीने अपने पिताकी आज्ञा को शिरोधार्य कर इस अयोग्य कृत्यमें किसी तरहकी बाधा

नहीं दी और राजा श्रीपालको अपना स्वामी बनाया। उज्जैन के प्रजाजन इस सम्बन्ध पर बहुत असन्तुष्ट हुए तथा उन्होंने राजाको बहुत धिक्कारा। अन्तमें जब सुकुमारी सरला राजकुमारी मैनासुन्दरी रोगसे कुरूप पतिके साथ अपने महलोंसे विदा होकर पतिके स्थानको जाने लगी तब तो राजा पहुपाल के ज्ञानचक्षु खुल गये। उन्होंने अपने किये पर बहुत पश्चात्ताप किया और सुन्दरीसे क्षमा देनेकी प्रार्थना की। कुमारीने अपने भाग्यका ही फल समझ कर राजाको सन्तुष्ट किया और आनन्दसे पतिके साथ गई।

सुन्दरी स्वामीके शिविरमें आकर अपनेको कृतकृत्य समझने लगी। उसी दिनसे उन्होंने स्वामीके रोगकी निवृत्तिके लिये उपाय सोचना प्रारम्भ कर दिया तथा उनकी हर तरह से सेवा सुश्रूषा करने लगी। यद्यपि राजा श्रीपालने कुमारी मैना सुन्दरीको उसके रूप, यौवन, सुकुमारता पर ध्यान देकर तथा उस राजप्रासादोंमें सुखसे रहनेवाली कोमलाङ्गीको इस शिविरमें रहनेकी तकलीफोंपर ध्यान देकर उसे बहुत समझाया कि जबतक हमारा यह रोग दूर न होजावे तबतक तुम अपने पिता माताके पास सुखसे रहो। परन्तु सती साध्वी सुन्दरीने सब सुखोंसे श्रेष्ठ पति-सेवा ही समझ कर स्वामीके चरणोंकी सेवामें ही रहना श्रेयस्कर समझा।

एक दिन राजकुमारी मैनासुन्दरी उज्जैन में जिनमन्दिरों के दर्शनोंको गईं। दर्शनोंके पश्चात् अपने पूज्य गुरुजीके

भी दर्शन किये और समय पाकर अपने स्वामीके रोगका सम्पूर्ण वृत्तान्त सुनाकर उसकी निवृत्तिका कारण पूछा। गुरुजी बड़े प्रतिभाशाली पण्डित थे इसलिये उन्होंने कुमारी को सम्बोधित करके उसके स्वामीके शीघ्र आरोग्य होनेका हाल ज्योतिषसे देखकर बतलाया तथा कुमारीको अष्टान्हिक व्रत देकर उसके पालनेकी विधि बताकर विदा किया। अष्टान्हिक व्रतका समय आनेपर कुमारीने व्रतानुसार कार्य करना आरम्भ किया। प्रतिदिन वह जिन मन्दिरमें जाकर परम परमात्मा वीतराग भगवानका पूजन स्तवन अभिषेकका गन्धोदक लेकर अपने पतिके शरीरमें लेपन करने तथा अन्य रोगियोंके ऊपर भी छिड़कने लगी। रोग धीरे धीरे आराम होता गया और अष्टान्हिक पर्वके अन्तिम दिन राजा श्रीपालका शरीर महा भयानक कुष्ट रोगसे सम्पूर्ण निवृत्त होकर बहुत ही सुन्दर हो गया। राजकुमारीके भाग्य की जय हुई और राजा पहुपालको नीचा देखना पड़ा। राजा श्रीपाल और कुमारी मैनासुन्दरी उज्जैनमें रहकर आनन्दसे समय व्यतीत करने लगे।

एक दिन रात्रिके समय जबकि चारोंओर शब्द लेश मात्र भी नहीं सुनाई देता था यकायक राजा श्रीपाल की नींद खुल गई और उन्हें अपनी जन्म-भूमि राज्य-कुल आदिकी चिन्ताने आ घेरा। उन्होंने विचारा कि अब मेरा यहाँ रहना अयोग्य है। मुझे अपने राज्य और वंशकी रक्षा करनी

चाहिये। परन्तु बिना ऐश्वर्य और वैभवके राजधानीमें जाना भी योग्य नहीं है। इसलिये मान प्रतिष्ठा प्राप्त करनेके लिये प्रथम विदेशको जाना चाहिये। पश्चात् धन-धान्य आदिसे परिपूर्ण होकर स्वदेश जावेंगे। ऐसा विचार निश्चय कर उन्होंने अपनी भार्याको भी सुनाया। मैनासुन्दरी पहिले तो स्वामीके विछोहके दुःखोंका अनुभव कर बहुत दुःखित हुई। परन्तु फिर सोच-समझकर उन्होंने स्वामीको विदेश जानेकी अनुमति दी और अपनेको भी साथ ले चलनेका अनुरोध किया परन्तु विदेशमें होनेवाले दुःखोंका अनुभव कर राजा श्रीपाल मैना सुन्दरीको साथ न लेजाकर सिर्फ अकेले विदेश-यात्राको निकले और बारह सालके भीतर भीतर आनेका वादा कर गये।

स्वामीके विदेशगमन पश्चात् मैना सुन्दरी उनके वियोगसे अति दुःखित रहती थी। जब बारह साल पूर्ण होनेको आये तब वह स्वामीके आनेके दिन घण्टे घण्टे और पल पल गिनने लगीं। बारह साल पूर्ण होगये परन्तु स्वामीके दर्शन नहीं हुए। महापतिव्रता सती मैना सुन्दरीको प्राणान्त कष्ट हुआ। परन्तु वीतराग भगवान्का ध्यानकर उन्होंने निश्चय किया कि अगर आज भी स्वामीके चरणारविन्दोंके दर्शन नहीं हुए तो फिर इस संसारके सर्व झञ्झटोंको छोड़ जिन दीक्षा धारणकर आत्मकल्याण करूँगी। परब्रह्मपरमात्माने उस सतीकी अति ध्वनि सुनकर शीघ्रही उसके पतिको दीक्षा

दी। उसी दिन महाराज श्रीपाल असीम साहस और विपुल विभूति तथा आठ हजार रानियोंके साथ उज्जयनी नगरीमें आये। मैनासुन्दरीके आनन्दसागरका किनारा नहीं दीखता है। स्वामीके दर्शनकर उसने अपने नेत्र तृप्त किये। कुछ दिन उज्जयनीमें रहनेके पीछे महाराज श्रीपालने दल बल सहित अपनी प्राचीन राजधानी चम्पापुरको कूच किया तथा अपने राज्यको सम्हालकर फिर सुवर्ण और हीरोंसे दीप्त सिंहासनपर विराजे। मैना सुन्दरीने अपने रूप गुण आदिसे राजमहिषीका आसन ग्रहण किया और फिर दोनों राजा रानी सुखसे समय बिताने लगे।

एक दिन सन्ध्या समय जब कि महाराज श्रीपाल अपने महलकी छतपर बैठे हुए प्रकृतिकी शोभा देख रहे थे कि उनको एकाएक मेघपाल छिन्न भिन्न होते हुए दिखाई दिया। उनको ज्ञान हुआ कि इसी प्रकार यह संसार भी क्षणभंगुर है। यह सब एक न एक दिन नष्ट होनेवाला है—मेरा शरीर भी इसी प्रकार एक दिन नष्ट हो जायगा। परन्तु अभीतक मैंने अपनी आयुका सब समय सांसारिक सुखमेंही व्यतीत किया है। परमार्थके सुखके लिये मैंने कोई उद्योग नहीं किया। इसलिये मुझे अब परमार्थ सुधारनेमें प्रयत्नशील होना चाहिये। उनको इस संसारसे वैराग्य उत्पन्न हुआ और शीघ्र जिन दीक्षा धारणकर वे अपने कर्म शत्रुओंको परास्त करने लगे। स्वामीको जिन दीक्षा लेते देख रानी मैना सुन्दरीने

भी जिन दीक्षा लेकर अपना परमार्थ सुधारनेमें मन लगाया। थोड़ेही दिनोंमें राजा श्रीपाल अपने कर्म शत्रुओंको जीत केवल ज्ञान प्राप्त कर अनन्त अविनाशी परम सिद्धपदके अधिकारी हुए जहाँ सदा असीम आनन्द रहता है। मैना सुन्दरी भी सबसे उत्कृष्ट १६ वें स्वर्गकी अधिकारिणी हुई। अर्थात् सब वेद यही कहते हैं कि नारियोंके लिये आराध्य देव पतिही है तथा पतिहीको वे ब्रह्मा, विष्णु और महेश जानती हैं, हमारे यहाँ भी आचार्योंने पतिभक्तिके विषयमें कुछ कहा है। वह यह है कि—"पतिप्राणा हि योषितः।" अर्थात् नारियोंके प्राण पति ही हैं। यही कारण है कि मैना जैसी सुन्दरीने कोसों तक दुर्गन्ध फैलानेवाले कुष्ट रोगसे पीड़ित पति श्रीपालको प्राणोंकी तरह रक्षा की। शोक और खेदका विषय है कि आज यह बातें केवल इतिहासकी कथा मात्र रह गई हैं। संसारमें पति और पत्नी विद्यमान हैं पर पति पत्नीका वह भाव नहीं है—वह मेल मिलाप नहीं है। अगर है तो पारस्परिक कलह और ईर्षा। इस दुर्घट समयमें समाजकी रक्षा परमात्माही करे।

पाठक और पाठिकागण! इस चरित्रमें आपने अच्छी तरह देख लिया होगा कि स्वार्थके वश होकर माता और पिता भी अपनी प्रिय सन्तानके साथ कितना अनिष्ट और कैसे कैसे निन्द्य दुष्कर्म कर सकते हैं। जब स्वयं जनककी यह दशा है तो अन्य जन अन्यजनोंकी सन्तानके प्रति जो

अन्याय और अत्याचार करें उसकी कोई गणना नहीं की जा सकती है। यह उदाहरण आजकलका नहीं किन्तु आजसे कई हज़ार वर्ष पहलेका है। इससे इस बातका भी पता लगता है कि आजही नहीं पहले ज़मानेमें भी इस पृथ्वीमण्डलपर ऐसे ऐसे नराधमोंने जन्म लेकर मानव समाजके इतिहासको कलङ्कित किया है। फ़र्क केवल इतनाही है कि पहले ज़मानेमें ऐसे नर पिशाचोंका दर्शन कहीं कहीं पर और कभी कभी होता था और आजकल सब जगह और बहुलतासे इन दुष्टोंकादौरदौरा है। भगवान् ऐसे पिताओंसे बचाये!

हमारे पाठकोंने इस चरित्रमें मैना सुन्दरीकी पतिभक्ति परायणता, पिताकी आज्ञाकारिता और स्वाभाविक सहनशीलताका एकही उदाहरण देखा होगा जो अन्यत्र कम पाया जाता है। हमारे अन्यमतावलम्बी भाइयोंने पतिभक्तिके विषयमें ऐसा कहा है कि :—"नारिनको पति देव वेद सब यही बखाने। ब्रह्मा विष्णु महेश नारि पतिहीको जानें॥"

५

वीर नारी रानी द्रौपदी।

"वीरांगना श्री द्रौपदी के सुयश जलसे लहलहा।
यह होरहा है आजतक भारत विटप कुसुमित अहा!
अद्भुत अलौकिक धर्म उनमें शौर्य था त्यों आत्मबल।
जो घोर दुखमें भी किये विध्वंस अरिदल अति प्रबल॥"

श्रीमती द्रौपदीजी राजा द्रुपद तथा महारानी भोगवतीकी प्रिय सुता थीं। इनका जन्म माकन्दीपुरमें हुआ था। बाल्यावस्थासे लेकर इन्होंने बड़े बड़े शक्तिशाली और पूर्ण बुद्धिमत्ताके कार्य किये थे। इनके रूप, गुण, सहन शक्ति आदिका वर्णन अकथनीय है। ये परम विख्यात सती भारतको अपने सुगुणोंकी प्रशंसासे उज्वल कर गई हैं। इनका संक्षेपचरित्र इस प्रकार है :—

जब श्रीमती द्रौपदीजी बाल्यावस्थाको पूर्ण करती हुई यौवनावस्थामें पैर धरने लगीं तब राजा द्रुपदको इनके विवाहकी चिन्ता हुई। राजा विशेष उद्योग कर भी न पाया था

कि खलाचल पहाड़पर रहनेवाले सुरेन्द्र नामक एक विद्या-धरने आकर एक धनुष और एक कन्या राजा द्रुपदको सौंपी और कहा कि—"महाराज मैंने भविष्यद्‌वक्तासे पूछा था कि मेरी कन्याका वर कौन होगा। उन्होंने कहा कि जो राजकन्या द्रौपदीका वर होगा, जो इस गाण्डीव धनुषको चढ़ावेगा वही व्यक्ति तेरी सुताका भी स्वामी होगा।" ऐसा कह और गाण्डीव धनुष तथा अपनी कन्याको वहीं रख विद्याधर अपने निवास स्थानको रवाना हो गया। इधर राजा द्रुपदने भी यह बात पसन्द की। गाण्डीव धनुष बड़ा भारी और बड़े तेजवाला धनुष था। उसको उठा लेना सहज न था। बड़े पराक्रमी शूर-वीर भाग्यशालीका कार्य था। इसलिये परीक्षा करके ऐसेही वरको द्रौपदी देनी उचित समझ राजा बहुत प्रसन्न हुआ। शुभमितिपर स्वयम्वरकी रचना की गई और देश देशके राजकुमारोंको निमन्त्रण भेजा गया।

श्रीद्रौपदीजीकी प्रशंसा सर्वत्र इतनी फैल रही थी कि निमन्त्रण पातेही चारों तरफ़से बड़े बड़े राजपुत्र दौड़े चले आये। कोई उच्च राजपुत्र ऐसा न था जो इस स्वयम्वरमें न आया हो। कौरव दुर्योधनादि सौ भाई भी बड़े ठाट बाटसे आकर स्वयम्वर-मण्डपमें बैठे। इन्हींके चचेरे भाई राजा पाण्डुके पुत्र महाबली युधिष्ठिर, भीम, अर्जुन, नकुल, सहदेव ये पाँचो पाण्डव भी छिपकर ब्राह्मणके भेषमें आकर स्वयम्वर-मण्डपमें एक तरफ बैठ गये।

सम्पूर्ण सभा जमनेपर एक एक नृपति धनुषको चढ़ानेके लिये उठे परन्तु चढ़ाना दूर रहा उसके तेजको न सह सकनेके कारण धनुषके पास भी न जा सके। राजकन्या द्रौपदी भी अपनी प्यारी सखी सुलोचनाके साथ घूमती हुई इन नृपोंका कौतुक देख रही थी। उक्त सखी क्रमशः एक एक राजपुत्रको मय नाम पतेके बताती जाती थी और द्रौपदीजी मनही मन सबकी जाँच करती जाती थीं।

जब गाण्डीव धनुष किसी राजकुमारसे नहीं उठा तो राजा द्रुपद कुछ चिन्तातुर हो गये कि इतनेमेंही ब्राह्मण वेषधारी युधिष्ठिर महाराजने अपने भाई अर्जुनको आज्ञा दी कि "तुम शस्त्रविद्यामें अद्वितीय हो? उठो और धनुष चढ़ाकर सर्वोत्तम गुणरूपकी राशि द्रौपदीको वरो।" बस भ्राताकी आज्ञानुसार अर्जुन महाराजने झट धनुषके निकट जाकर धनुषको चढ़ा लिया और ऐसा वेध किया मानो नियत मोतीपर निशाना मार दिया। इनके धनुषकी ऐसी घोर आवाज़ हुई जो सैकड़ों हज़ारों तोपोंसे भी तेज़ थी। सब सभास्थ राजकुमारोंके कान भन्ना गये मानो बहरे हो गये। बस शीघ्रही श्रीमती द्रौपदीजीने वरमाला (पुष्पकी माला) अर्जुनके गलेमें अति प्रसन्न चित्तसे डाल दी। कोई कोई ऐसा कहते हैं कि द्रौपदीजीके पाँचो पाण्डव पति थे यह बात सर्वथा ग़लत और जैन शासनसे विरुद्ध है। ये तो परम सती थीं। विवाह एकहीके साथ हो सकता है। इनके

एक अर्जुनही पति थे। द्रौपदीजी बड़ी चतुर थीं। उन्होंने प्रथमही सर्व राजकुमारोंसे विशेष अर्जुनकोही समझ लिया था। औरोंकी चमक दमककी परवाह न कर गुणोंकोही ग्रहण किया था।

इस सम्बन्धको देख दुर्योधनादि बड़े बड़े राज-कुमार बहुत बिगड़े, बहुत युद्धादि करने लगे ; परन्तु सफलीभूत रञ्च मात्र भी न हुये। अर्जुन तथा द्रौपदी के भाई धृष्टद्युम्नने सबको परास्त कर भगाया। इस युद्धादिसे द्रौपदीजी भी नहीं घबराईं। उन्होंने भी साथ साथ पति तथा भाईको सहायता दी(पूर्वकालमें राजकन्या भी शस्त्र-विद्याका अभ्यास रखती थीं) अन्तमें नियत मितीपर द्रौपदीजीकी पाणिग्रहण विधि सानन्द संपूर्ण हो गई और ये दम्पति गजपुरमें आकर आनन्दसे रहने लगे, गजपुरका आधा राज्य इन पाण्डवोंके आधीन था आधा कौरवोंके।

द्रौपदी अर्जुनके अपूर्व आनन्द से कौरव सदा जलते रहते थे और नित्य नये उपद्रव करते रहते थे।

एक समय कौरवोंके मुखिया दुर्योधनने दुष्टाभिप्रायसे जूएका खेल प्रारंभ किया और उसमें पाण्डवोंको भी शनैः २ फँसा लिया। छल बलसे बिचारे पाण्डव सब बाज़ी हार गये और इस इक़रार पर खेल तय हुआ कि १२ वर्ष तक पाण्डव छिपे बनमें रहें बाद आकर राज्यादि करें और नहीं तो नहीं।

इस समय द्रौपदी रानीको बड़े बड़े उपद्रवों द्वारा दुर्योधनने बहुत कष्ट पहुँचाया परन्तु सती द्रौपदीने समयानुकूल सब कुछ सहकर पति आदि पाण्डवोंका साथ किया। कहीं जाकर बनमें निवास करने लगे। वहाँ जाकर भी दुर्योधनने युद्धादि किया।

अन्तमें १२ साल बीत चुकने पर जब एक साल रह गया तब इन पाँचों पाण्डवोंने सोचा कि अब १ वर्ष बिल्कुल गुप्त रीतिसे रहकर अन्तमें कुछ अपना प्रभाव किसी विदेशी राजा को दिखा कुछ यश-गौरव सम्पदा लेकर घरको जाना है अतः सबसे सलाह की कि भेष बदल कर विराटपुरके राजा सुदर्शनके यहाँ नौकरी करें।

द्रौपदीजी भी अपने पति की अनुगामिनी थीं। उन्होंने भी राजाके यहाँ मालिन का काम करना पसंद किया। अर्जुनने नृत्य सिखानेका, भीमने रसोई करनेका, नकुलने घुड़सालका, सहदेवने गोधनका और युधिष्ठिर महाराजने पुरोहित का काम पसन्द किया। सब मिलकर राजा विराटके यहाँ रहने लगे और अपने अपने काममें अद्भुत चतुराई दिखाने लगे। द्रौपदीजी मालिन के भेषमें रहकर बड़ी योग्यतासे पुष्प गूंथती थी। इनके माला हारादि इतने सुन्दर सुडौल बनते थे, कि राजा सुदर्शनकी महिषी चकित हो जाती थीं, सोचती थीं कि यह चतुर मालिन कौन है? एक दिन राजाका साला कीचक पाहुना आया था। वह द्रौपदीजीके बने पुष्पहारको

देखकर चकित हो गया। उसी समय से उसके हृदयमें कुवि-चारोंने आवागमन जारी कर दिया। अन्तमें द्रौपदीजीको उस ने देखा और उन पर मोहित होगया। उस दुष्टने एकान्तमें द्रौपदीजीसे प्रार्थना की कि आप मेरी पटरानी बनने योग्य हैं। मेरे साथ चलिये, मुझपर प्रसन्न हूजिये, इत्यादि इत्यादि दीनताके बचन कहे तथा भय भी दिखाया। इस दुष्टके उप-युक्त बचनोंको सुनकर द्रौपदी सतीके हृदय पर बज्रघात से भी अधिक चोट पहुँची। वे विचारने लगीं कि अहो! यहाँपर भी चैन न मिला। किस तरह शीलरत्नकी रक्षा होगी इत्यादि विचारोंसे उक्त सतीका हृदय कम्पित हो गया परन्तु "समय पड़ने पर अबला सबसे सबला हो सकती है।" इस वाक्या-नुसार द्रौपदीजी सचेत होकर कीचक दुष्टको झाड़ने लगीं।

उन्होंने तीव्र क्रोधमें आकर कीचकको खूब आड़े हाथों लिया। खूब कटुवचनोंकी बौछार की जिससे कीचक निराश हो स्वस्थान को लौट आया।

कीचक दुष्ट उसी दिनसे खान पानादि छोड़ अपनी महा-निन्द्य वासनाकी पूर्त्ति के उपाय सोचता हुआ शय्या पर दिन काटने लगा।

इधर द्रौपदीजीने अर्जुनसे अपनी अपार दुःखावस्थाका वर्णन किया जिससे उनको बड़ा क्रोध उपजा; परन्तु भेद खुलनेपर अपना छिपना दुःसाध्य जानके चुप रह गये और कह सुनकर द्रौपदीजीको धैर्य बँधाने लगे। द्रौपदीजीको पति

के कहेसे धैर्य नहीं हुआ।उन्होंने भीम महाराजसे सब वृत्तान्त कहा—भीमने कहा कि सती तुम पश्चाताप मत करो। हम अप्रकट रूपसेही कीचक दुष्टसे बदला लेंगे। इन्होंने एक युक्ति निकाली यानी द्रौपदीजीसे कहा कि तुम कीचकसे आज रात्रिको किसी स्थान पर आनेका संकेत करदो, बस जब वह दुष्ट वहाँ आवेगा मैं स्त्रीके भेषमें उसे जा पकड़ूँगा, द्रौपदी जी ने ऐसा ही किया।

रात्रिके समय कीचक पापात्मा उत्कटतासे नियत स्थान पर गया। वहाँ कृत्रिम द्रौपदी (भीम) ने उसे धर पकड़ा। उसके दूषित मनोभावका प्रत्यक्ष फल दिखला दिया।

अपना काम कर (कीचकको मार) भीम स्वस्थानको आगये और द्रौपदीजीसे सब वृत्तान्त कह सुनाया। प्रातः-काल कीचकको द्रौपदीके कारण मरा जान उसके सौ भाइयों ने बड़ा दङ्गा मचाया। द्रौपदीजीको पकड़कर त्रास देना शुरू किया। यह देख भीम महाराजने फिर युद्ध किया और कीचकके सब भाइयोंको हरा दिया। अबके युद्धसे सबको थोड़ा थोड़ा पता लग गया कि ये पाण्डव हैं। इधर इन लोगों का १ वर्ष भी पूरा हो गया था। ये प्रगट होना ही चाहते थे कि कौरवोंने फिर युद्ध किया। अन्तमें पाण्डवोंकी ही जीत हुई और जय पताकाके साथ फिर इन लोगोंने अपने पुरमें प्रवेश किया।

कुछ दिन पति आदि समस्त कुटुम्बियोंके साथ सानंद

व्यतीत होने ही पाये थे कि सती द्रौपदीको एक विपत्तिका फिर सामना करना पड़ा।

एक दिन रानी द्रौपदी सिंहासन पर बैठी थी कि नारद जी आये उनको देखकर द्रौपदीजी उठ न सकीं और न प्रणाम ही किया। वे अपने शृंगारमें लगीं थी।

यह बात नारदको बहुत बुरी लगी। वे शीघ्र ही वहाँसे लौट गये और मनमें द्रौपदीको नीचा दिखानेका विचार कर के घातकीखण्डस्थ सुरकंकापुरीके राजा पद्मनाभके यहाँ जाकर उसे द्रौपदी रानीका चित्र दिखा दिया। इस कौतुकको कर नारद तो लम्बे पड़े, परन्तु राजा पद्मनाभका चित्त भ्रष्ट हो गया। उसके यहां बड़ा अनर्थ हो गया। राजाने बड़े बड़े कठिन परिश्रमोंसे किसी देवको वश कर रानी द्रौपदीजीको सोते हुए पलँग सहित अपने यहां मंगा लिया।

बेचारी निष्पाप द्रौपदी कुछ भी नहीं जानती थी कि मेरा हरण कौन दुष्ट कर रहा है, मुझपर कौनसी विपत्ति आरही है। इस सतीकी यकायक निद्रा टूटी तो देखती है कि एक राजा इसकी शय्यापर बैठा बैठा बड़े हाव भावके वचन बोल रहा है। द्रौपदीजीने ख्याल किया कि शायद मैं स्वप्न देख रही हूँ इससे उन्होंने पुनः मुख ढंक लिया। पास बैठा दुष्ट पद्मनाभ इस भेदको समझ गया। उसने कहा "उठो प्रिये! निद्रा तजो यह स्वप्न नहीं है" इत्यादि इत्यादि वचन कहे। इन्हें सुनकर द्रौपदीजी प्रतिबोधित हो गईं। सब मामला

समझमें आ गया। आह! आज कैसा उपसर्ग इस सतीके ऊपर हो रहा है। ये बड़े आर्त्तनादसे विलाप कर रोने लगीं, इनकी गगनभेदी आवाज़से पद्मनाभका सारा महल फटने लगा। मानो काष्ठ पत्थर भी रोदन करने लगे। उक्त सतीने पद्मनाभको विलाप के साथ साथ बहुत कुछ समझाया परन्तु यह पापात्मा कब शान्त होनेवाला था। अन्तमें जब देखा कि अन्य उपाय रहित होनेपर द्रौपदी प्राण दे देगी तब वह दुष्ट उठकर चला गया और यह कह गया कि १ मासमें ज़रूर प्रसन्न हो जाना।

द्रौपदीजीने ख्याल किया कि एक मास बहुत है। इसमें धर्म साधनादि कितनेही उपाय मैं भी कर सकूँगी और योद्धा पाण्डव भी आकर इस दुष्टका अवश्य ही निग्रह करेंगे। बस इस विचारसे वे खान पानादि त्याग जिन मन्दिरमें चली गईं और अत्यन्त विश्वास-साहस सहित भगवद् ध्यान करने लगीं।

इधर पाण्डवोंने देखा कि द्रौपदी का हरण हो गया, इस घटनासे सारे राज्यमें शोक मच गया। अर्जुन महाराज पत्नी वियोगसे अति दुःखित हो गये, परन्तु फिर साहस कर पांचों भाई खोजमें निकले। अनेक युक्तियोंसे काम लेते लेते तथा उन्हीं नारद महाराजकी उलटी दयादृष्टिसे द्रौपदीका पता लग गया। वहाँ सुर कंकापुरी में जाकर खूब रण हुआ और अन्तमें पद्मनाभको हरा जिन मन्दिरस्थ द्रौपदीको लेकर घर आ गये।

अब फिर द्रौपदीजीके दिन आमोद प्रमोदमें व्यतीत होने लगे। कई पुत्र रत्न उत्पन्न हुए और परम नीति मार्गसे सांसारिक सुख भोगने लगीं।

बहुत दिन इस अवस्थामें बीते। एक दिन श्रीनेमिनाथ स्वामीका समवशरण धर्मोपदेश करता हुआ आया। वहां जाकर पाण्डवोंने धर्मोपदेश तथा अपनी भवान्तरी सुनी, जिससे पांचों भाई परम वैराग्य रसमें डूब गये और भगवान नेमिप्रभुके सामने समस्त गृह जञ्जाल को छोड़ वीतरागी दिगम्बरी दीक्षा धारणकर आत्महित करने लगे। पतिकी यह अवस्था देख द्रौपदीरानी ने भी श्रीराजुल मती अर्जिकाके निकट जा दीक्षा धारण करली और परम उग्रतप करने लगीं। अहा! जो शरीर परमोत्कृष्ट भोगोंमें रमा था, वही आज आत्म ध्यानके रसमें पगा उग्रोग्र तप कर रहा है। कुछ दिन तप जप करके अन्तमें समाधि मरण कर श्रीमती द्रौपदीदेवी सोलहवें स्वर्ग में देवी हुईं और वहाँसे चलकर क्रमशः मोक्षको प्राप्त हुई।

साधुचरित्रा

रानी अंजनासुन्दरी।

"सहन शीलता की प्रति मूर्ति धन्य धन्य तुम।
पती रता सतियोंमें "अञ्जनि" अग्र गन्य तुम॥
बाइस वत्सर पति बिछोहका कष्ट सहन कर।
धन्य निबाहा पातिव्रत पावन अति सुन्दर॥"

रानी अञ्जनासुन्दरी महेन्द्रपुर (दक्षिण हिन्दुस्थान) के राजा महेन्द्र और रानी हृदयवेगाकी परमप्यारी पुत्री थीं। पद्म-पुराणमें लिखा है कि बाल्यावस्थामें इनको अन्य सब विषयोंकी शिक्षाओंके अतिरिक्त गान्धर्वकला तथा धर्मशास्त्रकी शिक्षा पूर्ण रीतिसे दी गई थी। योग्य युवावस्था होनेपर पिता माताने इनका विवाह आदित्यपुरके राजा प्रह्लाद और रानी केतुमतीसे उत्पन्न वायुकुमार (पवनकुमार)से करना निश्चय किया। कुमारने अपनी भावी प्रियतमाके रूपगुण

६ शिक्षाकी प्रशंसा सुनकर गुप्तरीतिसे उससे मिलनेकी

इच्छा की। तथा वे शीघ्र अपने एक मित्रके साथ वायुयान द्वारा आदित्यपुरसे महेन्द्रपुरको रवाना हुए। महेन्द्रपुर पहुँच अञ्जना सुन्दरीके महलके सप्तम खण्डपर जहाँ कि सुन्दरी अपनी सखियों सहित बैठी मनोरञ्जन कर रही थी जाकर छिप रहे तथा उस मण्डलीकी गुप्त वार्त्ता सुनने लगे। समय भी वही था इसलिये सखियां सुन्दरीकी शादीपर अपने अपने विचार प्रकट कर रही थीं। अभाग्यवशात् एक उसकी अदूरदर्शी सखीने जो कि सिर्फ रूपपर न्योछावर होकर कुमारीकी शादी किसी अन्य कुमारके साथ कराना चाहती थी प्रस्तावित सम्बन्धपर अपना असन्तोष प्रगट किया। स्वाभाविक लज्जावश सुन्दरीने प्रगट रूपसे इसका कोई विरोध नहीं किया ; परन्तु वायुकुमार जो इस संवादको सुन रहे थे अपना अपमान समझ दुःखित हुए। उनको यह भी भ्रम हो गया कि सुन्दरीको मेरे साथ सम्बन्ध करना स्वीकार नहीं है इसलिये उन्होंने सखी द्वारा मेरी निन्दा सुनकर उसका विरोध नहीं किया। इस कल्पनाने कुमारके हृदयपर अपना अधिकार जमा लिया तथा कुमारीकी तरफसे अरुचि उत्पन्न करा दी। मित्र सहित ये शीघ्र अपने स्थानपर आये और सुन्दरीसे सम्बन्ध न करनेकी प्रतिज्ञा की। उक्त गुप्त समाचार किसीको मालूम नहीं हुआ।

दोनों राजाओंने पाणिग्रहणकी तिथि निश्चय करा ली थी। अतः नियत तिथिपर विवाहकी सब कार्रवाइयाँ होने

लगीं। कुमारने बहुत इधर उधर किया, परन्तु पिता माताके अनुरोध तथा सास ससुरके समझानेसे उन्होंने सुन्दरीके साथ सम्बन्ध करना स्वीकार कर लिया और नियत तिथिपर सम्बन्ध हो गया। यद्यपि कुमारने पिता माताके कहनेसे सुन्दरीसे शादी करली परन्तु उनका चित्त उससे विरुद्धही रहा। सुन्दरी जब अपने पतिके भवनमें आई और उसे स्वामीके रुष्ट होनेका समाचार ज्ञात हुआ तब उसे जितना दुःख हुआ वह लिखा नहीं जा सकता। वह भोजन, वस्त्र, शृङ्गार आदिसे उदासीन होकर दिन रात अपने सर्वस्व पतिके प्रसन्न करनेमें लगी रहती थी; परन्तु स्वामीका सन्देह किसी तरह निवृत्त नहीं हुआ। उन्होंने कभी सुन्दरीपर प्रेमकी दृष्टिसे भी नहीं देखा। इस तरह सिर्फ स्वामीके नामका स्मरण करते हुए उस सर्वाङ्गसुन्दरी सतीको २२ साल हो गये! शरीर चिन्तासे क्षय होते होते बिलकुल मुरझा गया। इस दुःखरूपी समुद्रको पार करना सुन्दरीके लिये असम्भव हो गया और वह निराश होकर अपने जीवन सूर्यको अस्ताचलपर पहुँचा समझ चुकी थी कि यकायक अपने पूर्वकृत पुण्य कार्योंके प्रतापसे उसके सौभाग्यका सूर्य चमक उठा, जिसका वृत्तान्त नीचे दिया जाता है :—

महाराज प्रह्लादकी राजसभामें लङ्केश्वर रावणका दूत वरुणके साथ युद्ध करनेमें सहायता देनेके लिये रणनिमन्त्रण लेकर आया। महाराजने इसे सहर्ष अङ्गीकार किया और

उसी समय फौजी तय्यारीकी आज्ञा देदी। कुमारकी युवावस्था थी। युद्धकी घोषणा सुनकर उनका तेज उमड़ पड़ा। शीघ्र पिताकी सेवामें उपस्थित होकर निवेदन किया कि इस कार्यके लिये आप क्यों तकलीफ़ करते हैं? मुझे युद्धमें जानेकी आज्ञा दीजिये। आपके आशीर्वादसे मैं शीघ्र विजयलक्ष्मी प्राप्तकर आपके दर्शन करूँगा। पिताने पुत्रको युद्धोचित शिक्षाएँ देकर युद्धस्थलमें जानेकी आज्ञा दी। कुमार भी रणके वस्त्र पहन, अस्त्र शस्त्रों से सज्जित हो एक उत्तम घोड़ेपर सवार हुए और कूचका शब्द कर महलसे बाहर होनाही चाहते थे कि उन्होंने परम साध्वी सुशीला सती अञ्जना सुन्दरीको, दरवाज़े पर खड़ी दर्शनोंकी प्रतीक्षा में देखी। कुमारको यह कार्य अच्छा नहीं मालूम हुआ और सुन्दरीकी विनयपर कुछ ध्यान न देते हुए वे अपनी सेनामें चले गये। सुन्दरीके हृदयपर दुःखोंका पहाड़ टूट पड़ा है। जिस स्वामीके कुशल समाचारोंपरही वह जीवन धारण किये हुए थी आज वे युद्धमें चले गये हैं। नहीं कहा जा सकता है कि इस पर्यायमें फिर स्वामीके दर्शन हो सकेंगे वा नहीं इत्यादि विचारोंको करती हुई भारतके गौरवको प्रदीप्त करनेवाली एक परम सुन्दरी सती अपने भाग्यको दोष देती हुई विलाप कर रही है। सिवा वीतराग चिदानन्द परमात्माके ध्यानके उसको उसके इस असह्य दुःखसे निवृत्त करनेवाला कोई दिखाई नहीं देता है।

महाराज प्रह्लादके सुपुत्र वायुकुमारकी सेना दिनमें चलते चलते सन्ध्याको एक सरोवरके निकट डेरे डालकर विश्राम करनेके लिये ठहर गई। कुमार भी अपने डेरेमें विश्राम करनेके लिये ठहरे। कुछ जलपान करके शामके अपूर्व समयमें सरोवर और प्रकृतिका सौन्दर्य देखनेके लिये कुमार अपने मित्र सहित टहलनेके लिये खेमेसे बाहर हुए। खेमेसे बाहर निकलतेही प्रकृतिने उन्हें वह उपदेश दिया जो हज़ारों उपदेशोंसे भी नहीं दिया जा सकता, जिस की प्रशंसा नहीं की जा सकती। जिस विषयके ज्ञानके विषयमें इनके हृदयमें बिलकुल अन्धकार था एकाएक ज्ञानका सूर्य्य दीप्त हो गया। इन्होंने देखा कि एक चकवी रात्रि आनेके कारणसे अपने पतिसे विछोह होनेका समय देख अत्यन्त दु:खके साथ कोलाहल मचा रही है। जब इनको ज्ञात हुआ कि जिस तिर्यञ्चपक्षीको मनुष्यकी अपेक्षा लेशमात्र भी ज्ञान नहीं है अपने प्रियका वियोग होनेमे इतना कष्ट होता है जिसका अन्त नहीं है तो फिर मेरी प्यारी पत्नी अञ्जना सुन्दरी की, जिसको मैंने २२ साल हो चुके बिलकुल त्याग दिया है क्या दशा होगी? उसके दु:खोंका वर्णन करनेको क्या इस भूमण्डलमें कोई समर्थ है! प्रकृतिने उत्तर दिया—नहीं! उसी समय इनको अञ्जनाके युद्धके कूचके समय आनेकी बात याद आई, जिससे इनका शरीर विह्वल हो गया। प्रेमाश्रुसे नेत्र परिपूर्ण हो गये। मित्रसे इन्होंने अपना विचार

उसी समय अञ्जना सुन्दरीसे मिलनेका प्रगट किया और गुप्त रीति से रात्रिहीमें अञ्जना सुन्दरीके महलोंमें आये। सुन्दरीका हृदय आनन्दसे प्रफुल्लित हो गया। उसके आनन्दका अनुभव पाठकही कर लेवें। मुझमें शक्ति नहीं है जो आप को लिखकर बता सकूं। उस रात्रिको कुमारने अपनी प्यारीसे अपने हर तरहके अपराधोंके लिये अति नम्रहो क्षमा मांगी तथा अपनेको बहुत दोष दिया। परन्तु सुन्दरीने उनके भ्रम का जड़ मूलसे उच्छेद कर अपनेही पूर्वकृत कर्मोंका दोष बतलाया। पश्चात् पति-पत्नीने आनन्दसे रात्रि पूर्ण की। सुबह होतेही कुमार सुन्दरीसे बिदा होने लगे तब सुन्दरीने विनय-पूर्वक प्रार्थना की कि मेरा ऋतुकालका समय है सम्भव है कि मुझे गर्भ रह जाय और आप युद्धमें जा रहे हैं इसलिये समय भी आपको ज्यादः लगेगा इससे आप अपने पिता माताको अपने आनेकी सूचना करते जाइये। परन्तु कुमारने लज्जावश ऐसा करना पसन्द नहीं किया और कहा कि अगर ऐसा हुआ तो कोई हर्ज नहीं है। युद्धमें हमको ज्यादः समय नहीं लगेगा, हम शीघ्र आवेंगे। तुम किसी तरहकी चिन्ता नहीं करना। इत्यादि हर तरहसे सन्तोषितकर प्रेमालिङ्गनकर बिदा हुए तथा सुबह होते होते अपनी सेनामें पहुँचे। यह हाल किसीको ज्ञात नहीं हुआ।

वायुकुमार युद्धस्थलमें पहुँचे। लड़ाई हुई। अन्तमें वायु-कुमारने अपने प्रबल प्रतापसे शत्रुको पराजित किया और

विजयलक्ष्मी प्राप्तकर अपने देशकी ओर रवाना हुए। समय बहुत हो गया था। यहाँ अञ्जना सुन्दरीको वास्तवमें गर्भ रह गया और दिन दिन रूपकी वृद्धि होने लगी। यह समाचार सारे रनवासमें फैल गया। राजमहिषीको जब यह समाचार मिला तो उन्होंने अपने कुलमें कलङ्क समझ बहुत दुःख प्रगट किया तथा अञ्जनासुन्दरी को अपने पिता माताके यहाँ पहुँचानेका विचार किया। अञ्जना सुन्दरीने बहुत कुछ कहा परन्तु उसको राजमहिषीद्वारा यही उत्तर मिला कि मेरे पुत्रने तो तुझे २२ वर्षसे त्याग दिया है और वह युद्धमें गया है फिर तेरे पास क्यों आवेगा? अन्तमें निराश होकर सुन्दरीको अपने पिता माताके यहाँ जाना पड़ा। पिता माताने भी इसको कलङ्किनी समझ अपने महलोंमें आश्रय नहीं दिया। इस तरह अञ्जना सुन्दरी सती अपनी एक प्यारी सखीके साथ अपने पूर्वकृत कर्मोंके प्रतापसे तरह तरहके दुःख भोगती हुई जङ्गलोंमें फिरती फिरती एक गुफामें रहने लगी। वहींपर उसने परम प्रतापी जगद्विख्यात हनूमानको प्रसव किया।

अञ्जना सुन्दरी अपनी सखी सहित अनेक दुःखोंका सामना करती हुई पुत्रको पालने लगी। एक दिन सुन्दरी अपने स्वामीको यादकर जब फूट फूटकर रो रही थी तब हनूरुह द्वीपका राजा प्रतिसूर्य जो वायुयान द्वारा उस गुफाके ऊपरसे जा रहा था अचानक इस निर्जन जङ्गलमें

कर्णभेदी रोनेका शब्द सुन नीचे उतरा। गुफामें जाकर वृत्तान्त सुना। ज्ञान होनेपर उसने अपनी भाञ्जीको हृदयसे लगा लिया और हर तरहकी शान्ति देकर अपने साथ वायुयानमें बिठाकर अपने द्वीपमें ले गया। वहाँ पुत्रका जन्मोत्सव कर आनन्द मनाया तथा अञ्जना सुन्दरीको अच्छी तरह रखा।

यहाँ अब वायुकुमार विजयलक्ष्मीका मुकुट पहने हुए अपनी प्यारी अञ्जना सुन्दरीसे शीघ्र जाकर मिलनेकी इच्छा कियेहुए आदित्यपुरमें आये और नगरनिवासियोंसे अपनी प्यारीका कलङ्कित होकर माता पिताके यहाँ जाना सुना तो शीघ्र दुःखित होकर महेन्द्रपुरका रास्ता लिया। परन्तु जब वहाँ भी उसके दर्शन नहीं हुए तो अतिही खेदित होकर जङ्गलोंमें अपनी प्यारीकी खोज करते हुए उन्मत्तकी नाईं फिरने लगे। यह हाल जब राजा प्रह्लाद व महेन्द्रको ज्ञात हुआ तो उनको भी बहुत दुःख हुआ। दोनों ओरसे चारों तरफ़ सुन्दरी तथा वायुकुमारकी खोजमें दूत भेजे गये। एक दूत हनूरुह द्वीपमें राजा प्रतिसूर्यके पास भी पहुँचा और कुमारका सब हाल सुनाया। यह हाल जब अञ्जनाको मालूम हुआ तो वह दुःखित होकर मूर्छित हो गई। प्रतिसूर्य उसको समझाकर आदित्यपुर आये तथा राजा प्रह्लादको भी समझाकर दोनों कुमारकी खोजमें निकले। बहुत जङ्गलों शहरोंकी खोजके पश्चात् एक महान्धकारसे परिपूर्ण भया-

एक जङ्गलमें दोनों राजाओंने वायुकुमारको जिनके शरीरमें सिवा पञ्जरके कुछ भी नहीं रह गया है, ध्यानमें मग्न हुए बैठे देखा। राजा प्रह्लादने प्यारे पुत्रको हृदयसे लगा लिया और अञ्जना सुन्दरीके मिलनेका तथा तेजस्वी पुत्र रत्नके उत्पन्न होनेका समाचार कह सुनाया। यह समाचार सुन कर कुमार एकदम, "प्यारी ! प्यारी ! ! प्यारी !!!" कहके चिल्ला उठे। जब ध्यान टूटा सामने पिता आदिक माननीयजनों को देखकर लज्जावश मस्तक झुकाके रह गये।

इस निर्जन जङ्गलसे सब लोग शीघ्रही हनूरुहद्वीप बिदा हुए। वहां वायुकुमारकी प्यारी पतिव्रता अर्द्धाङ्गिनी अञ्जनासुन्दरीसे भेंट हुई। दोनोंने परस्पर अपने दुःखोंको कहकर अपने अपने हृदयोंको शान्त किया तथा कुछ दिन वहांही रहे। फिर आदित्यपुरमें आकर दोनों पति-पत्नी पुत्रसहित आनन्दसे समय व्यतीत करने लगे। फिर उन्होंने अपनी जीवनलीला अत्यन्त सुखों तथा राज-लक्ष्मीके साथ व्यतीत की। कहींपर प्रतिमाओंको धूपमें रखने से अञ्जनाको यह कष्ट हुआ था। यह प्रगटकर, इस चरित्र को पढ़कर प्रत्येक पाठक और पाठिकाके हृदयमें इस प्रश्नका उत्पन्न होना सम्भव हो सकता है कि इतने बड़े राजकुलमें जन्म लेनेवाली तथा एक महान् वंशमें उत्पन्न हुए राजकुमार वायुकुमारकी सहचारिणी (वधू) राजकुमारी अञ्जना सुन्दरी को ऐसे अवर्णनीय दुःखोंका सामना किस कारणसे करना

पड़ा ? इस प्रश्नका उत्तर सरल है और अत्यन्त सरल है। इस बातको माननेमें सर्वसाधारण सहमत है कि पूर्व जन्ममें उपार्जन किये हुए शुभाशुभ कर्मों का फल सबहीको अवश्य भोगनाही पड़ता है इतर मनुष्योंकी कथा तो दूरही रही पर स्वयम् तीर्थङ्कर भी इन कर्मोंकी विडम्बनाओंसे नहीं बचे। पुराणोंका स्वाध्याय करनेवाले पाठकोंसे यह छिपा नहीं होगा कि परमपूज्य आदि नाथ भगवान्‌को भी असाता वेदनीय कर्मके उदयसे छः महीनों तक आहार नहीं मिला था। तो राजकुमारी अञ्जना सुन्दरीको उन्हीं कर्मों के जालमें फँस कर इतनी वेदना और यातनाको सहन करना पड़ा इसमें कोई आश्चर्य नहीं इसकी कथा इस प्रकार है कि अपने पूर्वजन्ममें अञ्जना सुन्दरी किसी राजाकी पटरानी थीं। उस राजाके यहाँ अञ्जनाके अतिरिक्त और भी रानियां थीं। पर इनको अपने पदका बड़ा अभिमान था किसी कारणसे अञ्जनामें और एक सपत्नी (सौत) रानीमें ईर्षा हो गई। बस इसी ईर्षावश होकर तथा अपने पटरानी पदके अभिमानसे अञ्जनाने जिनेन्द्र भगवान्‌के प्रतिबिम्बको मंदिरके समीप किसी बावड़ीके जलमें फिकवा दिया था और वह प्रतिमा बाईस घड़ी उस बावड़ीके जलमें पड़ी रही जिनेन्द्र भगवानकी प्रतिमाका इतना अनादर करनेसे अञ्जनाने अशुभ कर्मका बन्ध किया तथा इस कर्मके उदयसे इस जन्ममें बाईस वर्ष तक पतिका वियोग सहना पड़ा। माता पिता द्वारा अनादर पाया। सास और श्वशु-

रके घरमें निवास करने तकको आश्रय नहीं मिला। सहा-यताकी याचना करनेपर भी परिवारके लोगोंने तथा अन्य सम्बन्धियोंने भी तनिकसी सहायता नहीं दी। नगरके लोगोंसे बुरी दृष्टिसे देखी गई और जिसने सुना उसीने निंदा की। जिनेन्द्र भगवान्‌की प्रतिमामात्रका अनादर करनेसे अञ्जना को इतना दुःख सहन करना पड़ा फिर जो पापात्मा जिन-शासनकी अवज्ञा करेंगे उन्हें नहीं मालूम नरकोंमें कैसे कैसे दुःख सहने पड़ेंगे। यही क्यों ऐसी बातोंके शास्त्रोंमें अनेक उदाहरण भरे हैं पर उन सबके निदर्शन करानेकी आवश्यकता नहीं। सबके लिये यही उदाहरण काफी होगा कि जिन शासनकी सच्ची प्रभावना करनेवाले एक ध्यानस्थ दिगम्बर मुनिके गलेमें राजा श्रेणिकने अज्ञानवश मरा हुआ सर्प डाल दिया था इसी कारणसे राजा श्रेणिकने सातवें नर्कका बन्ध किया था।

हमारे पाठकगण इस चरितसे केवल यही शिक्षा नहीं ग्रहण कर सकते कि अभिमानका फल क्या हो सकता है एवं जिन शासनकी अवज्ञाका फल क्या होता है किन्तु हम इस चरितसे नहीं नहीं चरितके एक एक अक्षरसे अच्छीसे अच्छी शिक्षा ग्रहण कर सकते हैं। हमें यह चरित बतलाता है कि मानवजन्मकी उपयोगिता और कर्त्तव्य क्या है? यह चरित मनुष्यके आलस्यको छुड़ाकर कर्मवीर बना सकता है। इस चरितसे आत्मकल्याणके अभिलाषी

मनुष्य आत्मकल्याण कर सकते हैं और लोगोंमें ख्यातिके चाहनेवाले नर ख्यातिलाभ कर सकते हैं। विपत्तिमें साहसहीन न होना एकबार कार्यमें सफलता प्राप्त न करनेपर भी कार्यमें तत्पर रहना, इस बातकी शिक्षा हमें इसी चरित्रसे मिल सकती है। कर्मोंका खेल, मनुष्य स्वभावकी परिस्थिति, पातिव्रत्यकी रक्षा और एक अबलाका साहस इस चरित्रमें मिल सकता है।

चतुर स्त्रियाँ इस चरित्रके अनुशीलन करनेसे मानव जन्म को सफलकर सकती हैं और उसी पदको पा सकती हैं जिस पदको कि सीतादिकने प्राप्त किया है। हमें आशा और विश्वास होता है कि ऐसे चरित्रोंका अगर हमारे समाजकी अबलाओंपर अच्छा प्रभाव पड़े और वे इनसे थोड़ी भी शिक्षा ग्रहण करें तो वे संसारका उद्धार करनेवाली देवियाँ कहलावेंगी। और अपने चरित्रसे संसारको चकित करेंगी। हमें सच्चा भरोसा है कि जिस दिन हमारे यहाँका अबलासमाज ऐसे ऐसे चरित्रोंका अनुशीलन और मनन करेगा उसी दिन जैन समाजकाही नहीं किन्तु समस्त संसारका एक नवीन जीवनप्रभातका उदय होगा और उन्नतिके युगका प्रारम्भ होगा।

महिलाकुलभूषण

श्रीमती मनोरमा देवी।

मनोरमा देवी धन-धान्यसे परिपूर्ण भारतवर्ष की प्रख्यात नगरी उज्जैनके सुप्रसिद्ध सेठ महीदत्तकी कन्या थीं। इकलौती कन्या होनेसे माता-पिताका इनके ऊपर असीम प्रेम था। ८ वर्षकी अवस्था होने पर ये संसारसे विरक्त एक जैनसाधुनी (जिसे अर्जिका कहते है) के पास शिक्षा प्राप्त करने के लिये भेजी गईं। गृहकार्यकी सम्पूर्ण शिक्षा से दीक्षित होनेपर अर्जिकाने अन्तिम बार पातिव्रतधर्मका एक व्रत देकर कि "मन-वचन-काय से अपने पतिके सिवाय किसी अन्य पुरुषको अधर्मकी दृष्टिसे नहीं देखना" तथा इसके पालनेकी प्रतिज्ञा लेकर कुमारीको पिता-माताके यहाँ भेज दिया। १६ वर्षकी आयु होनेपर कुमारीकी यौवनावस्था-को विचारकर सेठ महीदत्तने अपने पुरोहितको बुलाया और उसके हाथमें टीकेके लिए बहुमूल्य मोतियोंका हारदे कुमारी के योग्य वरकी खोजमें भेजा। पुरोहितजी वरकी तलाशमें

फिरते २ कौशल प्रदेशके वैजयंती नगरमें पहुँचे। वहाँ के महामान्य सेठ महीपाल जौहरीके सुपुत्र कुमार सुखानन्दको गुण-अवस्था आदिमें कुमारीके योग्य वर समझ उन्हें हार व श्रीफल देकर सम्बन्ध निश्चित कर वापिस उज्जैनमें आये। तथा सुखानन्द कुमारकी यथायोग्य प्रशंसा सेठ महीदत्तसे कर संबन्ध निश्चित होनेका समाचार सुनाया। शुभतिथि पर मनोरमा देवी और कुमार सुखानन्दका विवाहसम्बन्ध होगया और कुमारी अपने पतिके यहाँ जाकर गृहकार्यमें प्रवृत्त हुई।

कुछ समय सुखसे रहनेके पश्चात् एक दिन रात्रिके समय जब सुखानन्द कुमार अपनी कोमल शय्यापर विश्राम ले रहे थे कि अचानक नींद खुल गई और सोचने लगे कि मैं बिना उद्योग के पिता की उत्पन्न की हुई सम्पत्तिसे आनन्द करता हूँ। मेरी अवस्था भी अब उद्योग करने योग्य हो गई है। इसलिये अब मुझे व्यापारमें प्रवृत्त होकर सम्पत्ति पैदा करना चाहिये। उन्होंने अपना यह विचार तत्काल अपनी प्यारी अर्द्धाङ्गिनीको भी निद्रासे सचेत कर सुना दिया। मनोरमाने अपनी स्वामीके इन उत्कृष्ट विचारों की प्रशंसा की तथा घरही पर रहकर व्यापार करने का परामर्श दिया। परन्तु सुखानन्द कुमारने अनेक कारणोंसे घर पर ही रहकर व्यापार करना पसन्द न कर विदेशमें अधिक सफलता समझ विदेशही जानेका निश्चय किया।

मनोरमाको यद्यपि पतिसे विछोह होनेका दुःख अधिक हुआ तब भी उसने कुमारको यथायोग्य वैदेशिक शिक्षाएँ देकर खुशीसे विदेश जाकर व्यापारमें सफलता प्राप्त करने की राय दी। प्रातःकाल होते २ कुमारने यह अपना विचार अपने पूज्य पिताजीसे भी निवेदन किया और जाने की आज्ञा माँगी। पिताने भी कई तरह की युक्तियाँ समझाकर इन्हें व्यापार के लिये जानेकी आज्ञा दी और कुमार स्थल-जल मार्ग से द्वीपान्तरोंमें व्यापारके निमित्त प्रस्थान कर गये।

कुमारी मनोरमा देवी अपने स्वामी सुखानन्दको किसी तरहकी तकलीफोंका सामना न करना पड़े तथा व्यापारमें अधिक सफलता हो इसलिये परब्रह्म परमात्माका ध्यान किया करतीं थीं। एक दिन जब कि कुमारी प्रातःकालकी क्रिया से निवृत्त हो स्नानकर अपने प्रासाद की छतपर खड़ी अपने केशोंको खोलकर सुखा रही थीं कि वहाँ का राजकुमार घोड़ेपर चढ़ा हुआ निकला। राजकुमारकी दृष्टि कुमारी पर पड़ी। उसके रूपलावण्यको देखकर राजकुमारको मनोजके शरोंका निशाना बनना पड़ा। राजकुमारने अपने महलोंमें जाकर १ दासीको बुलाया तथा हर तरहकी युक्ति समझाकर जिस प्रकार हो सके कुमारीको लाने के लिये भेजा। दासीने जाकर अपने बुद्धिप्रावल्यसे कुमारीके सामने यह प्रस्ताव उपस्थित किया। सुनकर

कुमारीने भयंकर रूप धारण किया, नेत्र रक्तवर्ण हो गये, हृदय रोमांचित होगया। उसने दासीको तथा राजकुमारको खूब फटकारा। तथा इसको महलोंसे निकाल बाहर किया। दासी अपनेको अपमानित समझ इसका बदला लेनेका विचार कर तुरन्त सुखानन्दजीकी माताके पास गई और उन्हें कुमारीके विरुद्ध इस तरह भड़काया कि तुम्हारा पुत्र तो द्वीपान्तरमें रोज़गार करने गया है परन्तु तुम्हारी पुत्रवधू नित्य राजकुमार के महलोंमें जाती है। सेठानीजीको यह समाचार सुनने से अत्यन्त खेद हुआ। उन्होंने इसकी छान बीन कुछ न कर अपने कुलमें कलंक लगता हुआ समझ चुपकेसे यह समाचार सेठजी से कह सुनाया और प्रस्ताव किया कि पुत्रवधूको माता पिताके यहाँ भेजनेका बहाना बतलाकर जंगलमें छुड़-वा देना चाहिये। सेठजी ने भी सेठानीजीकी बातोंपर विश्वासकर इस प्रस्तावका समर्थन किया और प्रस्तावानुसार मनोरमा जंगलमें छुड़वानेके लिये भेज दी गई।

जब उस सुशीला परम साध्वी सती मनोरमा को यह सब हाल उसके सारथी से ज्ञात हुआ जो उसे जंगलमें छोड़ने के लिये लिये जाता था तब उसे एकाएक मुर्च्छा आगई! मूर्च्छासे जाग्रत होनेपर फूट फूटकर रोने लगी। अपने परम प्यारे स्वामीका नाम स्मरणकर इस विपत्तिसागरसे उद्धार करनेके लिये उन्हें ज़ोर २ से पुकारने लगी। इस निराश्रित अबलाके कर्णभेदी विलाप के शब्दसे सारथीका

हृदय पानी २ होगया और उसने उसके कहे अनुसार उसके माता पिताके घर उज्जैन पहुंचादेनेकी प्रतिज्ञा की। उज्जैन पहुंचने पर सेठ महीदत्तने भी एकाएक पुत्रीके आनेसे संकल्प विकल्प कर उसे अपने घरमें रखनेकी अनिच्छा प्रकट की। तब सारथीने निराश होकर बिलखती हुई मनोरमासुन्दरीको एक सघन जंगलमें छोड़कर वैजयंती नगरका रास्ता लिया।

कुमारी अपनी भाग्यको धिक्कारती हुई वनस्पतियोंसे अपने जीवनके दिन निर्वाह करने लगी। कभी अपने पति-वियोगके दुःखोंपर, कभी कलंकके पातकपर, कभी पूर्वोपार्जित कर्मों पर फूट २ कर रोने लगती थी। परन्तु उसके कर्मोंने उसे अभीतक नहीं छोड़ा और सहसा एक विपत्तिका पहाड़ और उसके ऊपर डाल दिया। जिसका वर्णन इस प्रकार है—

सुन्दरी एक वृक्षकी छायामें बैठी हुई अपने हृदयसर्वस्व स्वामी सुखानन्द के ध्यानमें मग्न थी कि वहां से राजपट्टीका राजकुमार वनक्रीड़ा करता हुआ आ निकला। यह भी सुन्दरीके रूप और यौवन पर आसक्त हो गया और सुन्दरी को अपने नगरमें लेजाकर एक मनोज्ञ महलमें रखा। सुन्दरी का जीवनाकाश कठोर कष्ट मेघदलोंसे आच्छन्न हो गया अब उसे सिवाय एक ईश्वरके और किसीका आधार नहीं रहा। उसने हृदयमें ईश्वरका ध्यान कर प्रार्थना की कि हे जगदाधार! चिदानन्द दीनबन्धु दीनानाथ परमेश्वर!

आज मेरा सर्वस्व लुटा जा रहा है। मेरा सतीत्व भ्रष्ट करने के लिये यह नररूप राक्षस शीघ्र आनेवाला है। इसलिये शीघ्र मेरे सतीत्वकी रक्षा कीजिये !!! राजकुमार भी अपनी कुवासना को तृप्त करने के लिये शीघ्र आ पहुँचा। परन्तु शीलकी महिमासे देवशक्तिने प्रगट होकर राजकुमारको उठाकर गचपर पछाड़ दिया। वह मूर्छित हो गया।

मूर्छासे जागनेपर अपने किये पर बहुत पछतावा करने लगा। तथा इसके प्रायश्चित्तके लिये कुमारीसे हाथ जोड़कर क्षमा की प्रार्थना की—कुमारी की आज्ञानुसार राजकुमारने उसको उसी स्थानपर छोड़ दिया जिस स्थानसे कि वह उसे लाया था। इस तरह कुमारी ईश्वरका शतशः धन्यवाद देती हुई उसी भयानक जंगलमें आई और फिर अपने जीवनके दिन व्यतीत करने लगी। भाग्यवशात् उस जंगलसे काशीका धनिक सेठ धनदत्त व्यापार करता हुआ निकला। कुमारीका रोदन सुन उसे विपत्तिसागरमें फँसा देख सेठजीने उससे उसका सब हाल पूछा। कुमारीने अपनी आरम्भसे अन्त तक की सब दुःखमय कहानी सुनाई। सेठ धनदत्तने उसपर बहुत दुःख प्रगट किया तथा कुमारीको अपनी भाञ्जी बतलाकर अपने घर काशीको ले गया तथा उसे सुखपूर्वक रक्खा।

यहां मनुखानन्द कुमार जब व्यापारमें अपनी विलक्षण बुद्धिसे अशातीत सफलता प्राप्त कर अपनी जन्मभूमि उज्जयनी

नगरको लौटे आरहे थे तब नगरसे थोड़ी दूर पर उनको अपनी प्राणप्यारी सहधर्म्मिणी के झूठ कलंकित होकर निकाले जानेका दुःखद समाचार मिला। समाचार सुननेसे इनको मूर्च्छा आ गई। जाग्रत होनेपर अपना सब सामान पिताजीकी सेवामें समर्पण करने के लिये अपने साथियोंको सौंपकर योगीका भेष रखकर ये अपनी गृह-लक्ष्मीकी खोजमें निकले। खोजते २ ये राजगृही नगरीमें पहुँचे। जब वहाँ भी निराश होना पड़ा तब फिर जंगल २ भटकते फिरते कई महीनोंका वियोग रूपी दुःख तथा बनवासके क्लेश सहते हुए काशीमें पहुँचे और अपनी सह-धर्म्मिणीसे मिलकर वहां कुछ दिन सुखसे रहे।

जब वैजयन्ती नगरके राजाको सुन्दरी मनोरमाके कल-ङ्कित होकर अन्यत्र जङ्गलमें भेजे जानेका तथा कुमार सुखा-नन्दका उसकी खोजमें जङ्गल जङ्गल भटकते फिरनेका हाल ज्ञात हुआ तब उन्होंने तुरन्त सेठ महापालको बुलाकर उन दोनोंके खोजनेके लिये अनुरोध किया। तदनुसार शीघ्र सेठजीने चारों तरफ अपने अनुचर भेजे तथा आप स्वयं भी पुत्र व पुत्र वधूको खोजमें निकले। खोजते खोजते ये भी काशीमें पहुँचे पुत्र व पुत्र वधूको देख आनन्दसागरमें मग्न हो गये और उनको लेकर शीघ्र वैजयन्तीनगरको चल दिये। मनो-रमा सुन्दरीको अपने कलङ्कका बहुतही दुःख था, इसलिये उसने इसके इन्साफ बगैर नगरमें प्रवेश करनेसे इन्कार किया।

यह इन्साफ राजाने खुद अपने हाथमें लिया और तिथि दूसरे दिनकी नियत कर दी। पुण्यका प्रताप बड़ा प्रबल होता है। इस बीचमें रात्रिको जो लीला हुई वह अलौकिक है। मानो देवशक्ति पतिव्रता स्त्रियोंका न्याय राजासे होना अयोग्य समझ खुद न्याय करनेके लिये इस मृत्युलोकमें अवतीर्ण हुई। रात्रिको नगरके चारों ओरकी चहारदीवारीके सब बड़े बड़े फाटक बन्द हो गये और राजाको स्वप्न हुआ कि नगरके सब फाटक बन्द करदिये गये हैं। पतिव्रता स्त्रीके चरण-स्पर्श मात्रसेही वे खुल सकेंगे।" प्रातःकालही राजाको नगरके फाटक बन्द होनेका समाचार मिला। राजा को शीघ्रही अपने स्वप्नकी बात याद आई और उन्होंने मौकेपर स्वतः जाकर नगरकी कुल स्त्रियोंको क्रमशः दरवाज़े पर चरण स्पर्श करते हुए चले जानेकी आज्ञा दी।

नगरकी छोटीसे छोटी स्त्रीसे लगाकर राजमहिषी तकके चरणोंका स्पर्श दरवाज़े से होगया परन्तु दरवाजा नहीं खुला। तब सब भेद समझकर राजाने आकर मनोरमा देवीकी शरणमें सब समाचार कहकर प्रार्थना की कि हे! नारीकुलरत्न महापतिव्रता मनोरमा! चलकर अपने चरणकमलोंके स्पर्शसे दरवाज़े को खोलो और अपनी कीर्त्तिरूपी विजयवैजयन्तीको सारे भूमण्डलमें उड़ाकर स्त्रियोंकी लाज रक्खो। मनरोमा सुन्दरी दरवाज़े पर गई और परमात्माका ध्यान रखकर दर-वाज़े से चरण स्पर्श किया कि उसी समय मेघकी सी गड़-

गड़गड़ाहट करता हुआ दरवाज़ा खुल गया। मनोरमा देवीके पातिव्रतकी कीर्त्तिकौमुदी सारी दुनियामें फैल गयी। जिसे आज कई हज़ार वर्षोंके व्यतीत होनेपर हमलोग सुनकर अपनेको कृतार्थ समझते हैं तथा उस सरलासाध्वी जगत्पूज्या महिलाकुलकमलचूड़ामणि मनोरमा देवीकी सहस्र मुखसे मुक्तकण्ठ होकर बारम्बार प्रशंसा करते हैं।

मनोरमा देवी अपने राजप्रासादोंको भी नीचे दिखाने वाले गगनचुम्बी महलोंमें आकर आनंदसे पतिसेवामें मग्न हुई। दोनों दम्पतिने फिर सुखसे संसारयात्राको पूर्णकर हमको अपना आदर्श बतलाकर अनन्तधामका मार्ग लिया।

धर्मकी महिमासे कठिनतर कार्य्य भी सुलभ होजाते हैं। अन्तमें धर्म्म हीकी जय होती! धर्मके प्रभावसे मनोरमाने शीलकी सारी पुनः धारण की और व्यर्थ अपवाद लगानेवालोंका मस्तक नीचा किया।

नारीका भूषण शील ही है। इसीसे उनकी शोभा है शीलवती नारी जिस घरमें रहती है वहां कूतक पातक कभी नहीं होता है और जहां कुलटा रहती हैं वहां दिन रात कूतक पातक रहता है ऐसा जिन शासनका वचन है। शीलहीसे शिवपदकी प्राप्ति होती है, इन्द्र अहमिन्द्र आदिके पद भी इसीके सेवनसे मिलते हैं शीलवतीकी विपत्तिकी घड़ी भी सुलभतासे कट जाती है और पग पगमें सुख ही सुख मिलता है।

संसारमें शीलकी महिमा अपरम्पार है। यही सार है और इसीसे भवसागर का बेड़ा पार है। शील और पतिव्रत धर्म पालनेका प्रत्यक्ष फल इससे बढ़कर और क्या होगा कि स्वर्गके देवोंने भी मनोरमाकी सहायता की। इसलिये जगत्‌मात्र के नरनारीको शीलव्रत धारण करना उचित है।

वह दिन कैसे महत्वका होगा जिस दिनको भारतको गौरव लक्ष्मीको फिरसे प्राप्त करनेके लिये मनोरमा सुन्दरी जैसी गृहलक्ष्मी आकर भारतके हरेक गृहस्थके घरमें जन्म लेंगी। उस दिनको प्रशंसा नहीं की जा सकती। हम परमात्मासे प्रार्थना करते हैं कि हमें उस दिनके शीघ्र दर्शन हों और ऐसी ही पतिव्रता हमारे गृहोंको अपनी चरणरजसे पवित्र करें।



८

दृढ़व्रती
श्रीमती रानी रयनमंजूषा।

रानी रयनमञ्जूषा हंसद्वीपके सम्राट् कनककेतुकी कन्या थीं। इनके चित्र विचित्र नामक दो भाई भी थे। राजकुमारी रयनमञ्जूषाका बाल्यावस्थाका सौन्दर्य अपूर्व था। छोटीही अवस्थासे इनके पठन-पाठनका योग्य प्रबन्ध किया गया जिससे थोड़ेही दिनोंमें ये स्त्रियोचित शिक्षासे परिपूर्ण हो गईं तथा अपनी बुद्धि और गुणोंसे पिता माताके चित्तमें असीम आह्लाद उत्पन्न करने लगीं। कुमारीकी यौवनावस्था समीप आई देख राजाको इनके पाणिग्रहणकी चिन्ता हुई। एक दिन राजा कनककेतु अद्वितीय गुणोंसे विभूषित भविष्यद्वक्ता जैनमुनिके दर्शनोंको गये और उन्होंने पुत्रीके पाणिग्रहण विषयमें भी प्रश्न किया। विलक्षण योगी मुनि महाराजने कहा कि आपकी राजधानीमें सहस्रकूट नामका देवालय है उसके किवाड़ अत्यन्त भयङ्कर और मजबूत हैं। महापराक्रमी योद्धाके सिवा उन्हें कोई खोल नहीं

सकता है। जो वीर पुरुष उनको खोलेगा वही रयन मञ्जूषाका पाणिग्रहण करेगा। राजधानीमें आकर राजाने सहस्रकूट देवालयपर पहरा बैठा दिया और आज्ञा दी कि जो व्यक्ति इसके किवाड़ोंको खोले तुरत हमको उसका समाचार दिया जावे।

सुप्रसिद्ध चम्पापुरीका राजा श्रीपाल जो कुष्टरोगसे पीड़ित हो अपनी राजधानीसे निकल जङ्गल जङ्गल फिरता था पुण्योदयसे अचानक उसे सती साध्वी महापतिव्रता राजकुमारी मैनासुन्दरी समान पत्नीकी प्राप्ति हुई। जिसके उद्योगसे उसका शरीर कुष्ट रोगसे निवृत्त होकर बहुत सुन्दर हो गया। अपनी प्यारी स्त्रीसे देश पर्यटनके लिये बिदा होकर कौशाम्बीपुरके प्रसिद्ध व्यापारी धवल सेठके साथ अपनेको गुप्त रखे हुए साधारणजनके समान राजा श्रीपाल घूमता घूमता हंसद्वीपकी राजधानीमें आ पहुंचा। यह जैनधर्मका पक्का श्रद्धालु था। इसलिये श्री वीतराग परमेश्वरके दर्शनोंकी खोजमें शहरमें निकला। खोजते खोजते यह उसी सहस्रकूट चैत्यालयके पास आ पहुँचा जिसके किवाड़ किसीसे खुलते भी नहीं थे। राजा श्रीपालको दर्शनोंकी बड़ी उत्कण्ठा थी इसलिये उन्होंने ईश्वरका नाम स्मरण करके किवाड़में पूर्णवलके साथ धक्का दिया। कर्णभेदी शब्दके साथ किवाड़ खुल गये और मंदिरके भीतर प्रवेश कर भक्तिभावसे श्रीभगवान्‌के दर्शन कर अपने नेत्रोंको शान्त

किया। इधर किवाड़ खुलनेकी आवाज़से पहरेदारोंमें कोलाहल मच गया। शीघ्रही महाराजको शुभसमाचार सुनाया गया। राजाने अपनी कन्याके योग्य वरको अनायास प्राप्तिसे अत्यन्त आनंद मनाया तथा शुभ तिथिमें रयनमञ्जूषाका विवाह राजा श्रीपालके साथ करदिया। राजा श्रीपाल कुछ दिन अपनी नवीन ससुरालमें अत्यन्त सुखके साथ रहे। परन्तु जब व्यापारी धनकुबेर धवल सेठ अपने व्यापारको समाप्तिकर हंसद्वीपसे विदा होने लगा तब राजा श्रीपालको भी अपने देश पर्यटनकी याद आई और वे जानेको उद्यत हुए। यद्यपि उन्होंने राजकुमारी रयनमञ्जूषाको विदेशके क्लेशोंको भयानक रूपसे बतलाकर उसको राजप्रासादोंमें रहनेकाही अनुरोध किया परन्तु कुमारीने पतिवियोगके दुःखोंके सहन करनेके लिये अपनेको असमर्थ बतलाकर तथा पतिकी सेवाही अपना श्रेष्ठ धर्म समझकर पतिके साथ रहनाही श्रेष्ठ समझा और साथ चलनेको उद्यत हुई अन्तमें राजा श्रीपाल और रानी रयनमञ्जूषा दोनों प्रतापी धवलके जहाज़में बैठकर विदेशको प्रस्थानित हुए।

अथाह समुद्रके पृष्ठ भागपर लक्ष्मीवान् धवल सेठका जहाज़ वायुवेगसे चला जा रहा है। ऊपर आकाश और नीचे पानीके चारों ओर कुछ भी दिखाई नहीं देता है। जहाज़परके सब यात्री अपने अपने कार्यमें मग्न हैं कि— यकायक धवल सेठकी कुटिल दृष्टि सुकुमारी राजकुमारी

रयनमञ्जूषापर पड़ी। रयनमञ्जूषाके रूप, यौवन, कोमलता आदि सराहनीय गुणोंको देखकर धवल सेठको कामदेवके तीक्ष्ण शरोंका निशाना बनना पड़ा। उसकी बुद्धि नष्ट हो गई और कुवासनाने उसके हृदयपर अपना पूर्ण आधिपत्य जमा लिया और उसकी इच्छाकी पूर्त्तिके लिये वह प्रयत्न सोचने लगा। उसने विचार किया कि अगर श्रीपालको इस पर्यायसे मुक्त कर दूँ तो रयनमञ्जूषा मेरे हाथ आ सकती है। इस कुटिल विचारको कार्य रूपमें परिणत करनेके लिये उस नष्टबुद्धि दुराचारी धवल सेठने शीघ्र ही राजा श्रीपालको समुद्रमें गिरवा दिया और कृत्रिम दुःख प्रकाशित करने लगा। राजा श्रीपाल सब कारण समझ स्थिर चित्तसे परमेश्वरका नाम स्मरण करने लगे। सौभाग्यसे कुछ देरके पश्चात् उन्हें एक काठका तख्ता बहता हुआ मिल गया। उसीपर वह बैठ गये। अपने जीवनके बचनेकी आशा समझ कर उन्होंने चिदानंद अविनाशी परब्रह्मपरमात्माको कोटिशः धन्यवाद दिया और उन्हींका स्मरण करते हुए बहते चले गये।

यहाँ जब कोमल चित्त सुशीला राजकुमारी रयनमञ्जूषाको अपने पतिके समुद्रमें गिरनेका हाल ज्ञात हुआ वह तुरत मूर्छित होकर गिर पड़ी। उसके दुःखका पारावार नहीं रहा। जो राजकुमारी अपने पतिके थोड़े दिनोंके बिछोहके दुःखोंको भी सहनेमें असमर्थ थी उसे अपने स्वामीका इस जनम भरके लिये बिछोह हुआ है। कहिये उसके

दुःखका अन्त कैसे हो सकता है। जिसका जीवनाधार समुद्रकी अविरल तरङ्गोंमें लुप्त हो गया है उसे धैर्य कैसे हो सकता है। रयनमञ्जूषा मूर्छासे सचेत होनेपर स्वामीका स्मरण कर फूट फूटकर रोने लगी। उसकी प्रतिध्वनिसे सारा जहाज़ काँप उठा। उसने भोजनादि त्याग दिया केवल स्वामीके नामकाही स्मरणकर अपने जीवनको व्यतीत करने लगी। अभी तक उस सरल साध्वी सुन्दरीको यह नहीं ज्ञात हुआ है कि यह कुकृत्य इसी नरपिशाच धवल सेठका है।

धवल सेठ अपने कार्यकी सिद्धिका समय निकट जान बहुत प्रसन्न हुआ और उसने कुमारीको श्रीपालसे असन्तुष्ट कराकर अपने ऊपर प्रसन्न करानेके लिये एक दूतीको कुमारीके पास भेजा। दूतीने कई चालोंसे कुमारी को समझाया परन्तु कुमारी तो महापतिव्रता पत्नी थी वह कैसे अपने स्थिर न्यायमार्गके कर्त्योंके विरुद्ध कार्य कर सकती थी। उसने दूतीको खूब धमकाया। जब धवल सेठने दूती से अपने कार्य की सिद्धि होना असंभव समझा तब वह स्वयं कुमारीकी सेवामें आकर प्रार्थना करने लगा कि तुम्हारा पति तो अब परलोक चला गया है तथा तुम्हारी इस समय किशोरावस्था है। तुम अपने वैधव्यका किस तरह निर्वाह कर सकोगी। तुम्हारा पति श्रीपाल मेरे पास ही नौकर था। तुमको चाहिये कि मेरे ऊपर प्रसन्न होकर इच्छित सुखोंको भोगो इत्यादि २ उसने अपनी प्रशंसा की बहुतसी बातें

कहीं। परन्तु जब रयनमंजूषाने उस दुष्टको एक भी बातपर ध्यान नहीं दिया तब यह बलात्कार उसका सतीत्व भंग करने के लिये उद्यत हुआ। उस महापतिव्रता अबला राजकुमारी रयनमंजूषाने अपना सर्वस्व खोया समझ और सिवाय उस चिदानंद अनन्तशक्तिवान् परमात्माके कोई इस दुःख से छुटकारा करनेवाला न जान प्रार्थना करने लगी—कि हे प्रभो! यह नीच मुझ अबलाका सर्वस्व हरण करने के लिये उद्यत हुआ है। शीघ्र मेरी रक्षा कीजिये। अबला के सतीत्वकी रक्षाके लिये शीघ्र दैवशक्तिने प्रगट होकर अपनी अखंड शक्तिसे धवल सेठको मूर्च्छित कर दिया और उसे अनेक प्रकारके दुःख देकर अपने कियेका पूर्ण फल दिया। अब धवल सेठको ज्ञात हुआ कि पतिव्रता नारियोंमें कितनी शक्ति होती है और उनका तेज क्या नहीं कर सक्ता है। उसने अपने दुःष्कृत्योंके प्रायश्चित के लिये परमेश्वरकी स्तुति की और राजकुमारीसे भी क्षमा की प्रार्थना की। उस समय से धवल सेठकी बुद्धि ठीक हुई और फिर रयनमंजूषाको किसी तरह का मानसिक शारीरिक दुःख देने तक का उसने विचार भी नहीं किया।

यहाँ राजा श्रीपाल काठके तख्तेपर बैठे तैरते २ अपने पुण्यकर्मोंके प्रतापसे कुंकुमद्वीपके किनारे समुद्रसे पार हुए। किनारे पर वहाँ के राजाके बहुतसे कर्मचारी इसलिये पहरा दे रहे थे कि उसे ज्योतिषियोंसे मालूम हुआ था कि उसको

राजकुमारी गुणमाला का पाणिग्रहण वही पुरुष करनेको समर्थ है जो समुद्रमें वाहु बलसे तैरता हुआ किनारे आवेगा। तदनुसार कर्मचारियोंने राजा श्रीपालको आदर सत्कार से लेकर राजाके निकट उपस्थित किया। राजाने प्रसन्न होकर अपनी प्यारी पुत्रीका विवाह श्रीपालसे कर दिया और श्रीपाल अपने भाग्य के चमत्कार पर आश्चर्य करते हुए नववधूके साथ आनन्द पूर्वक रहने लगे।

धवल सेठका जहाज़ भी समुद्रको लाँघता हुआ इसी कुंकुमद्वीपके किनारे आया। सेठने राजाकी भेंटके लिये अनुपम वस्तुओंको लेकर राज-सभाकी ओर गमन किया। जब श्रीपालको राजसभामें उच्चासन पर प्रतिष्ठित हुए देखा तो सेठके होश उड़ गये। वह शीघ्र राजासे भेंट कर विदा होने लगा। विचारा कि श्रीपाल मुझसे अवश्य बदला लेगा। इसका राजाके यहाँ मान है इसलिये चाहे जो कुछ करा सकता है। अत: इसकी प्रतिष्ठाको नष्ट करना चाहिये। सोच समझकर उसने भाटोंको बुलवाया कार्यसिद्धिपर उन्हें बहुतसे रुपये देनेका वादा कर विदा किया और राजसभामें आकर श्रीपालको अपना संबन्धी पुकारकर उसे भाट सिद्ध करने के लिये कहा। तथा भाट लोगोंकी बुद्धि चंचल होती ही है उन्होंने राजसभामें जाकर किसीने श्रीपाल को अपना पुत्र किसीने भतीजा किसीने भाई आदि संबन्ध-शब्दोंसे संबोधन किया। राजाको शीघ्र भ्रम होगया कि

श्रीपाल जातका भाट है। अपनी जातिका लोपकर इसने मेरी पुत्री का पाणिग्रहण किया है। राजा बहुत रुष्ट हो गया और उसने श्रीपालको सूलीदंड की आज्ञा दी। श्रीपाल महायोधा थे वे इस नाटक का अन्तिम दृश्य देखना चाहते थे इसलिये उन्होंने इस विषयमें कुछ नहीं कहा परन्तु जब उसकी प्यारी पत्नी गुणमाला इससे भयभीत हो उनके चरणोंपर गिरकर उनसे जाति आदिके विषयमें प्रश्न कर उत्तर की इच्छा करने लगी तो उन्हों ने समझाकर कहा कि समुद्रके किनारे पर एक व्यापारी जहाज़ ठहरा हुआ है उसमें रयनमंजूषा नामक एक राजकुमारी होगी उससे मेरा सब हाल पूंछना। वह विस्तार सहित तुम्हारी सब शंकाओं का समाधान करेगी। तदनुसार राजकुमारी गुणमालाने जाकर कुमारी रयनमंजूषासे महाराज श्रीपालका सब वर्णन तथा धवल सेठ की कुटिलता की सब कथा सुनी। परस्पर वार्तालाप करती हुई दोनों कुमारी राजा के समीप आईं और यथार्थ हाल समझाकर राजा श्रीपालको बन्धनसे मुक्त कराया। धवलसेठकी सम्पूर्ण कुटिलता प्रकाशित हो गई और उसके किये अनुसार राजा ने उसे अत्यन्त कठोर दंड देने की इच्छा प्रगट की। परन्तु शुद्धचित्त दयालु राजा श्रीपालने जब अपने ही कारणसे धवल सेठ का सर्वस्व नाश होता देखा तो उसको क्षमा कर दिया।

इस तरह राजा श्रीपाल राजकुमारी रयनमंजूषा को

साथ लिये हुए कई देशोंका पर्यटन करते हुए उज्जैन जाकर रानी मैनासुन्दरीको ले अत्यन्त विभूतिके साथ चम्पापुर अपनी पुरानी राजधानीमें आकर आनन्द से रहने लगे। बहुत समय सुखके साथ रहने के पश्चात् एकदिन मेघपटलों को छिन्न भिन्न होते देख राजाको वैराग्य हो गया और वे दीक्षा लेकर जङ्गलोंमें तप करने के लिये चले गये।

इधर जब रयनमंजूषाने देखा कि हमारे पतिदेवने सर्वकल्याणकारी जैनेन्द्री दीक्षा धारण करली है तो अब पतिके बिना संसारमें नारियों का रहना व सांसारिक सुखों का भोग करना किस कामका? ऐसा विचार कर पूर्व घटनाओंके स्मरण होने से संसारका असार स्वरूप जान किसी अर्जिकाके समीप जाकर दीक्षा ग्रहण की और श्रावकोंके पञ्चअणुव्रत, चार शिक्षाव्रत तथा तीन गुणव्रत इस प्रकार द्वादश व्रतोंका बड़ी योग्यतासे अतीचार और अनाचार रहित पालन किया। अनित्य अशरणादि द्वादश भावनाओं की भावना करके क्षुधा-तृषा इत्यादि परीषहों को भली भाँति सहन करने लगी एवम् निरन्तर ही अपने समय को स्वाध्यायादि में बिताने लगी। क्रमशः एकादश प्रतिमाओं को धारण कर कर्मों की निर्जरा की और अन्तमें समाधि मरण द्वारा आत्मोत्सर्ग किया और स्वर्गलक्ष्मीको प्राप्त किया।

हमारे वाचकों ने इस चरितको पढ़कर संसारकी अनित्यका उदाहरण भली भाँति जाना होगा। इस चरितसे

पाठकोंको इसका ज्ञान अवश्य हुआ होगा कि सज्जन कैसी ही दशामें क्यों न हों एवं दुष्ट लोग सज्जनसे चरमसीमा की दुष्टता भी करें पर वे अपनी सज्जनताका परित्याग कभी नहीं करते। पर यह बात अवश्य है कि सच्चे धर्मात्मा क्षुद्रों की क्षुद्रता से दुःखित कभी नहीं होते। यही कारण है कि दुष्टमति धवल सेठ के द्वारा कई बार घोर उपद्रव करने पर भी उसके दुष्कृत्योंका उसे बदला देने के लिये नीचों की तरह श्रीपालने नीच चेष्टा कभी नहीं की। श्रीपाल को मारनेकी चेष्टा की गई और उसका निरादर करानेके लिये भी धवल सेठने नीच उपायोंका अवलम्बन किया पर श्रीपाल जिनेन्द्र भगवान के शासनमें अटल और अचल श्रद्धा होने के कारण दुःख के अवसरोंपर भी असाधारण सुखोंको भोगा। सबसे अधिक ध्यान देने योग्य बात इस चरित्रमें रयनमंजूषाकी पतिभक्ति है। घोर आपत्ति आने पर और धवलसेठ की भयावनी विभीषिकाओं से भी पतिव्रता रयनमंजूषाका चित्त पतिभक्तिसे विचलित नहीं हुआ किन्तु पतिप्रेममें ही पगा रहा। क्या विचारशील पाठिका इस ओर ध्यान देंगी? मनुष्य समाजकी उन्नतिके लिये इस बातकी आवश्यकता है और अत्यन्त आवश्यकता है कि पतिपत्नीका परस्परमें यथोचित प्रेम हो। पर खेद है कि शिक्षा न मिलनेके कारण हमारे स्त्री समाजमें पतिभक्ति या पतिप्रेमकी उतनी मात्रा नहीं है जितनी होनी चाहिये। मानव

समाजकी वास्तविक उन्नति में अन्य बाधाओंकी तरह स्त्री समाजका शिक्षित न होना उन्हें अपने कर्त्तव्योंका ज्ञान न होना यह भी एक प्रबल बाधा है। हम उस समयकी प्रतीक्षा कर रहे हैं कि जिस समय हमारे समाजमें रयनमंजूषा जैसी पतिपरायणा नारियां उत्पन्न हों और जातिको फिर भी एकबार अपने सत्कर्मों से उन्नतिशालिनी बनायें।

धन्य है यह भारतवर्ष! जहां ऐसी २ रमणीरत्न जन्म धारणकर इस भूमिको पवित्र कर गयी हैं। यद्यपि ऐसे उदाहरणोंसे भारतका सम्पूर्ण इतिहास भरा पड़ा है तथापि हमने कुछ आदर्श होने योग्य शीलवती, सतीत्वपरायणा नारियोंके चरित्रोंका यह संग्रह किया है। सुहृदय पाठक पाठिकाएँ इससे अवश्य शिक्षा ग्रहण करेंगी और उनका अनुकरण करेंगी यही आशा हृदयमें रख यह क्षुद्र लेखक सम्प्रति विदा होता है।

ओं शान्तिः! शान्तिः!! शान्तिः!!!

पुस्तक मिलनेके पते :—

(१) कुमार देवेन्द्र प्रसाद जैन, आरा।

(२) मैनेजर, मनोरञ्जन कार्यालय, आरा।

(३) जैनहिन्दीग्रन्थरत्नाकर कार्यालय,

हीराबाग, गिरगांव, बम्बई।

(४) संचालिका, श्राविकाश्रम,

ताड़देव, जुबिलीबाग, बम्बई।

(५) जैन श्राविकाश्रम, जैन मन्दिर,

लहारी टोला, मुरादाबाद।

(६) श्रीनन्दकिशोर जैन,

स्याद्वादमहाविद्यालय, बनारस सिटी।

(७) बाबू कीर्त्तिप्रसाद जैन बी० ए०

मन्त्री स्त्रीशिक्षा विभाग,

भारतजैनमहामण्डल, मेरठ सिटी।

वनवासिनी.



लेखक-

उदयलाल काशलीवाल।

वनवासिनी ।

सत्यवादीके दूसरे वर्षका उपहार ।

वनवासिनी ।

(एक सुन्दर सामाजिक आख्यायिका)

लेखक-

उदयलाल काशलीवाल

और

प्रकाशक-

हिन्दी-जैनसाहित्यप्रसारक कार्यालय

बम्बई ।

प्रथम संस्करण]   अप्रैल १९१४   [बिना मूल्य.

मुद्रक-रा. चिं. स. देवळे, मुंबईवैभव प्रेस, सर्व्हेंट्स् ऑफ इंडिया
सोसायटीज होम, सैंढर्स्ट रोड, गिरगांव-मुंबई.

प्राकशक-बिहारीलाल जैन, मालिक-
हिन्दी-जैनसाहित्यप्रसारक कार्यालय
चन्दावाड़ी गिरगांव-बम्बई ।

धन्यवाद पुष्पाञ्जलि।

हम श्रीयुत मालेगांव निवासी रामचन्दजी लालचंदजी कालाको धन्यवाद देतें हैं कि उन्होंने सत्यवादीका उपहार देनेके लिये इस पुस्तकको अपनी ओरसे प्रकाशित करनेकी आज्ञा देकर हमें कृतार्थ किया। आपकी इस छोटेसे पत्रपर जो श्रद्धा और प्रेम है, उसके लिये हम आपके चिर कृतज्ञ हैं। हम अपने और और जाति हित-चिन्तकोंसे भी प्रार्थना करते हैं कि वे भी उक्त सज्जनका अनुकरण कर ऐसी उपयोग पुस्तकोंके प्रचारसे समाजको लाभ पहुँचनेक प्रयत्न करें।

लेखक-

उदयलाल काशलीवाल.

ॐ

उपहार।

इस सुन्दर सामाजिक उपन्यासका स्त्रीशिक्षासे अधिक सम्बन्ध है। इसलिये—

जैन समाजमें स्त्रीशिक्षाका प्रचार करनेके

लिये अश्रान्त परिश्रम करनेवाली

और श्राविकाश्रम-बम्बईकी

प्रधान संचालिका

जैन महिलारत्न

श्रीमती **मगनबाई**की सेवामें

स्त्रीशिक्षाके प्रेमी लेखक द्वारा सादर

समर्पित हुआ।

श्रद्धेय,

असमयमें आपके वियोगसे मुझे जो दुःख हुआ है, उसे शब्दों द्वारा बतला देना अशक्य ही नहीं पर असंभव है। परन्तु ऋषियों-के-"**अवश्यं ह्यनुभोक्तव्यं कृतं कर्म शुभाशुभम्।**" इस वाक्य पर विश्वासलाकर सन्तोष करना पड़ता है। क्योंकि सिवा इसके कुछ गति ही नहीं है। यह मेरे भाग्यविपर्ययका ही दोष था जो आपको अकाल कालके गालमें फँसना पड़ा। अस्तु। आपका आत्मा स्वर्गमें खूब सुखी रहे, यह मेरी आन्तरिक इच्छा है।

आपका स्मरण मुझे भी सदा बना रहे, इसके लिये यह पवित्र पुस्तक आपके स्मरणार्थ अपने समाजकी सेवामें भेंट करता हूं। समाज इसके द्वारा लाभ उठाये यह मेरी कामना है।

अनुज-

लालचंद काला।

लेखकके दो शब्द।

यह एक गुजराती पुस्तकका परिवर्तित रूपान्तर है। गुजरातीमें इस पुस्तकका नाम है **ऋषिदत्ता** और इसके लेखक हैं हमारे सुपरिचित श्रीयुत वाडीलाल मोतीलाल शाह। हमने इसका नाम **वनवासिनी** रक्खा है। इसके पात्रोंके नाम भी हमने बदल दिये हैं। कथाभागका भी कहीं कहीं हमने परिवर्तन कर दिया है। वह केवल सुन्दरता और प्राकृतिकताके लिहाजमें।

पुस्तक छोटीसी है, पर बहुत उपयोगी है। विवाह किस उद्देश्यसे किया जाता है? प्रेम किसे कहते हैं? पति और पत्नीमें किस प्रकारका प्रेम होना चाहिये? ये ही बातें एक मनोरंजक आख्यायिकाके द्वारा इसमें बतलाई गई है। अपने समाजके लिये हमें पुस्तक उपयोगी जान पड़ी इसलिये उसीका यह हिन्दी रूपान्तर पाठकोंकी भेंट किया गया है। इसे पढ़कर पाठकोंने कुछ भी शिक्षा ग्रहण की तो हम अपने श्रमको सार्थक समझेंगे।

गुजराती लेखक महाशयके भी हम अत्यन्त आभारी हैं जो उन्होंने समाज और देशको लाभ पहुंचानेकी दृष्टिसे ऐसी उत्तम पुस्तकका संकलन किया और जिसे रूपान्तर करनेका हमें सौभाग्य प्राप्त हुआ।

लेखक—

उदयलाल काशलीवाल।

वनवासिनी।

पहला परिच्छेद।

दुखीको दिलासा!

"यह क्या विवाह है? बिना दो मनकी एकताके विवाह करना क्या पवित्र सम्बन्ध कहा जायगा? पिताजीके आग्रहसे मैं अपने विरुद्ध राजकुमारी उषाके साथ विवाह करनेके लिये जाता हूं—हा! केवल फेरा फिरनेके लिये—नहीं, विवाहकी गांठ बाँधनेके लिये।

"गरीब कुन्द, तेरे ऊपर यह कैसा निंद्य कलंक! तेरे कोमल हाथोंसे मनुष्य हत्या हो, वह भी प्रतिदिन और उसे कोई जानता तक नहीं, यह नहीं माना जा सकता। कुछ हो, इसमें कुछ न कुछ गुप्त रहस्य जुरूर है। मुझे पूर्ण विश्वास है, तू निर्दोष है—निष्कलंक है। पिताजीने उचित विचार न करके ही तेरा वध कराया। हाय, कैसी निर्दयता! कैसी हृदयको भेदनेवाली बात! कम-नसीब वनवासिनी, तुझे तेरे सुखी स्थानसे खींच लाकर मैंने जो तेरे साथ विश्वासघात किया है उसके लिये, जब तेरी कोमल गर्दनपर झगझगती तलवार पड़ी होगी उस वक्त, तूने मुझे कितने शाप न

दिये होंगे ? जान पड़ता है उन शापोंके फलसे ही मैं अपने संगी साथियोंसे अलग होकर ऐसे बीरान भयंकर जंगलमें आ पड़ा हूँ और थकावट तथा प्याससे मरा जा रहा हूँ । पर नहीं, यह मेरा भ्रम है। एक निरपराध भोली भाली वनवासिनी बालिकापर यह दोष कैसे लगाया जा सकता है। यह कोई नियम नहीं कि जीवको इसी भवका कर्म फल देनेवाला होता हो, क्योंकि बहुधा करके पूर्व जन्मकृत कर्म ही इस भवमें सुख दुःखके देनेवाले होते हैं। "

जिस समय एक युवा पुरुषके मुँहसे कँपते हुए ओठों द्वारा ये उद्गार निकल रहे थे, उस वक्त सूर्य अपने प्रखरतेजसे तप रहा था, उसके त्रासके मारे भय पापियोंके हृदयमें जा छुपा था, अंधकारको विषयी पुरुषोंकी आँखोंमें स्थान मिला था और लज्जा कामुकी स्त्रियोंके पांवतले जा दबी थी।

सूर्यकी प्रखर किरणें जैसी पृथ्वीको भेद रही थीं उसी तरह इस रास्ता भूले हुए युवाके चित्तको भी भेदनेमें वे पीछा पग न देती थीं। अपनी हालत देखकर युवाकी आँखोंसे आँसुओंकी बड़ी बड़ी बूँदें गिरने लगीं। उसके मुँहसे फिर उद्गार निकलने लगे—

" कुन्द, प्यारी कुन्द ! पुरुष स्त्रियोंको निरंतर गालियाँ ही देते हैं, उनके दोषोंको ही देखा करते हैं, उनकी ओर सदा वहमकी नजरसे देखा करते हैं, यह कितना अन्याय है ? जैसा तुझपर यह कलंक आया है, वैसा ही यदि मुझपर आया होता तो कभी पिताजी उसे नहीं मानते। पर तू तो स्त्री थी न ? और स्त्रियाँ विषकी बेल होती हैं, छल कपटका समुद्र होती हैं और झूठकी जाल गिनी जाती हैं, तब तेरे

विषयमें रजका यदि पर्वत हो तो आश्चर्य क्या? तुझे अपना बचाव करने तकका तो हक नहीं, क्योंकि अपनी रक्षाके लिये–निर्दोषता सिद्धकरनेके लिये–भी यदि स्त्री पुरुषोंके सामने कुछ कहे तो वे उद्धत बताई जाती हैं और उनका ऐसा व्यवहार दोषावह समझा जाता है। रंक कुन्द! तूने अपने आप अन्याय सहा। क्यों नहीं तूने अपनेको निरपराध सिद्धकरनेकी हिम्मत की? तू कम पढ़ी होकर भी सच्ची शीलवती थी, बालिका होकर भी तेरे हृदयमें प्रेम था और झूठे कलंकसे अपराधिनी ठहराई जाकर भी तू धर्माचारिणी थी; बतला तो, ऐसा कौन जान सकेगा?"

युवाके उद्गार जैसे पहले वायुके साथ मिल गये थे अबकी बार ऐसा न हुआ–उसके शब्दोंके प्रवाहका धक्का एक साधुके कानोंमें जाकर लगा। उससे साधु चमक उठा। यह साधु पास ही एक झाड़ीमें फूसकी झोंपड़ीमें रहता था। उसे युवाके शब्द कुछ परिचितसे जान पड़े। वह थोड़ी देरतक स्तब्धसा खड़ा रह गया। साधुके कानोंमें युवाके बहुत थोड़े ही शब्द पड़ पाये थे, पर इतनेहीमें उसके मुहँपर शर्म और हर्षकी लहरें लहराने लगीं।

साधुने भी अभी नवीन जवानीमें पैर रक्खा है। उसके शरीरकी सुंदरता देखने ही बनती थी। लावण्य-धारा उसके अंग अंगसे छूट रही थी। उसकी सरल और विशाल आँखें हरिणको शर्मिन्दा करती थीं। उसके सुन्दर और गोरे मुँहको प्रकृतिने मूछोंसे कलंकित करना उचित नहीं समझा, पर तब भी उसने उसके बदलेमें साधुकी निर्दोषता और सरलता बतलानेके लिये उसकी कीरनासाके दोनों ओर दो छाप लगादी थी।

थोड़ी देरतक तो साधु राजकुमारकी और देखा किया । परन्तु जो मुँह कोमल होनेपर भी शत्रुओंके हृदयमें देखने मात्रसे धड़कन पैदा कर देता था, और जो विशाल और प्रकाशमान आँखें अपने तेजसे अच्छे अच्छे शूरवीरोंको नीचा दिखाती थीं, उसी मुँहको रंक और आंखोंको अश्रुमयी देखकर योगी अब देरतक वहां नहीं ठहर सका। वह उसके सामने आकर राजकुमारसे बोला—

भव्यपथिक, इस जवान चेहरेपर कष्टकी रेखायें क्यों ! हाँ कदाचित् वृद्ध पुरुष तो अपनी वृद्धावस्थाके दुःखसे, या पहलेके कष्टोंकी याद हो जानेसे या संसारके सुखोंको बारबार देखनेसे क्लेशित हो सकते हैं—संसारकी दशापर उन्हें कंटाला आ जाना संभव है, पर जिसके पास प्रकृतिकी सैकड़ों खूबियां मुकुलित फूलकी तरह अभी-बन्द पड़ी हैं और जिसे प्रकृतिकी हजारों चीजें और बनावटें देखना चाहती हैं, जिसके साथ विचार करना चाहती हैं, जिससे कुछ सीखना चाहती हैं और जिसके साथ आनन्द भोगनेकी इच्छासे जिसे आमंत्रण दे रही हैं, ऐसा जवान किसलिये शोक-सागरमें डूबा हुआ है ?

कुमार सहसा चमक उठा । वह यह समझकर, कि योगीने मेरे मनकी बातें जानलीं, लज्जित हो गया । उसने योगीके प्रश्नका कुछ जबाव न दिया । यह देखकर योगीने भी अपनी बातोंका ढंग बदला । वह बोला—जान पड़ता है तुम थके हुए हो, तुम्हें प्यास लगी होगी । आओ, सामने मेरी कुटी है, चलकर उसमें कुछ समयके लिये आराम करना । मुझ गरीबकी कुटीके द्वार मुसाफिर और दुखीजनोंके लिये सदा खुले रहते हैं ।

राजकुमार योगीकी बातका कुछ जवाब न देकर उसके पीछे चला, पर उसके ओंठ अभीतक सीये हुए ही थे। विवाहके लिये पहरे हुए राजकुमारके वस्त्रोंको सूर्य बिजलीकी तरह चमका रहा था, मानों-योगीके बल्कलकी हँसी करके वह उसे कह रहा है कि इसे दूर फैंककर ऐसे ही वस्त्र तू भी पहर। योगीकी मधुर मन्दगति ऐसा भान कराती थी, मानों-नव विवाहिता कन्याके पीछे चलता हुआ वर जैसा शर्माता हो।

जैसे जैसे वे आश्रमके पास आते गये वैसे वैसे राजकुमार उस जगहको पहचानने लगा। उसके दिलमें एक दम विचार उठा "क्या यह वही झाड़ी है जिसमें पहले पहल मैंने कुन्दको देखा था ? यह वही आश्रम है जहाँ बैठकर योगीने अपनी कन्याका सब हाल मुझसे कहकर उसे स्वीकार करनेकी मुझसे प्रार्थना की थी ? क्या यह वही मृग है जिसके साथ मृगनयनी कुंद खेला करती ? क्या यह वही लता-गृह है जहाँ प्यारीके हाथकी गूंथी हुई फूलोंकी सेजपर बैठकर मैंने प्रियाके साथ वनफल खाये थे और अनेक प्रकार विनोद किया था ? इतनेहीमें वे दोनों आश्रमके पास आ पहुँचे। योगीने धीरेसे अपनी कुटीका द्वार खोला और दोनों उसके भीतर गये। इसके बाद योगीने कुछ सुन्दर और स्वादिष्ट वनफल और एक निर्मल और शीतल जलका भरा लोटा कुमारके सामने रखकर उससे खानेके लिये आग्रह किया और उसके मुँहकी ओर देखा। "हाय ! कुन्द भी मुझे इसी तरह प्रेमके साथ खिलाती और मेरे मुँहकी ओर देखा करती।" इस विचारके साथ ही उसके हृदयको चीरकर यह वाक्य निकला—"तो क्या वह चली ही गई ?" और इसीके साथ ही वह मूर्च्छित हो गया। योगी उसके मस्तकको

अपनी गोदीमें रखकर उसके मुँहपर हवा करने लगा। थोड़ी देर बाद जब उसे होश आया तब योगीने उससे पूछा—क्या गया? कहा गया? झूठी बक बक और आत्मक्लेशको छोड़ दीजिये। मैं एक सुन्दर कविता आपको सुनाता हूँ। उसे सुनिये। उससे बड़ी शान्ति मिलेगी।

कुमार,

मोहपाशमें पड़कर जो अपनेको सुखी समझते हैं,
काँटोंकी शय्यापर सोकर उसे फूलकी गिनते हैं।
होती अग्नि कभी नहिं शीतल चाहे जितना यत्न करो,
वैसे मोह-मद्यको पीकर कभी न सुखकी चाह करो॥
क्षणक्षणमें परिवर्तन होता जिसमें कोई नित्य नहीं,
वैसी जगह कभी क्या मिलता शान्तिबिन्दुका लेश कहीं?
बिजलीकीसी चमक दमकमें फँसकर जो मोहित होते,
अविनाशी सुखरत्न फेंककर भ्रमनिद्रामें वे सोते॥
महिलाओंकी रूपसुधाको पीकर जो खुश होते हैं,
मानों अपने पुण्यकर्म वे पापपंकसे धोते हैं॥
हाय! मोहविभ्रम है कैसा जो, विष अमृतसा जचता,
सच है-जिसने पिया धतूरा उसे सर्व सोना दिखता॥
प्रिय कुमार! यदि सच्चे सुखकी चाह तुम्हें है प्रिय लगती,
तो अब भीषण मोह वह्निकी शान्तकरो ज्वाला जलती।
आतुर हृदय शान्त जब होता तब मिलता कैसा आनंद,
इसका अनुभव तब होता है मिटता ताप खिले जब चंद॥

योगीकी मधुर आवाज और कवितामें समाये हुए आध्यात्मिक रससे राजकुमारको बड़ी शान्ति मिली। इस नवीन गुरुके पास अपने निर्बल मगजकी मानो राजकुमार क्षमा माँगता हो, इसलिये उसका मुँह दीन हो गया। उसे देखकर योगी आगे बढ़ा और राजकुमारसे बोला—

भव्य, इस संसारमें ऐसी भूल कौन नहीं करता ? प्रायः सबहीसे हुआ करती है। फिर उसके लिए इतना कष्ट, इतनी लज्जा क्यों ? इस आत्मकष्टको तो छोड़िये और इस पवित्र पुण्यमय स्थानके योग्य शान्ति प्राप्तकर प्रसन्न मुखसे फलाहार कीजिये।

जिसे लोग जादू, मॅस्मेरिज़्म, हिप्नोटिज़्म आदि कहते हैं वह वचन, मुँह, दृष्टि और हाथ आदिकी कुशलताको छोड़कर और कुछ नहीं है। उपदेश, करनेवालेके शब्द चाहे जितने रहस्य भरे हों, पर यदि वह उपदेश, उसका वह गांभीर्य स्वयं उपदेशकपर असर न करे—उसकी उसपर नजर न हो, तो कभी उसका असर दूसरोंपर नहीं पड़ सकता। जिसका उपदेश स्वयं रोते मुँहको लिये हुए होता है, जो किसी विषयपर ठीक विचार न कर ऊपरके मनसे दिया जाता है, जो टूटे फूटे और अस्पष्ट शब्दोंमें किया जाता है, जो " मेरे उपदेशका असर लोगोंपर पड़कर उसके माफिक होना ही चाहिये " ऐसे विश्वासके बिना होता है और जो सुननेवालोंके मुँहके भावों और उनकी चाहको जानकर वैसा ही अपने व्याख्यानको नहीं बदल सकता हो, तो उसका उपदेश कभी गहरा और स्थायी प्रभाव लोगोंपर नहीं डाल सकता।

योगीके मधुर शब्दोंका राजकुमारपर इतना असर तो पड़ ही गया कि उसने खाना शुरू कर दिया। वह खाने लगा अवश्य, पर उसके हृदयमें शान्ति नहीं। उसका हृदय उभरा रहा था। वह अपने हृदयके उभारको न रोक सका। वह अपनी कथा योगीको सुनाने लगा।

दूसरा परिच्छेद ।

काचके बदले हीरा मिला ।

राजकुमारने अपनी कथा योगीसे यों कहना आरंभ की--

चन्द्रनगरके महाराज जयसिंहका मैं इकलौता पुत्र हूँ । पिताजीका मुझपर बड़ा प्रेम है। राजकुमारके योग्य जितनी शिक्षायें हैं, वे मुझे दी गईं । इसके अतिरिक्त धार्मिक ज्ञानमें मेरी अच्छी गति हो, इसलिये पिताजीने मुझे धर्मगुरुके पास भी पढ़ाया। गुरुजीने मुझे बहुत सरलता और उदाहरणों द्वारा खूब समझाया था कि--" वत्स, जो काम अपनेको करना हो उसे पहले बहुत अच्छी तरह विचारकर फिर करना चाहिये, ' विषय वासनाको अपनेपर कभी विजय न करने देना चाहिये--अपनेको उसके वश न होना चाहिये, ' निठल्ले बैठे रहनेको मनुष्य जीवनका नष्ट करनेवाला समझना, संसार समुद्रमें कमलकी तरह अलिप्त रहनेका अभ्यास बढ़ाना, धर्मकी सेवा सुखकी इच्छासे नहीं, किन्तु अनुपम शान्ति लाभके लिये करना । " गुरूजीने यह उपदेश मेरे हृदयमें इसतरह जमा दिया था कि उससे मेरा हृदय खूब दृढ़ हो गया । उनके पवित्र उपदेशका लाभ मैं हर समय अनुभव करता रहता हूँ । धार्मिक ज्ञानके अतिरिक्त उन्होंने मुझे साहित्य, संगीत आदि मनोरंजक और युद्धकला, व्यायाम, हिसाब, किताब, शरीरशास्त्र आदि उपयोगी विषयोंका भी ज्ञान प्राप्त कराया था । यही कारण है कि मैं पच्चीस वर्षका हो

गया तब भी विद्या और प्रकृतिकी खूबियोंमें लगे रहनेसे तथा स्वधर्म, स्वदेश और स्वजातिके प्रति जो मेरा कर्त्तव्य है उसे करते रहनेसे मेरा विचार विवाह करनेकी ओर गया ही नहीं। पर अपने पिताका मुझे इकलौता पुत्र होनेसे उन्हें मेरा यह विचार अच्छा नहीं जान पड़ा; इसलिये मुझे न पूछकर ही उन्होंने राजपुरीके राजाकी राजकुमारी उषासे मेरा विवाह करना निश्चित ठहरा दिया और मुझे विवाह कर आनेकी आज्ञा दी।

मेरी इच्छा नहीं थी कि मैं विवाह करने जाता, पर पिताजीका मन जिसमें सुखी हो उसे करना ठीक न समझ मैं यह वैवाहिक वस्त्राभूषण पहनकर अपने आत्मीय जनोंके साथ विवाहके उद्देश्यसे राजपुरीकी ओर चल पड़ा। रास्तेमें मेरे मित्रोंने मेरे चित्तको हस्त-मिलाप, दृष्टि सम्मिलन, पहला समागम, विवाहित जीवन आदि विषयोंकी ओर खींचना चाहा। मुझे उन्होंने बहुतसी बातें कहीं, पर मेरे चित्तके अभ्यस्त धार्मिक और नैतिक विषय तो मेरे हृदयदर्पणमें प्रतिबिम्बित हो ही रहे थे, इसलिये वे जो जो बातें मुझे कहते उन्हें मैं ऊपरकी ऊपर ही उड़ा देता। इसी तरह विनोद करते करते हम सब अपनी सेनाके साथ झपाटाबन्द रास्ता तय करते चले जा रहे थे कि इतनेमें सूर्यदेवने अपने रथका मुँह पश्चिमकी ओर फेर दिया और देखते देखते एक दूरकी बीहड़ झाड़ीमें वे जा छिपे।

अस्थिर चित्तवाले पुरुषोंके क्षणक्षणमें बदलनेवाले विचारोंकी तरह नाना प्रकारके रंगोंसे आकाश पूर्ण हो गया। रातमें आहार न करनेवाले पक्षिगण अपने अपने घोंसले ढूंढने लगे। शीतल पवनकी

लहरें और शान्तिने संसारपर अपना साम्राज्य बढ़ाना आरंभ किया। कामी पुरुषोंके लिये अग्नितुल्य और सर्व साधारणके लिये चन्दनकी तरह शीतल, चन्द्रमाने अभीतक निर्मल मोतियोंसे जड़ी हुई सफेद साड़ी अपनी रजनी प्रियाको भेंटकर आनेकी तैयारी न कर पाई थी कि इतनेमें घोड़ेकी टापकी आवाज मेरे कानोंमें सुनाई पड़ी और जैसे जैसे समय बीतने लगा वैसे वैसे आवाज भी अन्धकारको चीरती हुई स्पष्ट होती गई। हम सब उसी ओर आँखें गड़ा गड़ा कर देखने लगे। हमें एक ऐसी झाँई दिखाई पड़ी जो कभी बहुत बड़ी, कभी छोटी और कभी अदृश्य हो जाती थी। उसे देखकर मेरे मूर्ख नौकरोंके तो छक्के छूट गये। उन्होंने समझा कि 'वह भूत है'। इतनेमें वह झाँई हमारे पास ही आ पहुँची। वह एक हट्टाकट्टा जवान था। वह घोड़ेपरसे कूद कर मेरे सामने आ खड़ा हुआ और हांफते हाँफते उसने कहा कि-इस प्रदेशके मालिक महाराज अरिंजय मेरे द्वारा आपको कहते हैं " आपने बिना आज्ञाके हमारी सरहदमें पाँव रक्खा है, इसलिये आपको युद्धके लिये तैयार हो जाना चाहिये।" अकारण सिरपर आफत उठानेवाले अरिंजयकी बेवकूफीपर मुझे बड़ी हँसी आई। मैंने उत्तर दिया—"रात्रिमें तो युद्ध किया जाता नहीं। हाँ अपने महाराजसे कहना कि वे सबेरे अपना जोर आजमानेके लिये आवें। मैं सब तरह तैयार हूँ।" उत्तर पाते ही वह सवार एक छलाँगमें घोड़ेपर सवार होकर चलता बना और देखते देखते आँखोंकी ओट हो गया। रात्रिके सुखमय चन्द्रके प्रकाशका मैं कुछ भी आनन्द न ले सका। लेता कहाँसे? सिरपर तो बला सवार थी कि कहाँ तो अरिं-

जयकी प्रचण्ड सेना और कहाँ मेरे इने गिने योद्धा ? बड़ी कठिनतासे मैंने किसी तरह रात बिता पाई।

प्रातःकाल होते ही अरिंजय सैना लेकर आ चढ़ा। दोनों ओरसे रण दुंदभि बजने लगी। दोनों ओरके शूरवीरोंने, अपनी अपनी ध्वजाओंको प्रातःकालीन उत्साही वायुके साथ खेलने देनेके लिये तलवारें हाथमें लीं। मेरे पूज्य गुरुका उपदेश था कि "शत्रुपर पहले वार कभी न करना" इसलिये मैंने या मेरे किसी सैनिकने पहले वार नहीं किया। इससे उसने यह समझकर, कि इसमें कुछ दम नहीं है, मुझसे द्वंद्व युद्ध करनेका आग्रह किया। मैंने उसके आग्रहको बड़े आनन्दसे स्वीकार कर लिया। दोनों अखाड़ेमें उतरे। युद्ध आरंभ हुआ। विजयश्रीने मेरा पक्ष लिया। अरिंजयका दर्प चूर्ण हुआ। मेरी सेनामें आनन्दके बाजे बजे और अरिंजयकी सेनामें हाहाकार मचा। यह देख अरिंजयको बड़ा शर्मिन्दा होना पड़ा। साथ ही उसके हृदयपर वैराग्यने अधिकार जमाया। उसका चित्त संसारकी लीलामें अस्थिर हो उठा। उसने उसी समय वनका रास्ता लिया और एक योगिराजके पास पहुँचकर वह दीक्षित हो गया। जिस अभिमानने उसे नीचा दिखाया था, अरिंजयने उसीका सर्वनाश किया। अभिमानके नष्ट होते ही उसके सहचर काम, क्रोध, लोभ आदि भी अपने आप ठंडे हो गये। इस प्रकार मैंने अरिंजयको जीतकर उसे कलंकित नहीं बनाया, किन्तु अजेय शत्रुओंपर विजय प्राप्त कराकर उसे उज्ज्वल बनाया और वह भी अपने नामको सार्थक बनानेका पात्र हुआ।

सन्ध्या हो चुकी थी। मेरे योद्धाओंने विजयके उत्साहसे

उसी समय वहाँसे कूच करनेका आग्रह किया। मैंने भी उसमें किसी तरहकी बाधा न दी। कूचका बाजा बजाया गया। सब सैनिक तैयार होकर चल पड़े। रातभर सेना चलती रही। जब कुछ कुछ अँधेरा रहा होगा तब हम वृक्षोंसे घिरे हुए एक सुन्दर स्थानपर पहुंचे। हमने वहां सब तरहका सुभीता देखकर वहीं पड़ाव डाल दिया।

अभी सूर्यके निकलनेमें कुछ विलम्ब था, पर मैं तो उठ बैठा और शौच दन्तधावन और स्नान आदिसे जल्दी निवटकर उस मनोहर स्थानके देख आनेकी इच्छासे आगे बढ़ा। लगभग पाँच कोस पहुँचा हूँगा कि मुझे सामने एक ऋषि मिले। मैंने उन्हें प्रणाम किया। उन्होंने मेरा नाम लेकर मुझे आशीष दी। मुझे एक योगी द्वारा अपना नाम सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ। मेरे भावोंको जानकर योगीने मेरा सन्देह हटा देनेके लिये झटसे कहा कि—कुमार! तुम यह न समझो कि मैं तुम्हें जानता नहीं हूं और न तुम्हारा यहां आना ही मेरे लिये आकस्मिक हुआ है। क्योंकि कल ही मुझे मेरे गुरुने कहा था कि "कुमार विनोद प्रातःकाल तुझे मिलेगा और तेरी चिन्ता दूर करेगा।" मैंने कहा—कौनसी चिन्ता मैं आपकी दूर कर सकूंगा? यह आप कृपा करके मुझे कहिये। आप सरीखे महापुरुषोंकी सेवा करनेके लिये तो मेरा तन मन सदा तैयार है।

योगीने कहा—कुमार, यह काम दो चार शब्दोंमें कहने लायक नहीं है। कृपा करके तुम मेरे आश्रममें चलो। मैं वहाँ सब हाल तुम्हें सुनाऊँगा। योगीकी बातको विनय पूर्वक मैंने स्वीकार किया।

हम थोडी दूर आगे बढ़े होंगे कि वृक्षोंसे घिरा हुआ एक सुन्दर तालाब हमारी नजर पडा। यह तालाब मनुष्योंके हाथोंसे न बनाया जाकर प्रकृतिकी रचनाका मनोहर दृश्य था। इसके ठीक बीचोंबीच एक छोटी सी पहाडी थी। पहाडी वृक्षश्रेणीसे घिरी हुई और बहुत रमणीय थी। गर्मीके दिनोंमें तलावके सूक जानेपर उसके बीचमें होकर पहाडीपर जाना पडता था। पर चौमासे और सियालेमें एक छोटीसी डोंगीपरसे जाना पडता है।

हम तालाबके किनारेपर आ पहुंचे। सूर्यदेवने अन्धकाररूपी भीम राक्षसको मारकर संसारमें अपना साम्राज्य स्थापन कर दिया। उसकी बधाई देनेके लिये पक्षियोंने अपने मधुर मनोहर कलरव द्वारा गाना आरंभ किया। प्रकृतिने उसकी विजय प्रशस्तिको तालाबरूपी निर्मल कागजपर सोनेके अक्षरोंमें लिखना आरंभ किया। थोडी ही देरमें सब मैदान सुवर्णमय बन गया। जलके भीतर सुनहरी वृक्षश्रेणी खुशीके मारी नाच उठी। संसारको रागरंगमें मस्त देखकर गुलाबके फूलोंको मुर्देकी तरह पडे रहना पसन्द न आया। वे भी खुशीके मारे खिलखिला उठे। प्रकृतिकी जितनी कृतियां थीं उनमें नवीन जीवन और चंचलता आई। इस समय मुझे इतना आनन्द हुआ–मैं प्रकृतिकी सुन्दरता देखनेमें इतना गर्क होगया कि 'मेरे साथी मेरी राह देखते होंगे' इसका मुझे कुछ भी भान नहीं रहा।

योगीने एक धीमी आवाज दी। उसके उत्तरमें एक बहुत ही मनोरम आवाज मेरे कानोंसे आकर टकराई और थोडी ही देरमें मैंने आँख फेरकर देखा तो क्या देखता हूँ कि मेरे सामने एक उर्वशीसी

सुन्दरी खड़ी है । वह एकाएक कैसे आई यह मेरी समझमें न आया। बालिकाकी उमर चौदह वर्षकी होगी । उसका सुवर्णमय शरीर आँखोंमें चकाचौंध किये देता था। यद्यपि वह वृक्षकी छाल पहरे हुई थी, पर उसकी प्रकृतिकी दी हुई सुन्दरतामें कुछ भी कमी न आई थी । उसका वह स्वर्गदुर्लभ निर्विकार सौन्दर्य हृदयमें अपूर्वभाव पैदा करता था। उसका हृदय गंभीर और शान्त था । उसके शरीरसे लावण्यकी सुधाधारा प्रवाहित हो रही थी, पर उसका चित्त तब भी निर्विकार-पवित्र था।

बालिकाने योगीकी ओर देखकर बड़े धीरेसे पूछा—पिताजी! आज आपको बहुत देर लगी ? और ये नवीन कौन महाशय हैं ?

योगीने इतना कहकर, कि ये अपने अतिथि हैं, डोंगीपर चढ़नेको मुझे इशारा किया और आप भी उसपर चढ़ गये । वह सरोवरकी सुन्दरी भी हमारे पीछेकी बैठकपर बैठ गई। योगीने पतवार हाथमें लेकर डोंगी चलाना आरंभ किया, डोंगीके वेगसे तरंगें उत्पन्न हो हो कर अदृश्य होने लगीं, जैसे मनुष्य जातिपर किये हुए उपकार उसके मगजमेंसे बड़े जल्दी अदृश्य हो जाते हैं। हम पहाड़ीके पास आ पहुँचे । योगी एक छलांग मारकर जमीनपर कूद पड़े और उन्होंनें डोंगीको पकड़ रक्खी । पहले मैं डोंगीपरसे उतरा और पीछे इस स्थानकी अधिष्ठात्री देवी उतरी। हम ऋषिके पीछे पीछे चले । मानों एक पुरोहितके पीछे नव दम्पति चलते हों । पर मेरे दिलमें ऐसा विचार नहीं समाया था । योगी उस बालिकाको फल फूल इकट्ठे करनेके लिये कहकर मुझे अपने पवित्र आश्र-

ममें लिवाले गये। वहाँ उन्होंने वनके सुन्दर और स्वादिष्ट फलों और झरनेके निर्मल शीतल जलसे मेरी अच्छी तरह पाहुन गति की। इसके बाद उन्होंने ऐसे एकान्त स्थलमें हुए पूर्वके महात्माओंका और अपने गुरु विश्वबन्धुकी कठिन तपश्चर्याका हाल मुझसे कहा और साथमें इन सब बातोंका वे क्यों अनुकरण करते हैं, इसका एक कारण है, यह कहकर उन्होंने अपनी कथा यों कहना आरंभ की—

"मैं इन्दिरा नगरीके राजा यशोवर्माका पुत्र हूँ। मेरा नाम है जयचंद। एक दिन मैं एक अशिक्षित घोड़ेपर बैठकर घूमनेके लिये निकला। मैं लगभग चार छह कोश पहुँचा हूँगा कि एकाएक घोड़ा न जाने क्यों चमका और मुझे गिराकर चलता बना। मैं वहाँसे चलकर एक वनमें पहुँचा। वहाँ एक साधु रहते थे। मैं कुछ दिनोंतक वहीं रहकर उनकी सेवा करने लगा। उन्होंने मुझे एक विष दूर करनेवाला मंत्र सिखाया। इसके बाद मैं अपनी राजधानीमें लौट आया।

एक दिन मैं किसी कारण राजनगर गया था। भाग्यवश उसी दिन वहाँके राजा पृथ्वीराजकी राजकुमारी प्रभाको सर्पने काटा था। बहुतसे गारुड़ी उसके विष दूर करनेको बुलाये गये, पर किसीसे उसे लाभ नहीं पहुँचा। मुझे विषहरण मंत्र याद था। मैंने उसे आराम कर दिया। राजा मुझपर बहुत खुश हुए। प्रभा अभीतक अविवाहिता थी। राजाने उसका मेरे साथ विवाह कर दिया। मैं उस स्वर्गीय सुन्दरीके साथ मनचाहा सुख भोगनेमें इतना गर्क हो गया कि कई महीनेतक सूर्यके सिवा किसीने हम दोनोंका मुँह नहीं देख पाया।

एक दिन मैं उस मृगाक्षीके साथ रतिविलासका सच्चा सुख ले रहा था कि एकाएक मुझे ' **भोगे रोगभयं** ' इस वाक्यकी याद हो उठी और उसकी सत्यता छुरीकी तरह मेरे हृदयमें चुभी । मुझे उसी समय वैराग्य हो आया । काम विलास मुझे जहरसे दीखने लगे, राजमहल मेरी आँखोंमें वन हो उठा और भूषण अलंकार मेरे लिये बेड़ी हो गये । मैं उसी समय अपना सब राज्यभार अपने पुत्र धीरको सौंपकर साधु—वानप्रस्थ—बन गया । क्योंकि मेरे साथ ही आत्मकल्याणकी इच्छासे मेरी प्रिया भी साध्वी बन गई थी । हम दोनों विश्वबन्धुके आश्रममें आकर रहने लगे । साध्वी बननेके पहले मेरी प्रिया गर्भवती थी । पर उसवक्त उसने वह बात इस भयसे, कि कहीं मुझे गर्भवती समझकर प्राणनाथ अपने साथ न रक्खें, गुप्त ही रक्खी थी । पर प्रसवकालके समीप आनेसे वे चिह्न छुपे नहीं रहे । इसलिये मैंने उससे कहीं अन्यत्र जानेकी प्रार्थना की । गुरूजी हमारे इस संकोचको समझ गये । उन्होंने हमें आश्वासन देकर वहीं रहनेके लिये कहा । इतना ही नहीं किन्तु जब इस बालिकाकी माताने इसे जन्म देकर प्रसवकी अधिक वेदनासे प्राण छोड़े तभीसे गुरूजी बड़ी चिन्ताके साथ इसका पालन पोषण करते चले आते हैं । उन्हींकी कृपासे यह पली है । गुरूजीका इसपर बहुत प्रेम है । उन्होंने इसे बहुत योग्यतासे धार्मिक शिक्षा दी है । मैंने जैसे इसकी उमर बढ़ी होती जाती है वैसे वैसे मुझे चिन्ता बढ़ती जाती है । इसे रूपवती देखकर कोई पापी इस एकान्त जगहसे हर न ले जाय इसलिये मैंने इसे अदृश्य करण अंजन दे रक्खा है । उसके प्रभावसे आजतक इस आश्रमके

उदासीन लोग और मैं या आपके सिवा किसीने इसका मुंहतक नहीं देख पाया है। और इसीसे इसका हृदय बिल्कुल पवित्र है। यह संसारकी बातोंको अभीतक कुछ नहीं जानती। इसकी प्रकृति शान्त और बड़ी भोली है। मेरी इच्छा है कि जैसी यह पवित्रबाला है वैसा ही कोई पवित्रहृदयी पुरुष मिल जाय तो इसे उसके सुपुर्द करके मैं इस जंजालसे अपने आत्माको छुटाऊं और अपने अस्थिर मनको आत्मकल्याणकी ओर लगाऊं। मैं जहांतक आशा करता हूं, मेरे भाग्यहीसे आपका इधर आगमन हुआ है और यह आगमन मेरे विचार प्रसंगको पूर्ण करेगा। अब मेरी आशा, गुरूजीका भविष्यकथन और अपने वचनका पूरा करना आपके हाथ है। मुझे पूर्ण विश्वास है कि मेरी भोली बालिकाका हाथ स्वीकार करके उसका उद्धार करेंगे। इतनेमें कुन्द भी फलफूल लेकर वहीं आ पहुंची। ऋषिने उसका हाथ पकड़कर बहुत धीरेसे मेरे हाथकी ओर उसे खींचा। मैं कुछ शर्मिन्दा हुआ। मैंने एक छुपी दृष्टि कुन्दकी ओर डाली। मेरी दृष्टिको कुन्दके द्वारा आदर मिला। प्रेमके दो प्रवाहोंका सम्मिलन हुआ। मैंने योगीकी बातका कुछ उत्तर न देकर अपनी दृष्टिको नीची करली। '**मौनं सम्मतिलक्षणं**' देखकर योगीने हमारा गांधर्वविवाह कर दिया। इसके बाद वे अपना नित्यकर्म करनेको चले गये। हम नव दम्पति ही वहाँ अकेले रहे। प्रिया द्वारा लाये हुए फलादि हम दोनों खाने लगे। पहले शर्मने अवश्य हमें बाधा पहुँचाई। पर हमारी बातोंका सिलसिला इस मनोहर स्थानकी प्राकृतिक सुन्दरता, दैवकी हमपर अनुकूलता और एक दूसरेके स्व-

र्गीय सौंदर्यको लेकर छिड़ा था, इसलिये अन्तमें वह पवित्र प्रेम पथपर आ ही गया। हम दोनों प्रेमपाठ सीखनेमें अभी सर्वथा नये ही थे। प्रेमपयोधिमें उड़नेके लिये अभी हमारे नये ही पंख निकले हैं, तब भी इस महा समुद्रकी लहरें हमारे मुँहसे इस विषयकी लहरें उत्पन्न करने लगीं। मेरे मुँहसे एक कविता निकल ही तो पड़ी—

प्रिये !

बहुत कष्टसे कटनेवाली है जीवनकी दुर्गम राह,
उसमें शान्ति सुधासम प्यारी ब्याह छोड़कर और न चाह।
पर विवाह वह सच्चा समझा जाता जिसपर छाप पवित्र,
मैत्री, प्रेम, नीतिकी लगती और सदा हो उच्च चरित्र।

प्रेमके प्रवाहने बालिकाको भी विनोदमय बना दिया। वह अपनी एक अँगुली ओठपर रखकर आकाशकी ओर स्थिर दृष्टिसे देखती देखती क्या बोलने लगी इसका उसे बिल्कुल भान न रहा। उसके मुखचन्द्रसे मानों सुधाधारा बह निकलनेकी तरह मधुर मनोहर शब्द निकले—

सच्चा प्रेम वही कहलाता जो स्वाभाविक होता है,
जिसे न छू पाती कृत्रिमता जो न कपटका सोता है।
ऐसे रम्य प्रेमका झरना जिस गृहमें प्रतिदिन बहता,
वह गृह फिर अनुपम वैभवमें स्वर्गधरासा लह लहता॥

इतनेमें आकाशवाणीकी तरह एक आकस्मिक ध्वनि हमारे कानोंमें सुनाई दी—

पर ऐसे स्वर्गीय प्रेमका निर्मल झरना कभी कहीं,
विषयवासनाके दुस्तर पर्वतसे टकरा जाय नहीं।
इसके लिये सदा तुम रहना सावधान मेरा उपदेश,
यदि इसके प्रतिकूल करोगे तो भोगोगे दुष्कर क्लेश॥

उसे सुनकर हम एक साथ चमक उठे। हम इस समय क्या बुराई कर रहे थे, उसे ढूँढने लगे। गुप्त स्थानके ढूंढनेके लिये हमारा हृदय भयभीत बन उठा। पर बात डरकी न थी। गुरु विश्वबन्धु हंसते हुए वहां आ उपस्थित हुए। उन्होंने बड़े मधुर शब्दोंमें कहा—बेटी कुन्द और वत्स विनोद डरो मत, डरो मत। यह तो मैं तुमसे सुयोग दम्पतिको आशीश देने और यहाँसे विदा न हो इसके पहले कुछ आवश्यक बातें तुम्हें समझानेके लिये आया हूं।

तीसरा परिच्छेद।

नव दम्पतिको योगीका उपदेश।

गुरु विश्वबन्धुने अपनी आशीषका प्रवाह शुरू किया। इतनेमें महात्मा जयसिंह और सब शिष्यमंडली भी वहाँ आ पहुंची। यद्यपि शिष्योंके पास बालिकाको विदा करते वक्त देनेके लिये सिवा पवित्र आशीर्वादके कुछ धन दौलत न थी, परन्तु उस वक्त वहां उनका उपस्थित होना बहुमूल्य भेटसे कहीं बढ़कर और आनन्ददायक था।

गुरुने गंभीरतासे कहा—" तुममें सुयोग्य वरवधूपर प्रेमदेवकी सदा मधुर हंसी बनी रहे! पवित्रता और परस्परका विश्वास ये दोनों देवियां सदा तुम्हारे सहायक हों! दुनियादारीके व्यवहार तुममें दिनों दिन अधिक अधिक शक्ति बढावें! विषयवासनासे मलिन हृदयवाले स्त्रीपुरुषोंको तुम्हारा आत्मसंयमका जीवन सदा आदर्श

हो! स्वधर्म, स्वदेश, स्वजाति और स्वबंधुओंके उद्धारके लिये तुम्हारा जीवन चिर समय तक बना रहे।"

इसके बाद महात्मा जयसिंह बोले "धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष इन चार परम पुरुषार्थोंकी प्राप्तिके लिये तुम्हारा सदा प्रयत्न रहे और तुम चिरजीवी बनो।"

जयसिंहके "तुम चिरजीवी बनो" इस अन्तिम वाक्यका सब शिष्यमंडलने भी एक स्वरमे अनुमोदन किया। उनकी गंभीर ध्वनि शान्त सरोवरमें देववाणीकी तरह गूँज उठी। उसे शुभ शकुन समझ सब बहुत खुश हुए।

कुछ देर बाद जब फिर शान्तिका राज्य बढ़ा तब गुरु विश्वबंधुने मेरी ओर मुँह करके यों कहना आरंभ किया—

"वत्स! समझते हो, आज तुमने एक नई जोखम अपने हाथमें उठाई है। जिस प्रकार राज्य शासन करनेके लिये तुम्हें उसके सम्बन्धकी सब बातें पहले सीखनी पड़ी हैं—उसमें जैसी तुम्हें कुशलता प्राप्त करनी पड़ी है—उसी तरह विवाहके बादके सम्बन्धकी जो जो आवश्यक बातें हैं, उनका ज्ञान लेना तुम्हारे लिये बहुत जरूरी है। जिससे कि तुम अपने जीवनको पुण्यमय, प्रेममय और सुखमय बना सको।

ध्यान दो, विवाह विषयवासनाकी तृप्तिके लिये नहीं है और जो लोग उसका ऐसा उल्टा अर्थ करते हैं उन्हें हम लोग कभी अपनी कन्या नहीं देते। हमें विश्वास है कि तुम अपने गर्म खून और जवानीका जोर स्वधर्म, स्वदेश और स्वजातिके प्रति अप-

ना कर्त्तव्य पूरा करनेमें खर्च करोगे। अपने कर्त्तव्यके पूरा करनेमें बीच बीचमें कभी थकावट या निरुत्साह होने लगे तो तुम्हें आनन्दित करनेके लिये, तुम्हारे हृदयमें नवीन उत्साहकी प्रेरणा करनेके लिये, तुम्हारे आकुलित हृदयमें शान्तिसुधाकी धारा बहानेके लिये—ऐसे समयमें तुम्हारी सेवाके लिये—यह बालिका है। तुम अपने पवित्र रमणी—प्रेमका ऐसे ही समयमें उपयोग करना। इसी विश्वाससे हम तुम्हें संसारमें लगाते हैं।

विवाहके पहले तुम्हें अपने अकेलेके लिये ही इस लोक तथा परलोकके सुधारनेकी चिन्ता थी, पर अब तुम्हारे सिरपर दो व्यक्तियोंके इस लोक और परलोक सम्बन्धी कल्याणकी चिन्ताका भार पड़ा है। इसलिये अब तुम्हें बहुत विचारवान्, बहुत स्थिर, बहुत धैर्यशाली, बहुत सहनशील, और बहुत उद्योगी होना चाहिये। बालचेष्टायें, मूर्खताके विचार और ऐशोआरामके स्वप्न अब तुम्हें भूल जाना पड़ेंगे।

तुम्हारे सिरपर एक बोझा बढ़ा है अवश्य, पर वह उपयोगी और प्रसन्न करनेवाला बोझा है। यह भागीदारन तुम्हारे प्रत्येक कार्यमें सहायक होगी। पर इसके साथ तुम्हें भी इतनी याद अच्छी तरह रखना पड़ेगी कि यह तुम्हारी सहायक बने। इसके लिये इसकी जुरूरतों और अपने स्वभावका ठीक ठीक ज्ञान तुम इसे करा देना। स्त्रियोंको समय बे समय चूल्हेसे भिड़ाये रखने और नखरी निठल्ली सखियोंमें फँसी रहने देनेवाले पुरुषोंकी जिन्दगी केवल जंजालोंसे भरी और नीरस है। पुरुष जिन गुणों और जिन शक्तियों-

से अपनी स्त्रीको अलंकृत करना चाहें तो वे की जा सकती हैं। जो लोग यह समझकर, कि यह अपने पिताके घरपर तो कुछ पढ़ी लिखी नहीं; फिर अब क्या पढ़ सकेगी, इसे पढ़ाना बड़ा कंटाल भरा है, उसे पढ़ाते लिखाते नहीं वे बड़ी भूल करते हैं। उन्हें समझना चाहिये कि वे भी स्त्रीके ही पेटसे पैदा हुए हैं, उनके जन्म दाता भी उन्हींके पेटसे जन्मे हैं और उनकी सन्तान भी स्त्रियोंके पेटसे उत्पन्न होगी। इसपर विचार किया जाय जो जान पड़ेगा कि स्त्री ही संसारकी स्वामिनी-महाराजेश्वरी है। इसलिये स्त्रियोंको मूर्ख और सहायक बननेमें असमर्थ बनी रहने दोगे तो तुम ही अपने वंश और देशके सुखके शत्रु बनोगे। स्त्री और पुरुषोंकी उन्नति साथ ही है। वे साथ ही उन्नत और अवनत दशामें आते हैं। वे साथ ही स्वतंत्र या परतंत्र होते हैं।

तुम उसके द्वारा पूर्ण प्रेम और पूर्ण सुखकी आशा रखते हो तो अपने अवकाशके समयको दूसरोंको न देकर उसके लिये ही देना। उससे वह जान सकेगी कि तुम्हारा हृदय उसपर पूर्ण अनुरक्त है और फिर वह भी उसका बदला चुकानेके लिये अमोल प्रयत्न करेगी। पर यदि तुम उसपर एक दासीकी तरह हुकुम चलाकर उससे दूर रहोगे तो उसकी चिन्तायें, उसके विचार, उसके सुख दुःख और तुम्हारी चिन्तायें, तुम्हारे विचार और तुम्हारे सुख दुःख एक नहीं मिलेंगे। इससे धीरे धीरे वह फिर तुम्हें छोटा समझने लगेगी। फिर तुम्हें वह एक मित्रकी तरह नहीं, पर एक जुल्मी राजाकी तरह समझेगी। तुम्हारे डरसे या अकल्याणके भयसे वह तुम्हारी सेवा करेगी अवश्य, पर हार्दिक प्रेमपयोधिकी जो तरंगें उसके दिलमें सदा लह-

रायें करती थीं फिर वे तो नियमसे छिन्न भिन्न हो जायंगी। जिस स्वर्गीय सुखकी चाहके लिये सम्बन्ध किया गया था वह फिर स्वप्नमें भी दुर्लभ हो जायगा।

एक बात तुम्हें बुरी तो लगेगी पर उसे बिना कहे रहा भी नहीं जाता। अवकाश, यही विकारका पैदा करनेवाला है, इसलिये इसका साथ क्षणभरके लिये भी न देना। वीरान पड़ी हुई पृथ्वीमें काँटे और निकामे मनमें बुरे विचार उत्पन्न होते ही रहते हैं, इसलिये इसे घरके कामोंमें या धर्मकार्योंमें या पढ़ाने लिखानेमें या किसी विषयके विचारमें निरंतर लगाये ही रखना।

और एक बात याद रखना। बिना कारण कभी ठपका न देना। क्योंकि एक वक्त बिना अपराध या दोषके यदि ठपका दोगे तो फिर तुम्हारे सच्चे ठपकेका भी वजन नहीं पड़ेगा। इसलिये किसी अपराध या दोषका जबतक तुम्हें पूरा भरोसा न हो जाय तबतक केवल वहमके भरोसेपर दंड देने या कड़वे वचन बोलनेके पहले खूब सोच समझकर काम करना और जुरूरत पड़नेपर ठपका या दंड देना ही पड़े तब भी एक नौकर या बालक या एक अपराधीको जिसतरह सजा दी जाती है उसतरह उसे न देकर एक मित्र या समवयस्क कुटुम्बीको जैसी सजा दी जाती है उसीतरह तुम भी देना, जिससे सजाका देना भी सार्थक हो जाय और उससे उसकी या उसके सम्बन्धसे तुम्हारी बाहिर फजीती न हो।

यह भी याद रखना कि स्त्रीकी अज्ञानता पुरुषका दोष है। इसलिये अज्ञानताके लिये उसे सताना यह निर्दयी और अन्यायी पुरुषका

काम है। उसकी अशक्तिसे किसी कामको वह तुम्हारी इच्छाके माफिक न भी कर सके तो उसके लिये उसके और अपने कर्मका दोष समझ-कर उस कामको फिर किसी दूसरी रीतिसे करना। विचारवान् पुरुष तो उसी स्त्रीको अपराधिनी समझते हैं जो हरामीपनसे या जानबूझकर या बे जुरूरत अपराध करती है।

विनोद, तुम सुशिक्षित और बुद्धिमान् हो, इसलिये तुम्हें बहुत समझानेकी जुरूरत नहीं। वैसे ही यह हमारी बालिका भी पवित्र पुरुषोंकी संगतिमें रही है, इसलिये हमें यह विश्वास नहीं होता कि तुम्हें इसके द्वारा कभी किसी तरहका असन्तोष होगा, पर यह एक व्यवहार है, इसलिये उसे सुझा देना हमारा कर्त्तव्य है।"

मैं महात्माका उपदेश नीचा मुंह किये बड़े ध्यानसे सुना किया। जब उपदेश पूरा हुआ तब मैंने अपने विनीत मस्तक द्वारा उन्हें विश्वास कराया कि आपके उपदेशका मैंने अवश्य पालन करूंगा। महात्माजीने इसके बाद मेरी ओरसे मुंह फेर कर कुन्दकी ओर किया और वे बोले—

बेटी कुन्द! तेरे वियोगसे हमें बहुत कष्ट होगा, पर स्त्रियोंका आश्रयस्थान पतिगृह ही है, यह समझकर उस कष्टको भूल जाना ही हम अच्छा समझते हैं। पुत्री! पति और उसीतरह उसके हर एक मनुष्यके साथ मिलनेके लिये उद्योग, सहनशीलता, सन्तोष और मर्यादासहित पवित्र पतिभक्ति ये चार वशीकरण मंत्र समझना।

बड़े लोगोंकी सेवा और सम्मान तथा और घरके लोगोंका उचित मान करनेमें कभी मत चूकना। दुनिया विनय और मधुर शब्दोंसे

वश की जा सकती है, इसलिये इस लाभसे वंचित नहीं रहना। सासको यदि तूने वश कर लिया तो समझना सारा संसार तेरे वश हो गया और उसे वश करनेके लिये ऊपर कहे हुए उपायोंको छोड़कर और कोई उपाय है ही नहीं।

बोलने चलने आदि कितनी जगह लज्जा और गंभीरताका होना स्त्रीका भूषण है। धीरेसे बोलना, थोड़ा बोलना और शान्त तथा हँसमुखका होना ये शोभा बढ़ानेवाले अलंकार हैं। धड़धड़ चलना, खिलखिलाकर हँस उठना, लपर लपर बोलना और घर घर-घर मारे फिरना ये निन्दा और धिक्कारके कारण हैं।

किसीकी गुप्तबातके जाननेकी कभी कोशिश मत करना और न माता पिता या सखी सहेलीकी या अपने घरकी बात किसीको कहना। इससे अपना बड़प्पन बढ़ता है। अपने दुःखका रोना किसीके पास रोनेमें भी कोई उसमें भाग नहीं लेता। प्रत्युत ऐसा करनेमे अपना गौरव घटता है। सुखकी बात भी किसीपर जाहिर करनेसे लाभ नहीं। संभव है अपने अभ्युदयको न सह सकनेके कारण, वह ईर्षा करने लगे और अपने सुखके नाशकी चेष्टा करनेके लिये उद्योगी हो।

स्त्रियाँ रँधावान समझी जाती हैं, इसलिये किसी स्त्रीके साथ छिछोरापन न रखना और न कभी उचित होनेपर भी किसीसे कड़वा वचन बोलना। अपना समय कभी निकामा न जाय इसपर खूब ध्यान रखना। यदि अवकाश मिले तो चित्तको पुस्तकें पढ़ने, किसी विषयके अभ्यास करने, उसपर विचार करने तथा चित्रकलादिके सीखनेमें लगाना। हर समय अच्छे कामों और अच्छे विचारोंसे अपनेको भूषित किये करना।

घरके काम, पारस्परिक व्यवहार, आय, व्यय और सामाजिक रीति रवाजोंमें सुचतुर बननेकी ओर लक्ष्य देना। याद रखना कि हम सदा छोटे बने रहनेके नहीं हैं।

किसी पुरुषकी कभी निन्दा मत करना। क्योंकि यह बात उसके कानोंतक पहुँचनेपर वह उत्तेजित होकर अपनी इज्जत लेनेके लिये तैयार हो उठता है। इसके साथ किसी पुरुषकी प्रशंसा भी न करना। कारण सिवा पतिके किसीकी प्रशंसा न सहना उसीका नाम पत्नी है।

स्वामीकी ओरसे अपनेको चाहे कितनी भी स्वतंत्रता मिले, पर उसका दुरुपयोग कभी मत करना। मर्यादा, विवेक छोड़ना नहीं। चाहे अपना स्वामी अपनेपर बहुत ही प्रेम क्यों न करता हो, पर अमर्यादित चालचलन कोई नहीं सह सकता।

एक वक्त हृदयमें भिन्नभाव उत्पन्न हो जानेसे फिर वह बहुत प्रयत्न करनेपर भी एक नहीं होता। इसलिये स्वामीका हृदय किसी तरह दुःखित न हो, उसमें किसीतरहका आघात न पहुंचे, इसकी पूरी पूरी सम्हाल रखना। उसके विचार इच्छा आदिसे जिसतरह हो बहुत जल्दी जानकार बननेकी कोशिश करना। बिना ऐसा किये स्वामीकी प्रेमपात्र कभी नहीं बन सकोगी।

किसी कामके करनेमें स्वामी यदि गल्ती कर जाय तो उसके उपदेशक बनकर नहीं, पर एक सेवककी तरह बहुत मधुर शब्दोंमें और मधुर हंसीके साथ वह गल्ती उसे सुझाना, पर दोष कभी मत निकलना।

जल्दी उठनेकी, घरबारके स्वच्छ रखनेकी और माता बननेके

पहले माताके सम्बन्धकी जितनी जुरूरतें हैं उन्हें सीखलेनेकी सदा चिन्ता रखना । इस विषयमें जितना कहा जाय उतना थोड़ा है, इस लिये इस विषयको तेरे भरोसेपर ही छोड़ता हूं ।

धनवानोंके घरमें स्त्रियोंको काम करनेकी आवश्यकता नहीं, ऐसा समझना भूल भरा हुआ है । चाहे अपना घर कितना ही वैभवसे युक्त क्यों न हो, पर कामसे कभी मुंह नहीं मोड़ना—कभी आलस मत करना । घरके कामोंमें अनेक तरहकी हिंसा अजानपनसे होना संभव है । इसलिये जल सदा छान कर काममें लाना, चूला आदि स्थानोंपर चंदोवा बांधना, बाल वगैरहकी सम्हाल रखना ऐसे सब कामोंकी देख रेख रखना जिससे जीवोंकी हिंसा न हो । फि-जूल खर्चसे पैसेको बचाकर दया, विद्या, दान आदि पवित्र और उप-योगी कामोंमें खर्च करनेका प्रबन्ध करना और कराना यह स्त्रियों-का ही काम है । काम न भी हो तब भी एक गृहिणीके लिये तो काम करनेकी कमी नहीं । सुन, मैं बतलाता हूं—

घरके पूर्ण कारबारमें उद्योग, सिलसिला, दीर्घ दृष्टि, व्यावहारिक ज्ञान व्यवस्था करनेकी शक्ति, नैतिकबल और अच्छापन इन सब बातों-का समावेश होता है । इसलिये इनपर विचार करते रहनेवालेके लिये सदा काम बना ही रहता है ।

गीत, वाद्यकला और सुन्दर हाव भाव ये स्वामीके नीरस समय और थके हुए शरीर तथा मनको आनन्दित और उत्साहित करनेके साधन हैं । इसलिये ये साधन अवकाशके समय सीख लेने चाहियें ।

धार्मिक बातें जो मैंने तुझे सिखलाई हैं उन्हें भूलना मत, किन्तु

सदा उन्हें बढाते रहना। सब ओर निराश हुए मनुष्योंका अन्तिम आशास्थल धर्म ही रह जाता है। यह बात निरन्तर स्मरण रखना।

इतनेमें एक शिष्यने डोंगीके तैयार होनेकी खबर दी। हम सरोवरके तटपर पहुँच कर डोंगीपर सवार हुए। डोंगी रवाना हुई। "सुखी होओ! चिरजीवी बनो! उज्वलयश विस्तार करो!" ये पवित्र शब्द दूसरे किनारेपर पहुँचनेतक हमारे कानोंमे सुनाई देते रहे।

किनारेपर पहुँचनेपर बड़ी भारी प्रसन्नता यह हुई कि मेरे सब संगी मुझे वहाँ मिल गये। हम सब मिलकर फिर वहाँसे अपने शहरकी ओर रवाना हो गये। क्योंकि अब राजकुमारी उषाकी नगरीमें जानेका कुछ मतलब नहीं रहा था।

मुझे जल्दी लौट आया देखकर पिताजीको बहुत आश्चर्य हुआ। मैंने यह सब हाल उनसे कह सुनाया। उन्होंने इसपर कुछ ऐत-राज न कर कहा कि जयसिंह हमारा एक मित्र और सत्यका पक्ष-पाती है।

हमारे दिन बड़े सुखसे कटने लगे। इसी अवसरमें पिताजीके पास एक दिन एक फर्याद आई कि—" शहरमें कल रातको एक बालकका खून हो गया है।" पिताजीने इसकी बहुत तलाश कर-वाई, पर खूनीका कुछ पता न चला। किन्तु इसीतरह हर रातको खून होने लगा। पिताजीको इसपर बहुत क्रोध आया। इसलिये वे स्वयं गुप्तवेशमें उसका पता लगानेके लिये फिरने लगे। एक दिन एक बुढ़ियाने आकर पिताजीसे कहा कि—" महाराज! कि-सकी खोज करते हैं? पहले अपने घरकी खोज कीजिये न!

कहनेकी बात तो नहीं, पर अनुरोध वश कहना ही पड़ता है । दया-सागर ! मुझे अपनी धृष्टताके लिये क्षमा कीजिये । आपकी पुत्र-वधू ही मनुष्यके रूपमें राक्षसी है और वही मांसके लिये प्रतिरात्रि खून करती है । " इतना कहकर बुढ़िया चलदी । पिताजी उदास चित्तसे महलपर आये । आते ही उन्होंने मुझे आज्ञा की– " कल सबेरे कुन्दके ओठोंकी जैसी दशा हो और उसके पलंगके नीचे जो वस्तु मिले उससे मुझ सूचित करना । " पिताजीने यह एक आश्चर्य पैदा करनेवाली बात मुझसे क्यों कही, इसका कारण मैं कुछ भी नहीं समझ पाया । मैं एक बड़े असमंजसमें पड़ गया । खैर, दूसरे दिन सबेरे सदासे कुछ जल्दी उठकर मैंने देखा तो मुझे कुन्दके ओठ खूनसे भरे हुए दीखे और उसके पलंगके नीचे मांसके टुकड़े मिले । अब आँखों देखीपर विश्वास करना या बुद्धिपर यह मैं कुछ भी नहीं समझ सका । इस आश्चर्यजनक घटनाने मुझे किं कर्त्तव्यमूढ़ बना डाला । मैंने कुन्दको जगाकर इस घटनाका उससे खुलासा हाल पूछा–उसने अपने सीधे सरल भोले भाले निरपराध मुँहसे कहा–प्राणनाथ, यह क्या आश्चर्य है ! क्या कोई दैवी लीला है या किसी दुष्टका, जो कि हमारे सुखके दिनोंको नहीं देख सकता हो, प्रपंच है ? मैं तो इस विषयमें कुछ भी नहीं जानती ।

मैंने प्रतिदिन यही हाल देखा, तब परवश होकर जैसा आँखोंसे देखा था वैसा पिताजीको कह सुनाया । पिताजीने बेचारी निर्दोष कुन्दको राक्षसी ठहराकर जल्लादोंको बुलवाया और उनसे कहा " इसे

सूने जंगलमें लेजाकर इसीसमय मार डालो और मुझे आकर खबर दो।" पिताजीकी कठोर आज्ञा सुनकर मैं भौंचकसा रह गया। मेरी आँखोंसे आँसुओंकी धार बह चली। मैंने उस निरपराध वनवासिनीकी निर्दोषताके लिये बहुतसी बातें पिताजीको समझाईं, पर वे सब व्यर्थ गईं। पिताजीने इस युक्ति द्वारा, कि राज्यके कल्याणके लिये प्यारेसे प्यारे मनुष्यको उसके अपराधका उचित दण्ड देना राजाका कर्त्तव्य होना चाहिए, निरुत्तर बनाकर और कुन्दको जल्लादोंके साथ न जाने कहाँ भेजकर उसका वध करवा ही दिया। खेद!

मैं भ्रान्त हो उठा। मुझे कोई वस्तु प्रिय न जान पड़ने लगी। किसीपर मेरा मन स्थिरतासे न ठहरने लगा। इससे पिताजीने समझा कि इसकी यह दशा होनेका कारण स्त्रीका वियोग है, तो इसे रास्ते पर लानेके लिये विवाह देना जरूरी है। इसलिये उन्होंने मुझे फिर उषाके साथ विवाह कर आनेकी आज्ञा की। मैंने उसपर पहले तो कुछ ध्यान नहीं दिया, पर जब पिताजीने मेरे मित्रों द्वारा मुझे कहलाया कि "यदि तुम दूसरा विवाह न करोगे तो ध्यान रखना—यह कीर्तिशाली पवित्र वंश यहीं नामशेष हो जायगा। तुम्हारे बाद यह राज्य दूसरे देशोंके और दूसरे वंशोंके राजाओंके हाथमें चला जायगा और प्रजा दुःख उठायगी। इसलिये तुम्हें विवाह कर-लेना ही उत्तम है।" तब अगत्या मैं केवल दो मित्रोंको लेकर ही उषाके साथ विवाह करनेको राजपुरीकी ओर चल पड़ा। रास्तेमें मेरे घोड़ेको आकस्मिक भड़क जानेसे मैं इस वीरान जंगलमें अकेला पड़ गया।

भूख, प्यास और पश्चात्तापके मारे इधर उधर भटकता फिर रहा था कि मेरे भाग्यसे आपके मुझे दर्शन हो गये। मुझे आपके पवित्र दर्शनसे बड़ी शान्ति मिली।

* * * *

इतना कहकर पथिकने अपनी कथा पूरी की। उसे सुनकर साधुने कहा—"आपका हाल सच मुच मनोरंजक है, पर अब जरा गहरा विचार करनेसे यही उचित जान पड़ता है कि आप फिर विवाह करके पुराने दुःख स्वप्नको भूल जायं। यही हितकर है।"

अन्तिम वाक्य तपस्वीके मुँहसे निकला भी न होगा कि इतनेमें एक ओरसे एक बाजेकी आवाज सुनाई दी। उसके उत्तरमें कुमारने भी बाजा बजाया। उसके उत्तरमें फिर उधरसे एक आवाज आई और साथ ही घोड़ोंकी टापें सुनाई दीं। थोड़ी देरमें विनोदके मित्र वहाँपर आ पहुँचे। उन्हें देखकर विनोद बहुत खुश हुआ।

जैसे अन्धेको नये नेत्र प्राप्त हो जानेसे जैसा उसे आनन्द मिलता है वैसा ही आनन्द विनोदको पाकर उसके मित्रोंको हुआ। थोड़ी देरतक विश्राम लेनेके बाद उन्होंने साधु द्वारा लाये हुए फलादिक खाये और उसीसमय वहाँसे चल देनेकी तैयारी कर दी। कुमारने अपने विवाहको पवित्र करनेके लिये साधुसे भी प्रार्थना की। कुछ आनाकानी करनेके बाद उसने विनोदके साथ चलना मंजूर किया। रस्तेमें कुमार और साधुका घोड़ा साथ ही साथ चला जाता था। वे दोनों भी बातें करनेमें खूब मग्न हो रहे थे। विनोद साधुकी मधुर मीठी बातें सुनकर और उसका भव्य मुखचन्द्र देखकर

बार बार मनमें कहने लगा कि विधाता इसे साधु न बनाकर सुन्दरी बनाता तो आज भुवनसुन्दरीरत्नकी उपाधि इसे ही प्राप्त होती !

चौथा परिच्छेद।

सुख।

विनोद, तरुण—तपस्वी और विनोदके साथी राजपुरीके समीप आ पहुँचे। उषाके पिता चन्द्रराजने उनका बहुत धूमधामके साथ स्वागत किया। वे खूब आदर सम्मानके साथ नगरमें लाये गये। उनके ठहराने आदिका उचित प्रबन्ध किया गया। चन्द्रराजने अपने वैभवके अनुसार अपने अतिथियोंके आतिथ्य करनेमें कोई बात उठा न रक्खी थी।

पवित्र दिनमें राजकुमारी उषाका विनोदके साथ परिणय संस्कार बहुत आनन्द और उत्साहसे कराया गया। कुमारके विवाहसे सबको बहुत खुशी हुई सही, पर हमारे विनोदका हृदय जैसा प्रसन्न चाहिये वैसा नहीं है। कुन्दकी याद उसे रह रह कर दुःख पहुँचाया करती है। उसकी यह हालत देखकर कुमारके साथी तरुण तपस्वीने उसे धार्मिक बातें समझाकर शान्त किया।

आज सोहागरात्रि है। नव दम्पतिने अपने शय्याभवनमें पदार्पण किया। भवन बहुत सुंदर सुन्दर वस्तुओंसे हृदयको मोहित किये देता था। चारों ओर दिलको लुभानेवाली महकसे सुवासित हो रहा

था। उसके ठीक बीचमें एक मनोहर पलंग बिछा हुआ था। उस-पर फूलोंकी सुन्दर सेज सजाई गई थी। राजकुमारी उषा और विनोद अभी मौनव्रत साधे हुए हैं। लज्जा दोनोंका बराबर साथ दे रही है। आखिर उषासे न रहा गया। उसने एक बहानेसे विनोदका मौन तोड़ देना चाहा। वह बोली—

प्राणनाथ, सुनती हूँ कि आप मुझसे पहले जब ब्याह करने आये थे तब रास्तेमें एक वनवासिनी कन्याके साथ ही ब्याह कर घर लौट गये थे। तो क्या वह वनवासिनी मुझसे भी अधिक सुन्दरी थी, जिसपर आप एकदम इतने रीझ गये?

विनोदने कुछ तिरस्कार भरी हँसीसे कहा—अहा! कहाँ वनवासिनी कुन्द? और कहाँ तुम? कहाँ चन्द्र और कहाँ खद्योत? जो हुआ, इस बातको अब यहीं छोड़ दो।

कुछ भयके साथ राजकुमारीने कहा—पर वह तो इस संसारसे चल बसी। अब उसकी बारबार याद करके क्यों आप दुखी होते हैं? प्राणनाथ! यदि आप क्षमा करें तो मैं उसके सम्बन्धकी एक बात आपसे कहूँ।

कुछ तेज होकर विनोद बोला—क्या मनुष्यहत्या सम्बन्धी बात सुनाना चाहती हो? चिढ़कर विनोदने कहा—चल, चल, मैं कभी ऐसी झूठी बातोंपर विश्वास नहीं कर सकता। ऐसे झूठे कलंकसे उसपर घृणा पैदा कराकर मेरे हृदय—मन्दिरमें प्रतिष्ठित उसकी भुवनमोहिनी प्रतिमाको कोई च्युत नहीं कर सकता और न तुम्हें ऐसा करना शोभा ही देता है।

कुमार ऊपर जो कुछ बोल गया वह बिल्कुल उसके भोले स्वभाव को लिये हुए था। परन्तु उषाने उसे अपने लिये समझ कर विचार कि मेरे पापकी बात प्राणनाथपर विदित हो गई जान पड़ती है नहीं तो 'झूठा कलंक' ऐसा ये क्यों कहते? अब मुझे अवश्य प्राणनाथ भयंकर दण्ड देंगे। इसलिये अच्छा तो यही है कि मैं अपना अपरा स्वीकार करके सब हाल ठीक ठीक कह दूं, जिससे मुझे क्षमा प्राप्त करनेका रास्ता मिल जाय।

उषा कांपते हुए ओठोंसे बोली— प्राणनाथ! दयासागर! मुझे क्षमा कीजिये। मैं महापापिनी हूं। मैंने अपने स्वार्थके वश होकर महान् अनर्थ किया है। मैं जानती हूं कि मेरे पापका प्रायश्चित्त ही नहीं, पर आप मेरे देवता हैं। इसलिये आपके चरणोंमें प्रार्थना कर पापकी क्षमा चाहती हूं। कहते हुए मेरी जबान भीतर ही जाती है, हृदय दुःखके मारे अधीर हो रहा है। उसे शान्ति मिलनेकी आशा सिवा आपके किससे कर सकती हूं? प्यारे! मुझ चाण्डालिनीको क्षमा कर चरणोंमें शरण दीजिये।

नाथ! मुझ पापिनीने बेचारी निर्दोष वनवासिनी बालिकापर कलंक लगाते समय कुछ विचार नहीं किया। यह सब आपके अप्रतिम रूप गुणके लिये ही किया गया था। आप मेरे होकर दूसरीके हों, यह बात मेरे स्वार्थी और पापी हृदयको सहन न हुई। इसलिये भयंकर षड्यंत्र रचकर मैंने उस बेचारी गरीबिनीकी दुर्दशा की। दयासिन्धो! क्षमा कीजिये। जब कहने बैठी हूं, तो सब बात सच सच कहूँगी ही। बिना कहे मेरा छुटकारा नहीं है। हाँ तो

एक पापिनी बुढ़ियाको मैंने बुलवाई। वह अघोरी विद्याकी जाननेवाली थी। उसे मैंने बहुत कुछ लोभ देकर अपना कार्य कर देनेको राजी किया। मेरे कहे अनुसार वह राक्षसी प्रतिदिन बेचारी कुन्दका मुँह खूनसे भर आती थी और उसके पलँगके नीचे मांसके टुकड़े फेंक आती थी। आपके पिताको भी मैंने उसीके द्वारा कहलवाया था कि "कुन्द मनुष्यरूपमें राक्षसी है और प्रतिदिन एक बालकका खून करती है। आपके भोले पिताजीने बिना कुछ तपास किये उसका वध करा डाला और आपको फिर ब्याह करनेको इधर भेजा। इसतरह मुझे तो मेरा मनचाहा सुख मिला, पर उस बेचारी निर्दोष वनवासिनीकी व्यर्थ जान चली गई। हाय! उसके हत्याके पापसे मैं कैसे छूटूंगी! प्राणनाथ! प्राणनाथ! मुझे क्षमा कीजिये! पापसे बचाइये।" कहते कहते उषाके करुण नेत्रोंसे आंसुओं-की धारा बह चली। जैसे जैसे गुप्त रहस्य खुलता गया वैसे वैसे विनोद-की आँखोंसे क्रोधके मारे खून बरसने लगा, उसका शरीर कांप उठा, चहरा लाल हो गया। वह विक्षिप्तसा होकर तलवार हाथमें लिये उषापर झपटा और कड़क कर बोला—पापिनी! मेरे सुखस्वर्गको नष्ट कर-मेरी सब आशाओं और जीवनपर पानी फेर कर, तू अपने प्राण बचानेकी आशा करती है? इस वाक्यके कहते ही विनोद, जैसे कोई शिकारी अपने शिकारपर टूट पड़ता है वैसे ही बेचारी उषाकी छातीपर चढ़ बैठा। उसके हाथकी झलझलती तलवारको देखकर उषा भयके मारे कांप उठी। उसके नेत्रोंसे अश्रुओंकी झड़ी बह निकली। वह मुर्देकी तरह अचेत हो गई।

कुमारका तलवार उठाना हुआ कि वह एक काचकी खिड़कीसे आकर टकराई। इतनेहीमें उसे गुरुका समझाया एक वाक्य याद हो उठा— "**विचार्यैव विधातव्यमनुतापोऽन्यथा भवेत्।** अर्थात् कुछ भी काम हो, उसे खूब सोच विचारके साथ करना चाहिये, जिससे फिर कष्ट न उठाना पड़े।" पर इस खुली बातपर विचार भी क्या करूं? वह बड़े असमंजसमें पड़ गया। एक हाथ तो उसका उसकी नई पत्नीके कोमल कण्ठपर—नहीं प्रेम और क्रोधमें—रुका रहा और दूसरा हाथ उठाई हुई तलवारसे क्षणभरके लिये स्तब्ध-अक्रिय-जड़-बन गया। चामचिड़ियोंकी आवाजको छोड़कर सर्वत्र मौनका साम्राज्य हो गया।

× × × × × ×

एकाएक काचकी खिड़की फूटी और नव दम्पतिके शयनागारमें सहसा एक युवा आ खड़ा हुआ। उसे देखकर निनादके हाथमेंसे तलवार छटक पड़ी। उसका सिर अपने आप आगन्तुकके पावोंपर झुका और यह सब क्या हो रहा है, इस भ्रममें वह भ्रान्त हो उठा।

सावधान! सावधान! गौ, ब्राह्मण और स्त्रियोंकी रक्षा करना जिनका कर्त्तव्य है, उन राजकुमारोंको स्त्रियोंपर हाथ उठाना क्या शोभा देगा? हमारे पाठकोंको आगन्तुककी आदेशभरी बात सुनकर आश्चर्य होगा, साथ ही उसके जाननेकी भी उत्कण्ठा होगी। इसलिये उनकी उत्कण्ठा हम यहीं मिटाये देते हैं। आगन्तुक मनुष्य और कोई न होकर हमारे कुमारका साथी तरुण—तपस्वी है। यही कारण था कि उसे देखकर कुमार एक साथ विनति हो गया।

जब कुमारकी तलवार खिड़कीसे टकराई थी उस वक्त युवा तापस पासके ही कमरेमें किसी विषयके विचारमें निमग्न था। शान्तिके समय यह खड़खड़ाहट और विनोदका अन्तिम वाक्य उसके कानोंमें सुनाई पड़ा। वह कुछ दालमें काला समझकर वहाँ कुछ घटना न हो जाय, इसके पहले ही दौड़ा हुआ पहुंचा और काचकी खिड़कीको फोड़कर कुमारके शय्याभवनमें जा पहुंचा।

विनोद तापसके प्रश्नका उत्तर देने लगा—प्यारे मित्र ! मैं आपको अपना जीवनवृत्तान्त सुना चुका हूं। मेरी प्यारी कुन्दका जिस कारण खून हुआ, उसका कारण आज खुल गया। उस निर्दय कर्मकी करनेवाली इस समय मेरी अर्धांगिनी हुई है। उसे उसके पापका प्रायश्चित्त देकर मैं भी अपने पापका प्रायश्चित्त करूंगा।

तापसने निडर होकर कहा—"किसी घोर पापका बदला प्राणवध द्वारा लेनेकी सत्ता किसी मनुष्यको नहीं है। उसके कियेका फल उसे अपने आप ही मिलेगा। क्या तुमने किये कर्मका फल न भोगनेवालेको कभी सुना है? तब फिर किसलिये व्यर्थ एक मनुष्यकी हत्याका पाप अपने सिरपर उठालेनेकी इच्छा करते हो? जरा विचार करो कि यदि वह जीती रहेगी तो कभी सत्पुरुषोंके उपदेशसे अपने पापकर्मके लिये पश्चात्ताप करेगी और पापसे मुक्त होनेका उपाय करेगी। तुम तो क्या पर तुम्हारे पिता, जो एक राजा हैं, अपनी प्रजाको बड़ेसे बड़े अपराधके लिये भी प्राणदंड देनेका अधिकार नहीं रखते हैं।"

कुमार निरुत्तर हुआ, पर फिर भी बोला—अस्तु। न सही स्त्री-हत्या, पर अपने पापका प्रायश्चित्त तो मैं अवश्य ही करूँगा।

तापसने फिर कहा—जाना मैंने कि तुम अपने पापका प्रायश्चित्त करोगे, पर यह बतला सकोगे कि वह पाप कौनसा है जिसके लिये तुम इतना कठिन प्रायश्चित्त करना चाहते हो ?

कुमार बोला—किसलिये ? यह आप मुझे क्या पूछते हैं ? क्या आप नहीं जानते कि एक भोली भाली वनवासिनी बालिकाका बुरी तरह मैंने वध कराया है ? ऐसा अमानुषिक अत्याचार करके अब मैं सुख भोगूँ, यह मुझसे न होगा। उसे मेरे हाथमें सौंपते वक्त गुरुने मुझसे कहा था कि "संसारकी बातोंको न जाननेवाली मेरी इस भोली भाली बालिकाकी रक्षा अब तुम्हारे हाथ है" हाय! आज मैं रक्षकके बदले भक्षक कहलाया। अब मैं कौन मुँह लेकर अपनी जिन्दगी बिता सकता हूं!

कुमारके हृदयको बहुत अशान्त समझ कर तापस उसवक्त अधिक कहना उचित न जानकर बोला—अच्छी बात है, पर मेरी यह बात मन पर विदित करके फिर जैसा तुम्हें उचित जान पड़े वह करना। पर याद रखना बिना ऐसा किये कुछ अनुचित साहस कर बैठोगे तो इसका कलंक मुझपर आयगा।

प्रातःकाल हुआ। चन्द्रराज विनोदके कुशल समाचार जाननेके लिये उसके पास आये। उन्होंने प्रसन्नताके बदले विनोदका मुंह उदास और दुखी पाया। एक रात्रिमें यह आकस्मिक परिवर्तन देखकर उनके आश्चर्यका पार नहीं रहा। उन्होंने घबराकर कुमारसे उदासीका कारण पूछा। उत्तरमें कुमारने सब हाल आदिसे अन्ततक कह कर अन्तमें कहा— "मैंने एक निरपराध बालिकाकी हत्या

कराई है, इसलिये मैं खुशीसे अपने पापका प्रायश्चित्त करूँगा—अपने अशान्त हृदयको शान्त करूँगा। इसलिये आप लोग मुझे जानेदें।" कुमारकी यह अश्रुतपूर्व बात सुनकर चन्द्रराजका मुँह एक साथ पीला पड़ गया। उन्होंने कुमारके ऐसे अनुचित कर्त्तव्यका जोरके साथ विरोध किया और अपने कुटुम्बियोंको बुलाकर कुमारका अनुचित विचार सबपर जाहिर कर दिया। सबने उसका विरोध किया, पर कुमारके हृदयमें किसीकी बात न समाई। इतनेहीमें तापसने आकर कुमारका हाथ पकड़ लिया और कहा—

राजकुमार, आत्महत्यासे बढ़कर कोई पाप नहीं है। तुम तो समझते होगे कि ऐसा करनेसे मुझे दुःखसे छुटकारा मिलेगा, पर नहीं समझते कि ऐसा अनर्थ करके तुम भव भवमें अपने आत्माको कुगतियोंमें भटकानेवाला पापकर्म कमाओगे। समझते हो, यह मनुष्यपर्याय कितनी कठिनतासे, कितनी तकलीफसे और कितने अच्छे अच्छे संयोगोंके मिलनेपर मिलती है? उसमें किसी एक साधारण कारणसे दुखी बनकर सदाके लिये आत्माका अहित करनेवाले कितने मूर्ख समझे जाते हैं, जानते हो? तुमने अनन्तभवमें अनन्तबार अनन्तसुख प्राप्त किया है और करोगे उसे यदि याद करो तो इस तुच्छ दुःखसे इतने कायर नहीं बनोगे। क्या प्रकृति तुम्हें सदा सुखी ही बनाये रक्खे, ऐसी तुम आशा करते हो? यह तुम्हारी भूल है। याद रक्खो दुःख उठानेसे ही सुखमें महत्त्व मालूम पड़ता है। यदि दुःख न होता तो सुखकी भी कुछ कीमत न होती। नीतिकारने बहुत ठीक लिखा है कि—

ऋते तमांसि द्युमणिर्मणिर्वा विना न काचैः स्वगुणं व्यनक्ति ।

अर्थात्—अंधकारके बिना सूर्य और काचके बिना रत्न अपना गुण प्रगट नहीं कर सकते हैं । तुम जीते रहोगे तो कभी इस चिन्तासे मुक्त होकर आत्महित भी कर सकोगे । मेरे बाद पशुपक्षियोंकी पर्यायमें तुम क्या सफलता प्राप्त कर सकते हो ? । देवता भी तो मनुष्य पर्यायको छोड़कर सफलता प्राप्त नहीं कर सकते । वे सदा मनुष्य-भवके लिये तरसा करते हैं और जब मनुष्य थे, तब प्रमाद तथा और कारणोंसे उन्होंने आत्महितकी ओर लक्ष नहीं दिया; इसके लिये आज भी वे झुरा करते हैं । क्या इसे तुम भूलते हो ? क्या तुम आत्महत्या करके कुन्दका मुँह देखनेकी आशा रखते हो ?

इतनेमें कुमार बीचहीमें बोल उठा कि—" हाँ उसी आशासे मैं ऐसा करना चाहता हूँ, मुझे न रोको मुर्खा होने दो । "

साधुने यह देखकर, कि विनोदका चित्त उसके विचारोंके आधीन नहीं रहा है, अपने कहनेका ढंग बदल दिया । उसने कहा—ठहरिये, जिसकी आशासे तुम ऐसे अमानुषिक कार्यके करनेको तत्पर हुए हो; वह अभीतक जीती जागती है, ऐसा मुझे विश्वास है । मैं उसके लानेकी भी कोशिश कर सकता हूं ।

कुमार विक्षिप्तसा होकर बोल उठा—क्या कुन्द अभीतक जीती है ? और तुम उसे ला भी सकते हो ? जान पड़ता है आप लोग मेरी दिल्लगी करते हैं ।

इतनेमें चन्द्रराजने कहा—पुरुषोत्तम ! आप हम लोगोंकी ओर देखिये, हमारा दुःखसे उद्धार कीजिये । यदि आप कुन्दको लादेंगे तो हम समझेंगे आपने हमें पुनर्जीवन दिया ।

साधुने उसवक्त वहाँ एक पड़दा डलवा दिया और आप उसके भीतर जाकर बोला कि–" कुन्द ! यदि तेरे प्रियतमका तुझपर अटल प्रेम हो और तेरा पवित्र और आदर्श प्रेम उसपर हो, तो मैं कहता हूँ-मेरी विद्याके बलसे तूं यहाँ आकर उपस्थित हो और सबको सुखी कर।"

× + × × × × ×

योगीका इतना कहकर चुप रहना था कि विनोदने पड़देको एकदम खींच लिया। पड़दा खींचते ही कुन्द उसे दीख पड़ी। उसे देख वह उन्मत्त होकर उसके पाँवोंमें गिर पड़ा और लगा अपने अपराधकी बारबार क्षमा कराने। कुन्दने बड़े विनयसे उसके सिरको उठाया और कहा–" मैंने भवान्तरमें जैसा कर्म किया था उसीका फल मुझे मिला। इसमें बेचारी उषाका कुछ अपराध नहीं है। यह तो केवल निमित्त मात्र थी। आप मुझे इतने सम्मान द्वारा लज्जित न करें।"

कुमारको कुन्द मिल गई–सदाके लिये खोई हुई वस्तु उसे फिर प्राप्त हो गई, पर तब भी अभीतक उसका चित्त कुछ उद्विग्न दीख पड़ता है। उसकी क्षण क्षणमें इधर उधर जानेवाली दृष्टि उसके हृदयकी निराशा बतलाती है। उसे इसतरह अन्यमनस्क देखकर और उसके हृदयका भाव समझकर कुन्द बोली–

जिसे आप देख रहे हैं वे ऐसे मिलनेके नहीं हैं। आप मुझे क्षमा करें तो उनका पता मैं आपको दे सकती हूं। कुमारने उसे क्षमा प्रदान की। वह बोली–मेरे जीवन! आजतक मैंने आपसे जो बात छिपा रक्खी थी, उसीके लिये मैंने आपसे क्षमाकी भीख मांगी है और अब उसका खुलासा भी किये देती हूँ।

सुनिये—

" आपको वीरान जंगलमें एक योगी मिला था, उसने आपको अपने आश्रममें लिवा लेजाकर शान्त किया था, जो आपके साथ यहां आया और अन्तमें आपको स्त्रीहत्या और आत्महत्याके महापापसे बचाकर अदृश्य हो गया— वह कोई और न होकर स्वयं मैं ही हूं। जल्लाद लोग मुझे लेकर जब जंगलमें आये तब मैं अदृश्य-करण अंजनके प्रभावसे, जो कि पिताजीने मुझे दे रक्खा था, अदृश्य हो गई। मुझे न पाकर जल्लाद लोग हताश होकर वहांसे चल दिये और जाकर महाराजसे उन्होंने कह दिया कि हम कुन्दको मार आये!

इसके बाद मैं अपने पिताके आश्रममें आई। पर मुझे न पिता-जी मिले और न गुरुजी। मैं यह सुनकर, कि वे उग्र तपश्चर्या द्वारा आयु पूर्ण कर स्वर्ग चल गये, योगीके वेपमें वहीं रहने लगी और धर्मध्यानमें अपना समय बिताने लगी। क्योंकि गुरुजीने हमें यह उपदेश दिया था कि "सब ओरसे निराश हुए मनुष्योंको धर्म ही अन्तिम आशास्थल रह जाता है। ,,

कुन्दकी रहस्यभरी बात सुनकर विनोदको उसकी बुद्धिमानी और कार्यकुशलतपरा बड़ा आश्चर्य हुआ। वह इस अपार खुशीके मारे उन्मत्त हो उठा। वह कुन्दको पुनर्जन्म देनेवाली देवी कहकर पाँवोंमें गिर पड़ा। कुन्दने उसे उठाया और कहा—" प्राणनाथ! ऐसा करना आपको शोभा नहीं देता है। मैं तो आपके—चरणोंकी दासी हूँ। अस्तु। मेरी एक प्रार्थना है-उसे आप स्वीकार कीजिये। जब अपने दुःखोंका अन्त आ चुका तब मेरे कहे माफिक मेरी प्यारी

बहिन उषाको क्षमा प्रदान करके मेरी ही तरह इसे भी अपने हृदय मन्दिरमें प्रतिष्ठित कीजिये। मेरे साथ साथ इसे भी जगह दीजिये।"

उदार दिलवाली अपनी प्रियाके बचन सुनकर बिनोद बहुत खुश हुआ। वह बोला—कुन्द! साधुराज! आपकी हर एक आज्ञा यह आज्ञाकारी सिरपर चढ़ाता है।

इस घटनासे क्या उषाको और क्या उसके माता पिताको तथा और सर्व साधारणको जो आनन्द, जो प्रसन्नता हुई उसे शब्दोंमें लिखकर बता देना इस लेखककी लेखनीकी शक्तिसे बाहिर है। इसका अनुभव वे ही कर सकते हैं जिन्हें चिर बिछोहके बाद अपनी प्यारीका फिर समागम मिलता है और सब तरह निराश हुएको उनकी आशा सफल हो जाती है।

विनोद कुन्दकी ओर मुह करके बोला—देवी! कहो अब और क्या आज्ञा होती है? विनोदकी इस प्रिय हँसी कुन्द शर्मा गई। वह गद्गद होकर बोली—प्राणनाथ! पतिके पूर्ण प्रेम सिवा स्त्रियोंके लिये और क्या चाह हो सकती है? तब भी आपकी ऐसी ही इच्छा है तो इतना और कीजिये—

अपने शहरमें एक "कन्यामहाविद्यालय" बनवा दीजिये, जिसमें मेरी बहिनें उच्चसे उच्च धार्मिक विद्या प्राप्त करके अपने मनुष्य जीवनको पुण्यमय, पवित्र-प्रेममय और परोपकारमय बना कर आत्मकल्याण करें और संसारका भी उपकार करें।"

विनोदने कहा—तथास्तु।

समाप्त।

सत्यवादी।

हमारे यहांसे उक्त नामका एक मासिक पत्र हर महीने प्रकाशित होता है। इसमें सर्व साधारणोपयोगी उत्तम उत्तम सामाजिक लेख मनोरंजक और शिक्षाप्रद सुन्दर आख्यायिका और समय समयपर अच्छे अच्छे धार्मिक लेख प्रकाशित हुआ करते हैं। जैन समाजमें यही एक ऐसा पत्र है जो सामाजिक विषयोंके लिखनेमें सब पत्रोंसे बढ़ा चढ़ा है। यदि आपको अपनी सामाजिक दुर्दशाका कुछ भी दुःख है और कुछ भी आपके हृदयमें अपने पतित समाजके लिये दया है, उसके सुधारकी चिन्ता है--तो कृपाकरके इस पत्रके स्वयं ग्राहक बनिये और अपने इष्ट मित्रोंको बनाइये। वार्षिक मूल्य १) मात्र। नमूना बिना मूल्य भेजा जाता है।

प्रतिवर्ष सुन्दर उपहार भी दिया जाता है। दूसरे वर्षका उपहार आपके हाथकी यही सुन्दर पुस्तक है।

मैनेजर--

सत्यवादी

गिरगांव--बम्बई।